BO-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सूक्ष्मजैविकी, कवकविज्ञान एवं पादपरोग विज्ञान

1

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय समन्वयक

प्रो. पी.सी. त्रिवेदी
वनस्पति शास्त्र विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सदस्य सचिव / समन्वयक

डॉ. अशोक शर्मा
सह- आचार्य, राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. प्रो. एस.वी.एस. चौहान
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   बी.आर.अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
2. प्रो. एन. सी. ऐरी
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   एम.एल.सुखड़िया विश्वविद्यालय,उदयपुर
3. प्रो. एस.के. माहना
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय,अजमेर
4. प्रो. त्रिभुवन सिंह
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
5. डॉ. डी. के. अरोड़ा
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
6. डॉ. श्रीमती प्रमिला शर्मा
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   स्टेनी मेमोरियल कॉलेज,मानसरोवर, जयपुर
7. डॉ. आर. एस. धनखड़
   विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कालाडेरा

सम्पादक एवं पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो. पी.सी. त्रिवेदी
वनस्पति शास्त्र विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लेखक

1. डॉ. डी. के. अरोड़ा
   एसोशियेट प्रोफेसर
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
2. प्रो. त्रिभुवन सिंह
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
3. डॉ. मीनाक्षी शर्मा
   एसोशियेट प्रोफेसर
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. डॉ. इन्दुरानी शर्मा
   प्रवक्ता
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   राजकीय महाविद्यालय, कोटा
5. डॉ. जे. पी. गुप्ता
   प्रवक्ता
   वनस्पति शास्त्र विभाग
   एम. एल. बी. कॉलेज, भीलवाड़ा

पाठ्यक्रम निर्देशन एवं उत्पादन

निदेशक(अकादमिक)
प्रोफेसर(डॉ.) अनाम जेटली
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

निदेशक(**सामग्री उत्पादन एवं वितरण)**
प्रोफेसर(डॉ.)प्रो. पी.के.शर्मा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी'(चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

निदेशक(अकादमिक) द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित।

BO-02

वनस्पति शास्त्र

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सूक्ष्मजैविकी, कवकविज्ञान एवं पादपरोग विज्ञान 1

इकाई सं.	इकाई	पृष्ठ सं.
1.	सूक्ष्मजैविकी का विकास एवं महत्व (Development and Importance of Microbiology)	6–23
2.	जीवाणुओं का सामान्य विवरण (General Account of Bacteria)	24–54
3.	जीवाणु : जनन एवं आर्थिक महत्व (Reproduction in Bacteria and economic Importance)	55–81
4.	सायनोजीवाणु (ऑक्सीलिटोरिया एवं नॉस्टॉक) [Cyanobacteria(*Oscillatoria and Nostoc*)]	82–97
5.	माइकोप्लाज्मा एवं विषाणु(Mycoplasma and Viruses) स्वभाव, प्राप्ति स्थान, संरचना, गुणन एवं महत्व (Nature,Occurrence,Structure,Multiplication and Importance)	98–118
6.	कवकों के सामान्य लक्षण-प्राप्ति स्थान, सूकाय संरचना एवं प्रजनन (General characters of fungi-Occurrence,Thallus organization and reproduction)	119–132
7.	कवकों का वर्गीकरण एवं आर्थिक महत्व (Classification and Economic Importance of Fungi)	133–149
8.	पादप रोग, वर्गीकरण, कवक, जीवाणु, वाइरस व माइकोप्लाज्मा द्वारा जनित रोग के सामान्य लक्षण तथा पादप रोग नियंत्रण (Plant disease, Classification,General characters of disease caused by Fungi, Bacteria, Virus and Mycoplasma, Plant disease control)	150–160

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक "सूक्ष्मजैविकी, कवकविज्ञान एवं पादपरोग विज्ञान" वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रमानुसार बी.एससी भाग प्रथम के वनस्पतिशास्त्र द्वितीय प्रश्न-पत्र के अध्ययन अध्यापन हेतु सृजित की गई है। पुस्तक की भाषा-शैली सरल, रोचक एवं सुग्राह्य बनाने का अथक प्रयास किया गया है आवश्यकतानुसार समानार्थी अंग्रेजी शब्द, फ्लोचार्ट, नामांकित चित्र एवं सारणियाँ भी दी गई है । पुस्तक की विभिन्न इकाइयों को विद्वान लेखकों द्वारा लेखकों ने पुस्तक को तथ्यपरक बनाने के लिए प्रमाणिक ग्रन्थों की सहायता प्राप्त की है, इन रचयिताओं के लिए कृतज्ञतापन इन पंक्तियों के माध्यम से पुस्तक है। यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी सही मार्गदर्शन प्रदान करने में सहायक होगी ।

पुस्तक को अधिक उपयपगी एवं प्रामाणिक बनाने हेतु प्रबुद्ध पाठकों एवं जागरूक विद्यार्थियों के रचनात्मक सुझाव सादर आमंत्रित है।

इकाई 1 : सूक्ष्मजैविकी का विकास एवं महत्व (Development and Importance of Microbiology)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सूक्ष्मजैविकी का अर्थ

1.3 सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति व सूक्ष्म जैविकी का प्रारम्भ

1.4 स्वत: जनन का सिद्धान्त व लुई पाश्चर

1.5 बीमारी: रोगाणु सिद्धान्त व राबर्ट कॉक

1.6 टीकाकरण (Vaccination)

1.7 प्रतिजैविकी (Antibiotics)

1.8 प्रतिरक्षा विज्ञान (Immunology)

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 संदर्भ ग्रन्थ

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य

1. सूक्ष्मजैविकी का अर्थ समझना
2. सूक्ष्मजैविकी का प्रारम्भ से लेकर वर्तमान समय तक का स्वरूप स्पष्ट करना
3. इस विषय का महत्व समझना

1.1 प्रस्तावना

यद्यपि सूक्ष्मजीवों व सूक्ष्मजैविकी विज्ञान बहुत प्राचीन नहीं है परन्तु इनका अत्यधिक महत्व न केवल मानव जीवन में अपितु सम्पूर्ण जीव जगत में निर्विवाद रूप से मान्य है । स्थूल रूप में सूक्ष्मजैविकी कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है । पारिस्थितिकी तन्त्र में सूक्ष्म जीव उत्पादक (Producers) के रूप में पारिस्थितिकी तन्त्र (Ecosystem) को ऊर्जा प्रदान करते हैं । स्थिरीकारक (Fixers) के रूप में ये नाइट्रोजन आदि का स्थिरीकरण (fixation) करते है । अपघटक (Decomposers) के रूप में मृत जीवों से पोषक व अन्य उपयोगी तत्वों को ये स्वतन्त्र करते हैं ।

मानव इतिहास जीवाणुओं व विषाणुओं द्वारा किये गये बहुत से विनाशक उदाहरणों से भरा पड़ा है । इसमें ऐतिहासिक रूप से प्रसिद्ध कुछ महत्वपूर्ण रोग यथा टी.बी. (क्षय रोग) व पीत ज्वर

(Yellow fever) वर्तमान में भी महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्मजीवों में हो रहे परिवर्तनों के फलस्वरूप नयी-नयी संक्रामक बीमारियाँ या छूत की बीमारियाँ (Infectious diseases) यथा एड्स (AIDS) आदि प्रकाश में आ रही हैं ।

एक ओर सूक्ष्मजीव बहुत से महत्वपूर्ण रोग उत्पन्न करते हैं । दूसरी ओर सूक्ष्मजीवों से प्राप्त प्रतिजैविकों द्वारा रोगों का उपचार किया जाता है । रोगों का उपचार व रोगों से बचाव सूक्ष्मजैविकी व औषधिविज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है ।

व्यावहारिक सूक्ष्मजैविकी (Applied Microbiology) के क्षेत्र में किण्वन उद्योग यथा मदिरा, डबलरोटी आदि में व डेयरी उद्योग यथा दही आदि में इसका बहुत महत्व है । विगत कुछ वर्षो में जैव तकनीकी व प्रतिरक्षी (Antibody) उत्पादन में सूक्ष्मजैविकी की उपादेयता के कारण इसका महत्व बहुत ज्यादा बढ़ गया है ।

अधिकांश सूक्ष्मजीव एककोशिकीय (कुछ बहुकोशिकीय या अकोशिकीय) (unicellular, some multicellular and acellular) होते हैं ।

सूक्ष्म जीवों की श्रेणी में आने वाले प्रमुख वर्ग हैं :-

(a) जीवाणु (Bacteria)

(b) शैवाल (Algae)

(c) कवक (Fungi)

(d) विषाणु (Virus)

(e) प्रोटोजोआ या आदिजीव (Protozoa)

(f) कृमि (Helminthes)

1.2 सूक्ष्मजैविकी का अर्थ (Meaning of Microbiology)

सूक्ष्मजीवों का अध्ययन ही सूक्ष्मजीव विज्ञान या सूक्ष्मजैविकी है । सूक्ष्मजीवों से अभिप्राय है ऐसे जीव जिन्हें हम अपनी नग्न आँखों से नहीं देख सकते हैं । नग्न आँखों से तात्पर्य है कि बिना किसी आवर्धक यन्त्र (यथा सूक्ष्मदर्शी) की मदद के । ऐसे जीव जिनका व्यास 0.1 मि.मी. (0.1 mm or 100 μm) से कम होता है । उन्हें नग्न आँखों द्वारा विभेदित (Resolve) करना सम्भव नहीं है ।

सूक्ष्मजैविकी या सूक्ष्मजीव विज्ञान (Microbiology) के अन्तर्गत सूक्ष्म जीवों (Microorganisms) के स्वरूप, संरचना, कार्यिकी, उपापचय, जनन, आनुवांशिकी आदि का अध्ययन किया जाता है ।

सूक्ष्मजीव विज्ञान या सूक्ष्मजैविकी के अन्तर्गत सूक्ष्म जीवों का सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन तो किया ही जाता है । इसके अतिरिक्त शुद्ध संवर्ध तकनीक (Pure culture technique) व अपूतित या जर्महीन तकनीक (Aseptic technique) भी इस विज्ञान के अभिन्न अंग हैं ।

1.3 सूक्ष्मजीवों की उत्पत्ति व सूक्ष्मजैविकी का प्रारम्भ

वर्तमान समय में सूक्ष्मजीवों की सर्वव्यापी प्रकृति न केवल वैज्ञानिकों को अपितु सर्वसाधारण को भी ज्ञात है । यद्यपि सूक्ष्मजीवों के अस्तित्व का अंदेशा मनुष्य को सूक्ष्मदर्शी के प्रयोग से पहले

भी होता था । परन्तु सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार व प्रयोगों से पहले सूक्ष्मजीवों का अस्तित्व प्रमाणित नहीं हो सका था ।

राबर्ट हुक ने 1664 में एक संयुक्त सूक्ष्मदर्शी (Compound microscope) का विकास किया व बहुत सी जैविक संरचनाओं के अतिरिक्त कार्क की पतली काट का अध्ययन करके कोशिका (Cell) की खोज की (चित्र 1.1) ।

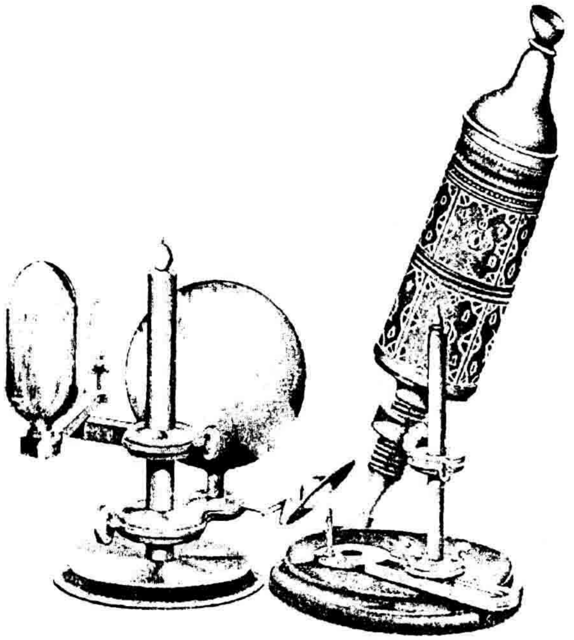

चित्र 1.1 : राबर्ट हुक द्वारा विकसित सूक्ष्मदर्शी

एन्टोनी दीन ल्युवेनहॉक (Antony Van Leeuwenhoek) ने 1675 में पहली बार सूक्ष्मजीव देखे । राबर्ट हुक ने ल्यूवेनहॉक की खोज को प्रमाणित किया व इस प्रकार सूक्ष्मजीवों का अस्तित्व प्रमाणिक रूप से प्रकाश में आया ।

एक ध्यान में रखने वाला तथ्य यह भी है कि पहला संयुक्त सूक्ष्मदर्शी (Compound microscope) हंस एवं जकारियाज जैन्सन (Hans and Zacharias Janssen) द्वारा 1590 में विकसित कर लिया गया था । किन्तु सूक्ष्मदर्शी की कम गुणवत्ता व आविष्कारों में धैर्य व वैज्ञानिक अंतदृष्टि की कमी के कारण वे कोई अन्य उपलब्धि न प्राप्त कर पाये ।

एन्टोनी वॉन ल्यूवेनहॉक हॉलैण्ड में कपड़े के व्यवसायी थे । इन्होंने विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान आदि की कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी । ये केवल हॉलैण्ड की भाषा यानि डच भाषा (Dutch language) ही जानते थे व अंग्रेजी भाषा नहीं जानते थे । ल्यूवेनहॉक शौकिया तौर पर काँच की गोलिका को घिसकर लैन्स (Lens) व उससे सूक्ष्मदर्शी बनाया करते थे । अपने जीवनकाल में उन्होंने 250 से भी अधिक सूक्ष्मदर्शी बनाये । इनके द्वारा बनाये गये सूक्ष्मदर्शी सरल (Simple microscope) प्रकार के थे । परन्तु उनके द्वारा 200 गुना तक आवर्धन (Magnification) सम्भव था व प्रतिबिम्ब (Image) बहुत स्पष्ट बनता था । अपने सूक्ष्मदर्शी

की मदद से ल्यूवेनहॉक ने बहुत सी सूक्ष्मदर्शीय वस्तुओं (Microscopic-objects) का अध्ययन किया (चित्र 1.2) ।

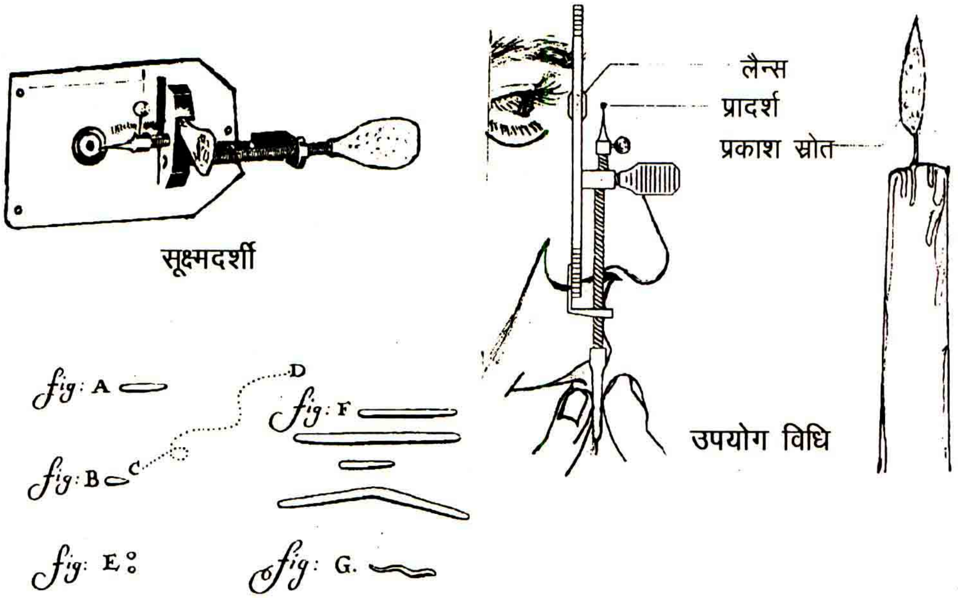

चित्र 1.2 : ल्यूवेनहॉक द्वारा विकसित व प्रयुक्त सूक्ष्मदर्शी, उसकी उपयोग विधि, व उनके द्वारा देखे व चित्रांकित जीवाणु

उनके एक मित्र रीनियर डी ग्राफ-ग्राफियन फॉलिकल के खोजकर्ता (Renier-de-graff-Discoverer of Graffian follicle) ने उनका परिचय लंदन की रॉयल सोसायटी के सचिव (Secretary Royal Society of London) से 1673 में कराया। ल्यूवेनहॉक अपने प्रेक्षणों (Observations) का बहुत भली प्रकार से सचित्र वर्णन करते थे व उन्हें पत्र के रूप में रॉयल सोसायटी को भेज देते थे । सूक्ष्मदर्शी में देखे गये सूक्ष्मजीवों यथा जीवाणु आदि के आकार को उन्होंने एक रेत के कण के आपेक्षिक आकार से दर्शाया । उनके द्वारा भेजे गये 200 से भी अधिक पत्रों (डच भाषा) का अक्षरश: अंग्रेजी में अनुवाद करके रॉयल सोसायटी द्वारा वैज्ञानिक पत्रों के रूप में छापे गये । ल्यूवेनहॉक ने जीवाणुओं के अतिरिक्त प्रोटोजोआ, हाईड्रा, वॉलवाक्स एवं कुत्ते के शुक्राणु आदि को देखा । ल्यूवेनहॉक ने स्वयं द्वारा देखे व वर्णित चलायमान सूक्ष्मजीवों को डच भाषा में डायरकंस (Dierkens) नाम दिया । इसका अनुवाद अंग्रेजी में Animalcules यानि जन्तुक होता है । वास्तव में उनके द्वारा वर्णित जन्तुक ही जीवाणु थे । जीवाणु नाम आगे चलकर एक अन्य वैज्ञानिक ने दिया । ल्यूवेनहॉक द्वारा वर्णित व चित्रित जीवाणुओं का वर्णन बहुत सटीक था । ल्यूवेनहॉक (Leeuwenhoek) को सूक्ष्मजगत का पितामह कहा जाता है । ल्यूवेनहॉक की मृत्यु के बाद अगले 100 वर्षो से अधिक समय तक उपयुक्त सूक्ष्मदर्शियों के अभाव में सूक्ष्मजीवों का अध्ययन उपेक्षित रहा ।

1.4 सूक्ष्मजीवों की उत्पति व स्वत: जनन का सिद्धान्त

ल्यूवेनहॉक व उनके समकालीन खोजकर्त्ताओं द्वारा विभिन्न सामग्री यथा तालाब के जल, वर्षा के एकत्रित जल, सिरके व मनुष्य के दाँत पर एकत्र होने वाली मैल (Scum) में जन्तुकों (Animalcules) की विशाल संख्या दर्शाने से यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुआ कि ये जीव इन पदार्थों में कैसे आये या पनपे । उस समय में इसका स्पष्टीकरण एक ही था - कई शताब्दी से प्रचलित अवधारणा के अनुरूप निर्जीव कार्बनिक पदार्थों (Non-living organic matter) में जीव उत्पन्न की क्षमता होती है । यह अवधारणा या संकल्पना जीवों का स्वत: जनन या अजीवातजनन (spontaneous generation concept or Abiogenesis) कहलाती है । अरस्तु (Aristotle) (384-322 B.C.) भी इसी अवधारणा के पक्षधर थे । स्वत: जनन की संकल्पना प्राचीन रोमन साम्राज्य व मध्य युग से लेकर 19वीं शताब्दी तक मान्य रही । इस मान्यता के अनुसार एक ऐसा वृक्ष का लट्ठा जो सड़-गल रहा हो उसमें स्वत: ही साँप, बिच्छू कनखजूरा आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं । इसी प्रकार तालाब के किनारे लगे वृक्ष-विशेष के फल से बतख के बच्चे (Duckling) उत्पन्न होते है (चित्र 1.3) ।

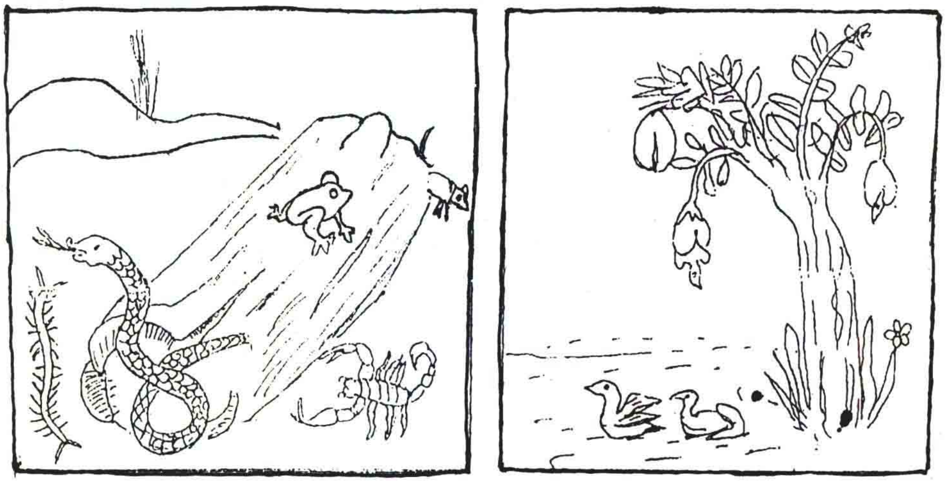

चित्र 1.3 स्वत: जनन की संकल्पना

यह परिकल्पना प्रचलित धार्मिक मान्यता के अनुरूप थी क्योंकि, यह माना जाता था कि ईश्वर ने संसार की व संसार में पाये जाने वाले सभी जीवों की सृष्टि की है । अत: यह जीव उचित वातावरण में स्वत: ही उत्पन्न हो जाते है । स्वत: जनन की संकल्पना का ना तो कोई वैज्ञानिक आधार था और ना ही किसी वैज्ञानिक (दार्शनिक) ने इससे सम्बन्धित कोई प्रयोग किया था ।

जिन जीवों का जीवन चक्र मनुष्य को ज्ञात था उनको स्वत: जनन की परिकल्पना से अलग रखा जाता था यथा- मनुष्य, गाय, घोड़ा, कुत्ता व अन्य बड़े जीव, बीजीय पादप आदि । उस काल में बहुत से व्यक्तियों यहाँ तक कि वैज्ञानिकों ने भी जीवों को उत्पन्न करने की विधियों (Recipe) का भी वर्णन किया है ।

यथा वान हेल्मॉन्ट 1550 (Von Helmont) ने एक पुरानी कमीज व गेहूँ के दानों से चूहे पैदा करने की विधि का वर्णन किया है (चित्र 1.4) । सड़े हुए माँस से मक्खी के लार्वा (Fly-

maggots) का उत्पन्न होते हुए पाया जाना स्वतः जनन की धारणा का एक अच्छा उदाहरण या प्रमाण माना जाता था ।

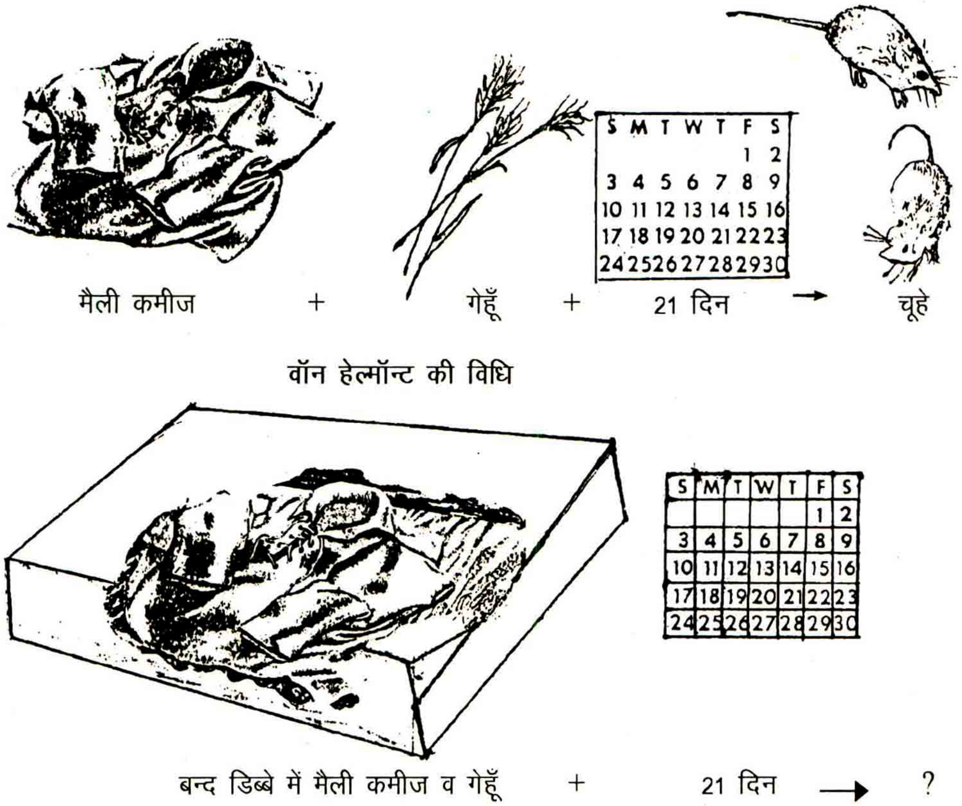

प्रयोग विधि में नियन्त्रण नहीं था

चित्र 1.4 : वॉन हेलमॉन्ट द्‌वारा वर्णित चूहों को स्वतः जनन द्‌वारा उत्पन्न करने की विधि

फ्रांसेस्को रेडी (1668) इटली के एक चिकित्सक थे । उन्होंने एक सरल किन्तु प्रभावी प्रयोग द्‌वारा स्वतः जनन की परिकल्पना को गलत सिद्ध कर दिया । रेडी को संदेह था कि हो सकती है मक्खियाँ माँस पर अंडे देती हों जो बाद में लार्वा में विकसित हो जाते हों । रेडी ने माँस के कुछ टुकड़ों को खुला रखा व कुछ को कपड़े व कागज आदि से ढक दिया। खुले रखे गये माँस पर मक्खी के लार्वा विकसित हुए किन्तु ढके हुए माँस पर लार्वा नहीं पाये गये । इस सरल प्रयोग के द्‌वारा उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि स्वतः जनन की परिकल्पना निराधार है व लार्वा मक्खियों के अण्डों से पनपते हैं । (चित्र 1.5)

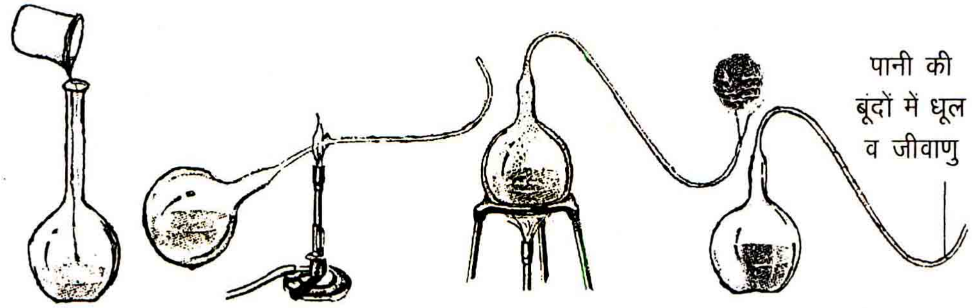

चित्र 1.5 रेडी का नियन्त्रण युक्त प्रयोग

रेडी (1668) के प्रयोग से स्वत:जनन की धारणा को आघात लगा किन्तु ल्यूवेनहॉक (Leeu enhoek) (1675) द्वारा सूक्ष्म जीवों की खोज ने स्वत: जनन के पक्षघरों को एक नया आधार दे दिया । पक्षघरों ने यह माना कि ठीक है मक्सियों का स्वत: जनन सम्भव नहीं है परन्तु जन्तुकों (animalcules) का तो स्वत: जनन ही होता है । शीघ्र ही जन्तुकों के सृजन की विधि विकसित कर ली गयी । इसके अनुसार पानी में सूखी घास को डालकर कुछ दिन इंतजार करने के बाद सूक्ष्मदर्शी द्वारा जन्तुकों को देखा जा सकता है । इसी प्रकार मुर्गी का शोरबा या सूप (Chicken broth) रखने पर उसमें जन्तुकों की सृष्टि हो जाती है । ताजा बना हुआ शोरबा या शीरा आदि रखे रहने पर 1-2 दिन बाद ही गंदला या धुंधला हो जाता है व साथ ही उसकी स्वाभाविक गंध भी दुर्गन्ध में बदल जाती है ।

सूक्ष्मदर्शी से देखने पर इसमें जन्तुकों या अन्य सूक्ष्मजीवों को देखा जा सकता है । उस समय भी ये ज्ञात था कि उबालने से जन्तुकों या अन्य सूक्ष्मजीवों को नष्ट किया जा सकता है ।

जॉन नीढम (John Needham, 1748) ने यह पाया कि शोरबे को उबालने के बाद एक बंद फ्लास्क में रखने के बाद भी सूक्ष्मजीव पनप गये । स्पालॉन्जानी (Spallanzani) (1668) ने पाया कि फ्लास्क में बंद शोरबे को 45 मिनट उबालने के बाद सूक्ष्मजीव नहीं पनपते किन्तु लेवाइजर (1775) द्वारा ऑक्सीजन की खोज व जीवों के लिये इसके महत्व का पता लगने के बाद सूक्ष्मजीवों के स्वत: जनन को, पूरी तरह अमान्य कर पाना मुश्किल हो गया । अंतत: 1859 में फ्रांस के वैज्ञानिक लुई पाश्चर (Louis Pasteur) ने अपने सुप्रसिद्ध प्रयोग हंस कंठ फ्लास्क (Swan neck flask) द्वारा स्वत: जनन के सिद्धान्त को पूरी तरह अमान्य कर दिया । पाश्चर ने फ्लास्क में शोरबे को डालकर उसे उबाला ताकि उसके भीतर के सभी प्रकार के जीव नष्ट हो जायें । उसके बाद उन्होंने फ्लास्क की ग्रीवा या गर्दन को गर्मकर उसे हंस की गर्दन का आकार दे दिया इस प्रकार इस विशेष 'S' आकार (चित्र 1.6) के कारण शोरबे व बाह्य वातावरण के बीच वायु का विनिमय तो संभव हो पाया पर धूल के कण व सूक्ष्मजीव शोरबे तक नहीं पहुँच पाये । परिणामस्वरूप रखे रहने पर भी फ्लास्क में सूक्ष्मजीव नहीं पनप पाये । फ्लास्क की गर्दन तोड़ दिये जाने के बाद सूक्ष्मजीवों का शोरबे से सम्पर्क सम्भव हो पाया व शीघ्र ही उसमें बडी संख्या में सूक्ष्मजीव पनप गये । एक अन्य प्रयोग द्वारा पाश्चर ने बड़ी संख्या में सूक्ष्मजीवों की वायु में

उपस्थिति को प्रमाणित किया । इस प्रकार लुई पाश्चर ने न केवल स्वत: जनन की परिकल्पना को पूरी तरह से नकार दिया, बल्कि यह भी प्रमाणित किया कि सूक्ष्मजीव वातावरण में (वायु, जल आदि में) विद्यमान हैं व उचित परिस्थिति (यथा शोरबा) में पनपते हैं या गुणन करते हैं ।

स्वत: जनन की परिकल्पना को अमान्य करने में लुई पाश्चर के एक पक्षधर वैज्ञानिक का योगदान भी उल्लेखनीय है। ये थे - जॉन टिन्डल (1820-1893) जो इंग्लैण्ड के एक वैज्ञानिक थे व उन्होंने कुछ पदार्थो में सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न तापरोधी बीजाणुओं की उपस्थिति को पाया व उन्हें नष्ट करने का तरीका विकसित किया ।

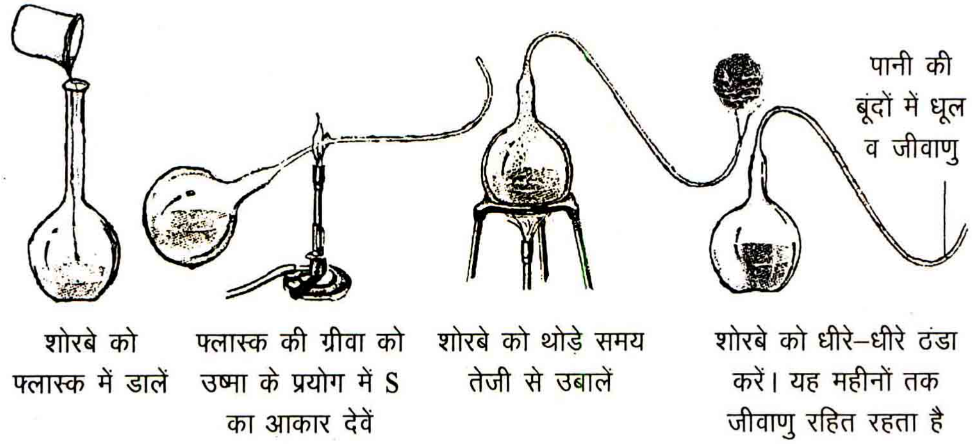

चित्र 1.6 लुई पाश्चर का हंस कंठ फ्लास्क प्रयोग

यह प्रक्रिया टिन्डलीकरण या Tyndalization नाम से जानी जाती है जो Intermittent heat sterilization या विरामी ताप निर्जर्मीकरण है ।

कुछ सूक्ष्मजीवों यथा जीवाणुओं में तापरोधी बीजाणु (उदाहरण अन्त:बीजाणु या Endospore) होने के कारण एक बार उबालने के बाद सी शोरबे में सूक्ष्मजीवों के पनपने की गुत्थी इस प्रकार सुलझ पाई व टिन्डलीकरण की प्रक्रिया भी विकसित हुई ।

लुई पाश्चर (Louis Pasteur) फ्रांस में जन्मे थे व उन्होंने B.A., B.Sc, M.Sc D.Sc की उपाधियाँ अर्जित की थीं । थोड़े समय भौतिक विज्ञान पढ़ाने के बाद वे रसायन शास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हो गये थे । स्वत: जनन की परिकल्पना को नकारने के अरिरिक्त उन्होंने और भी कई स्मरणीय कार्य किये थे ।

- त्रिविम रसायन (Stereo chemistry) की स्थापना
- उन्होंने यह भी खोज की कि कुछ प्रकार के जीव अवायवीय प्रकार के भी होते है यथा यीस्ट । इस अवायवीय या अनॉक्सीय जीवन शैली (Anaerobic mode of life) को उनके नाम से जोड़कर पाश्चर प्रभाव (Pasteur effect) का नाम दिया गया है ।
- इसके अतिरिक्त उन्होंने किण्वन क्रिया का अध्ययन करके किण्वन (Fermentation) की वास्तविक प्रकृति को समझाया। उनके काल तक किण्वन के विषय में वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि किण्वन एक रासायनिक क्रिया है व उन रासायनिक परिवर्तनों के साथ ही साथ उसमें सूक्ष्मजीवों का भी स्वत: जनन हो जाता है । उदाहरणस्वरूप गन्ने के रस में शर्करा तो रासायनिक क्रिया द्वारा एल्कोहॉल या शराब में परिवर्तित हो जाती है व

इसी क्रिया में यीस्ट स्वतः उत्पन्न हो जाती है । पाश्चर ने बताया कि किण्वन सूक्ष्मजीवों के द्वारा उत्पन्न होने वाली कार्यिकी क्रियायें हैं व इस अवधि में रासायनिक परिवर्तन के साथ ही साथ सूक्ष्मजीवों का गुणन भी होता है अर्थात् यीस्ट ही शर्करा को एल्कोहॉल में बदल रहा है व साथ ही साथ यीस्ट का गुणन भी होता है । इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी बताया कि प्रत्येक प्रकार का किण्वन एक विशिष्ट प्रकार के सूक्ष्मजीव द्वारा एक विशेष वातावरणीय दशा में ही हो पाता है ।

- पाश्चर ने मदिरा निर्माण में आ रही एक समस्या का निदान पाश्चरीकरण प्रक्रिया (Pasteurization) के विकास से किया । पाश्चरीकरण आज 'खाद्य ' प्रसंस्करण में बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हो रही है । इस क्रिया में केवल उन्हीं सूक्ष्मजीवों को नष्ट किया जाता है जो हानिकारक है । Sterilization या निर्जर्मीकरण में सभी जीवों को नष्ट किया जाता है चाहे वे हानिकारक हो या नहीं ।
- इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ सूक्ष्मजीवों व उनके रोग से सम्बन्ध विषय पर भी उल्लेखनीय कार्य किया । साथ ही उन्होंने रेबीज (जलांतक) से बचाव के टीके का भी विकास किया ।

1.5 बीमारी : रोगाणु सिद्धान्त व रॉबर्ट कॉक (Germ theory of disease and Robert Koch)

प्राचीनकाल में बीमारियों का कारण दैवीय प्रकोप व मौसम का बदलाव आदि माना जाता था । यद्यपि लम्बे समय से यदा-कदा व्याधियों का कारण जैविक वस्तुएँ होने की आशंका भी व्यक्त की जाती थी । आधुनिक काल में जैकब हेन्ले (1840) ने सूक्ष्म जीवों को रोगों का जनक माना व यह विचार व्यक्त किया कि संक्रामक रोगों का संचरण (transmission) वायु व सम्पर्क से सम्भव है ।

लुई पाश्चर ने किण्वन (fermentation) के क्षेत्र में काम करते हुए यह सुझाव दिया कि सूक्ष्म जीव रोग उत्पन्न कर सकते हैं । उनका यह सुझाव ही रोगाणु सिद्धान्त बन गया । मगर लुई पाश्चर इस सिद्धान्त को प्रमाणित नहीं कर पाये ।

रोगाणु सिद्धान्त को प्रमाणित करने का श्रेय राबर्ट कॉक (1876) (Henerrich Herman Robert Koch) को जाता है। राबर्ट कॉक एक जर्मन चिकित्सक थे व जैकब हेन्ले के विद्यार्थी भी थे । हेन्ले के विचारों से कॉक को दिशा मिली थी। उनका कार्यस्थल जर्मनी का एक छोटा गांव था । जहाँ शोध कार्य करने हेतु पर्याप्त साधन भी न थे परन्तु अपनी सूझबूझ, लगन व मेहनत से उन्होंने अपना नाम अविस्मरणीय कर लिया । यद्यपि कॉक मानव चिकित्सक थे किन्तु कॉक ने अपना शोध कार्य पशुओं में होने वाले रोग Anthrax से प्रारम्भ किया । एन्थ्रेक्स मुख्यतः एक पशु रोग है व गाय, भेड़, घोड़े आदि को प्रभावित करता है । एन्थ्रेक्स रोग मनुष्यों में भी होता है एन्थ्रेक्स रोग एक जीवाणु द्वारा होता है व इसके जीवाणु रोगी पशु के रक्त प्रणाली में पाये जाते हैं । कॉक ने एन्थ्रेक्स बीमारी पैदा करने वाले जीवाणु का पता लगाया। उन्होंने इस जीवाणु (Bacteria) का पृथक्करण (Isolation) करने में सफलता पाई व साथ ही इसका शुद्ध संवर्ध तैयार किया ।

किसी भी प्राकृतिक स्त्रोत जैसे मृदा बीमार पशु का रक्त आदि में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं । इनमें से एक वांछित (desired) सूक्ष्म जीव को अलग (Isolate) करना ही पृथक्करण है । शुद्ध संवर्ध यानि ऐसा संवर्ध जिसमें केवल एक ही प्रकार के जीव (सूक्ष्मजीव) का संवर्धन हो रहा हो ।

एन्थ्रेक्स रोग पर शोध करके राबर्ट कॉक ने बीमारियों के रोगाणु सिद्धान्त का न केवल निश्चित प्रमाण दिया बल्कि किसी सूक्ष्मजीव व उससे होने वाली बीमारी को सुनिश्चित करने के लिये नियमों का एक समुच्चय भी बनाया जिन्हें कॉक के नियम (Koch's Postulates) कहा जाता है ।

संक्षेप में ये नियम इस प्रकार से हैं ।

(1) संदिग्ध सूक्ष्मजीव प्रत्येक रोगी में उपस्थित व स्वस्थ परपोषी (Host) में अनुपस्थित होना चाहिए । यहाँ संदिग्ध सूक्ष्मजीव से आशय है - वह सूक्ष्मजीव जो उस विशिष्ट बीमारी का कारक माना जा रहा है ।
(2) उस सूक्ष्मजीव का पृथक्करण व उसका कृत्रिम संवर्ध माध्यम (Artificial culture-medium) पर शुद्ध संवर्ध तैयार करना ।
(3) एक स्वस्थय परपोषी में शुद्ध संवर्ध से वह सूक्ष्मजीव इन्जेक्शन द्वारा या अन्य विधि द्वारा संदूषित करने पर वैसी ही बीमारी उत्पन्न हो जाये जैसी प्रकृति में होती है ।
(4) प्रायोगिक रूप से बीमार किये गये रोगी से सूक्ष्मजीव का पुन : पृथक्करण (re-isolation) करना । (चित्र 1.7) इनके अतिरिक्त राबर्ट कॉक की सूक्ष्मजैविकी के क्षेत्र में अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं ।
   (a) **शुद्ध संवर्ध तकनीक (Pure-culture techniques)** व **जर्महीन तकनीक (Aseptic technique) (इसमें प्रयोगशाला संवर्धन माध्यम में अगार-अगार (Agar-Agar**) का उपयोग भी सम्मिलित है ।)
   (b) क्षय रोग (T.B.) के रागकारक जीवाणु माइकोबैक्टिरियम ट्यूबरकुलोसिस (Mycobacterium- tuberculosis) की खोज एवं अध्ययन व हैजा (Cholera) के रोगकारक की खोज । राबर्ट कॉक को क्षय रोगाणु से संबंधित शोध कार्य हेतु 1905 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

लुई पाश्चर व राबर्ट कॉक को अपनी उपलब्धियों के कारण बहुत मान सम्मान व पहचान मिली व इनको सूक्ष्मजीव विज्ञान के महापुरुष (Father or giants of microbiology) कहते है । Germ theory (रोगाणु सिद्धान्त) के स्थापित हो जाने के बाद विश्व के कोने-कोने से अनेक वैज्ञानिक इन दोनों महान् वैज्ञानिकों के साथ काम करने के लिये आये व बहुत सी बीमारियों के रोगकारकों पता लगा लिया गया ।

बोध प्रश्न - 1

(a) जीवाणु की खोज सर्वप्रथम किसने की थी ?

....

(b) प्रथम सूक्ष्मदर्शी विकसित करने वाले व्यक्तियों के नाम क्या-क्या हैं ?

....
(c) हंस फ्लास्क प्रयोग द्वारा सूक्ष्मजीवों के स्वत: जनन को अमान्य करने वाला वैज्ञानिक कौन था ?

....
(d) रोगाणु सिद्धान्त को प्रमाणित करने का श्रेय किस वैज्ञानिक को जाता है?

....
(e) क्षय रोग के रोगकारक का नाम क्या है ?

....

सूक्ष्मजीवों की रोग उत्पन्न करने की क्षमता व महत्व के प्रकाश में आने से रोग विज्ञान से जुड़े तीन क्षेत्रों में पर्याप्त शोध कार्य हुआ जो आज भी जारी है ।

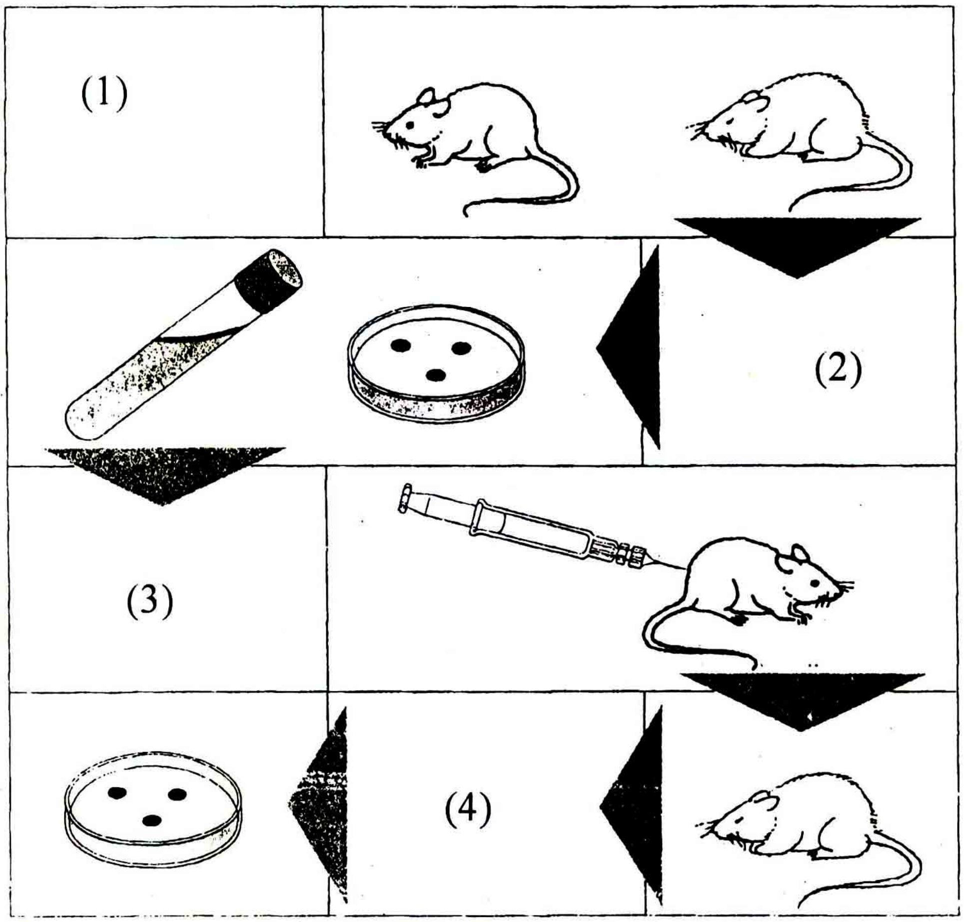

चित्र 1.7 : कॉक के नियमों को प्रयोग कर एक रोगकारक सूक्ष्मजीव व उसमें उत्पन्न रोग के सम्बन्ध को स्थापित करना; (1) बीमार चूहे में सूक्ष्मजीवों का प्रेक्षण करें. ये सूक्ष्मजीव स्वस्थ चूहे में अनुपस्थित हैं; (2) बीमार चूहे से सूक्ष्मजीवों का पृथक्करण व प्रयोगशाला में संवर्धन; (3)

पृथकित व संर्वधित सूक्ष्मजीवों को स्वस्थ चूहे में टीके द्वारा प्रवेश कराने पर स्वस्थ चूहा बीमार हो जाता है; (4) प्रयोग द्वारा बीमार किये गये छे से सूक्ष्मजीवों का पुन: पृथक्करण ।

1.6 टीकाकरण (Vaccination)

चेचक या माता (बड़ी माता) या Small pox मानव इतिहास में एक भयंकर व भयभीत करने वाली बीमारी रही है । इस अत्यन्त संक्रामक रोग से प्रभावित रोगियों की मृत्युदर 25 से 40% तक रहती थी । जिन रोगियों की जान बच जाती थी उनकी त्वचा पर इस रोग से उत्पन्न फुंसियों / फफोलों (Pustules) के दाग (scars) रह जाते थे । ये दाग विशेष रूप से चेहरे पर दिखाई देते थे ।

क्योंकि भारत में इस रोग का उन्मूलन (Eradication) हो चुका है अत: इसके नये रोगी नहीं मिलते किन्तु 60 वर्ष से अधिक उम्र वाले कोई-कोई उदाहरण आपको दिख सकते हैं ।

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि यदि किसी व्यक्ति को यह रोग एक बार हो जाता था तो उसे इस रोग से जीवनपर्यन्त रोधक्षमता (Immunity) मिल जाती थी । ग्यारहवीं शताब्दी में भारत व चीन में इसके बचाव की एक विधि विकसित होने लगी जिसे सोलहवीं शताब्दी तक चीनियों ने बहुत विकसित कर लिया । इसमें रोगी के फफोले (Pustule) से मवाद (Pus) लेकर स्वस्थ व्यक्ति की त्वचा पर खरोंच (Scratch) दिया जाता था इसे वेरियोलेशन-टीका (Variolation) कहा जाता था । यह विधि सुरक्षित नहीं थी व अपनाने वालों में से 1-2% तक की मृत्यु भी हो जाती थी ।

यद्यपि लेडी मोन्टेग्यू के कारण वेरियोलेशन का प्रसार इंग्लैण्ड में 1721 में हुआ था व अमेरिका में 1776 में इसका प्रयोग सेना में भी किया गया किन्तु 1796 में इंग्लैण्ड के एक चिकित्सक **एडवार्ड जैनर (Edward Jenner)** (1749-1823) जो चेचक से बचने का सुरक्षित तरीका खोज रहे थे, के ध्यान में आया कि ग्वालनों को चेचक न के बराबर होता है । जैनर ने यह भी पाया कि वे प्राय: गौशीतला (Cow pox) या गोचेचक से प्रभावित हो चुकती है । जैनर ने यह परिकल्पना की कि, गौचेचक व चेचक सम्बन्धित रोग हैं व गौचेचक से ग्रसित होने पर चेचक से बचाव हो सकता है । 1798 में जैनर ने एक बच्चे में पहले गौचेचक का टीका लगाया व कुछ दिन बाद चेचक का । बच्चे को चेचक नहीं हुआ व इस प्रकार पहला टीका (Vaccine) विकसित हुआ ।

लुई पाश्चर ने 1880 में कुक्कुट हैजे (Chicken cholera) व 1885 में रेबीज या जलांतक (Rabies) का टीका विकसित किया । पाश्चर ने खोज में पाया कि **उग्र रोगाणु** (Virulent pathogen) को यदि **क्षीण** (Attenuate) कर दिया जाये तो यह क्षीण (Attenuated) रोगाणु परपोषी को प्रतिरक्षा प्रदान करता है । रेबीज व कुक्कुट हैजा दोनों के टीके में क्षीण रोगाणु का प्रयोग किया गया था ।

जैनर के योगदान को ध्यान में रखते हुए पाश्चर ने इस प्रकार के टीके के लिए वैक्सीनेशन (Vaccination) शब्द काम में लिया क्योंकि (Vacca) (वैका) लेटिन भाषा में गाय को कहा जाता है । एक ध्यान देने वाली बात यह भी है कि जैनर ने 1798 में चेचक का व लुई पाश्चर ने

1885 में रेबीज रोग से बचाव का टीका विकसित कर लिया जबकि इन दोनों रोगों के रोगाणु के विषय व प्रकृति के बारे में आगे जाकर पता लग गया ।

आगे जाकर क्षीण रोगाणु के अतिरिक्त **अक्रिय** या मारे हुए रोगाणु (Killed pathogen), उपचारित विष (Treated toxin), **विशेष प्रतिजनी घटक (Individual antigenic component)** तथा **प्रतिविष** या **प्रतिरक्षी (Antitoxins or Antibodies)** आदि अन्य कई प्रकार के वैक्सीन या टीके विकसित किये गये हैं ।

1.7 प्रतिसूक्ष्मजीवी यौगिक व प्रतिजैविक (Antimicrobial compound and Antibiotics)

1880 के दशक में यह स्पष्ट हो गया कि बहुत सी बीमारियों के कारक सूक्ष्मजीव है । उस काल में सूक्ष्मजीव विज्ञानियों द्वारा सूक्ष्मजीवों के संवर्धन में एक तथ्य और भी सामने आया कि कुछ रंजक व यौगिक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि या गुणन का अवरोध करते हैं या रोकते हैं । इससे प्रेरित होकर एक जर्मन वैज्ञानिक पॉल-ईहरलिक (Paul-Ehrlich) जो कि राबर्ट कॉक की प्रयोगशाला में शोधकर्मी थे उन्होंने **रसायन चिकित्सा** की शुरूआत की । रसायन चिकित्सा में रसायनों द्वारा रोग का उपचार किया जाता है । ईहरलिक ने एक जीवाणुजनित रोग आतशक (Syphilis) का रासायनिक उपचार करना प्रारम्भ किया । वर्षो के अथक प्रयास के बाद 1912 में उन्होंने आर्सेनिक का एक यौगिक खोज निकाला जो आतशक का प्रभावी उपचार था । क्योंकि इहरलिक को यह सफलता अपने 606वें प्रयोग में मिली, अत: इस यौगिक का नाम सालवरसन-606 (Salvarson-606) रखा गया था । सालवरसन 606 को काम में लेने से रोगियों में कुछ समस्याएं भी पनप जाती थीं । व इसका इन्जेक्शन लगाना भी बहुत मुश्किल कार्य था । फिर भी लन्दन के एक चिकित्सक अलेक्लेन्दर फ्लेमिंग ने इसके प्रयोग को काफी बढ़ावा दिया । सालवरसन के प्रयोग की सफलता ने **अलेक्जेन्डर फ्लेमिंग** को अन्य जीवाणुरोधी पदार्थो को खोजने की प्रेरणा दी ।

फ्लेमिंग की पहली खोज **लाइसोजाइम (Lysozyme)** नाम का एक एन्जाइम था जो कुछ जीवाणुओं का अपक्षय या लयन (Lysis) करने में सक्षम था । फ्लेमिंग यद्यपि एक चिकित्सक थे पर उनका बहुत सा समय जीवाणुओं के संवर्धन व उनके अध्ययन में व्यतीत होता था । सन् 1928 में स्टेफाइलोकोकस-आरीयस (Staphyllococus-aureus) जीवाणु संवर्धन में उन्होंने देखा कि एक अवांछित कवक उसमें उग आया है । उन्होंने यह प्रेक्षण किया कि कवक के चारों ओर कुछ दूरी पर जीवाणु वृद्धि नहीं कर पा रहे है । फ्लेमिंग ने सोच-विचार के बाद निष्कर्ष निकाला कि कवक कोई जीवाणुरोधी शातक बना रहा है जो संवर्धन माध्यम में पहुंच कर जीवाणुओं की वृद्धि रोक रहा है । वह कवक पेनिसिलियम (Penicillium) था । जीवाणुरोधी यौगिक का नाम फ्लेमिंग ने पेनिसिलिन (Penicillin) रखा । उसके बाद फ्लेमिंग ने पेनिसिलियम के संवर्ध तैयार किये व उससे एक घुलनशील निचोड (extract) प्राप्त किया । जिसमें जीवाणुओं को नष्ट करने की क्षमता थी । पेनिसिलिन को शुद्ध रूप में फ्लेमिंग न प्राप्त कर पाये इसलिए पेनिसिलिन का उपयोग सम्भव न हो पाया ।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय में संक्रामक रोगों से लड़ने के लिये प्रभावी प्रतिसूक्ष्मजीवी यौगिकों की आवश्यकता को देखते हुए हावर्ड फ्लोरी और अर्नस्ट चैन ने इन यौगिकों का अध्ययन व खोज प्रारम्भ की । वे कुछ वर्षो पूर्व की गई फ्लेमिंग की खोज से काफी प्रभावित हुए व उन्होंने पेनिसिलिन को शोधित (Purify) करने मे सफलता पा ली । उन्होंने पेनिसिलिन की सूक्ष्मजीवों के विरुद्ध महती शक्ति व क्षमता को भी पहचाना । द्वितीय महायुद्ध में पेनिसिलिन की उपलब्धता से असंख्य मनुष्यों की जान बचायी जा सकी । इस योगदान के लिए **फ्लेमिंग, फ्लोरी व चैन** को 1945 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया । पेनिसिलिन पहला **प्रतिजैविक (Antibiotic)** यौगिक था । उसके बाद से नये से नये प्रतिजैविक खोजे जा चुके है । आधुनिक चिकित्सा में प्रतिजैविकों का उपयोग बढ़ता ही जा रहा है ।
प्रतिजैविक एक ऐसा जटिल यौगिक है जो एक सूक्ष्मजीव द्वारा बनाया जाता है व किसी अन्य सूक्ष्म जीव के विरुद्ध प्रभावी होता है ।

1.8 प्रतिरक्षा विज्ञान (Immunology)

जिस समयावधि में रोगाणु सिद्धान्त व उससे सम्बन्धित तकनीकों व अन्य क्षेत्रों का विकास हो रहा था, उसी काल में प्रतिरक्षा-विज्ञान भी स्थापित हुआ । इस क्षेत्र में दो वैज्ञानिकों के नाम स्मरणीय है ।

इल्या इलिच मेटचनिकॉफ (Ilya Ilich Metchinkoff 1845-1916) का जन्म रूस में हुआ । राबर्ट कॉक के समान ये भी जैकब हैनले के जर्मनी में शिष्य थे । उन्होने तारामीन (Starfish) के लारवा (Larva) के सावधानीपूर्वक अध्ययन के बाद 1884 में निष्कर्ष दिया । उन्होंने **भक्षिकाणुक सिद्धान्त (Theory of Phagocytosis)** दिया । उन्होंने प्रतिपादित किया कि शरीर में पायी जाने वाली चलकोशिकाएं शरीर में संक्रमण करने वाले सूक्ष्मजीवों तथा जीवाणुओं व अन्य बाहरी पदार्थो का भक्षण कर लेती है । उन्होंने इस प्रक्रिया को भक्षिकाणुक क्रिया (Phagocytosis) का नाम दिया ।

इस प्रकार से उन्होंने शरीर की प्रतिरक्षा या रोधक्षमता के लिये **कोशिकीय सिद्धान्त प्रतिपादित किया (Cellular basis of immunity)** । आज हम सब जानते हैं कि अधिकांश चल कोशिकाएं न्यूट्रोफिल व कुछ वृहतभक्षकाणु (Neutrophils & Macrophages) हैं, जो श्वेत रक्त कणों (W.B.C.) के ही प्रकार हैं ।
पॉल-इहरलिक ने शरीर की प्रतिरक्षा में देहद्रवी सिद्धान्त (Humoral basis of immunity) प्रस्तावित किया । इहरलिक के अनुसार संक्रमण के फलस्वरूप रक्त में आये रासायनिक परिवर्तनों से शरीर में रोधक्षमता आ पाती है । इस प्रकार से उन्होंने **प्रतिजन-प्रतिरक्षी संकल्पना (Antigen-Antibody Concept)** दी । मेटचनिकॉफ को इहरलिक का सिद्धान्त अमान्य था । परन्तु दोनों के सिद्धान्त ठीक पाये गये व आज भी मान्य है । इन दोनों वैज्ञानिकों को अपने इस कार्य हेतु 1908 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया । आज प्रतिरक्षा विज्ञान (Immunology) का स्थान चिकित्सा जगत में अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

बोध प्रश्न - 2

(a) चेचक से बचाव का टीका किसने विकसित किया था ?

....

(b) पॉल ईहरलिक द्वारा विकसित प्रथम यौगिक कौनसा था जो रासायनिक उपचार में उपयोगी पाया गया?

....

(c) पेनिसिलियम एक .... का नाम है

(d) भक्षिकाणुक सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाले वैज्ञानिक का नाम .... है

सूक्ष्मजीवों के अध्ययन से जीवन को आणविक स्तर पर समझना सम्भव हुआ है । **फ्रेडरिक ग्रिफिथ (Frederick -Griffith) 1928** ने जीवाणुओं में रूपान्तरण (Transformation) की खोज की । (उन्हीं के एक विद्यार्थी अवेरी ओसवाल्ड ने 1944 में मैक्लीऑड व मैकार्ट के साथ संयुक्त रूप से डी एन ए (DNA) की एक अन्य जीवाणु से खोज की)

बीडल एवं टाटम (Beadle and Tatum) 1941 द्वारा एक जीन एक एन्नाईम (One-gene-one-enzyme) की परिकल्पना की गई । जो एक कवक न्यूरोस्पोरा क्रेसा पर (Neurospora crassa) शोधकार्य कर विकसित की गई थी।

बहुत से वैज्ञानिकों ने एस्केरिकिया-कोलाई (Escherichia-coli) जीवाणु पर शोध कार्य करके डी.एन.ए, आर.एन.ए. व प्रोटीन की प्रकृति आदि के बारे में पता लगाया ।

सूक्ष्मजीवों पर शोधकार्य से **जीनोम का नियन्त्रण (Control of genome) व जैव तकनीकी का विकास (development of biotechnology)** सम्भव हो पा रहा है ।

इस क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण कार्य है :

जोशुआ लेडरबर्ग (Joshua Lederberg) द्वारा प्लाज्मिड (Plasmid) की खोज एन्जाइम; डी.एन.ए. क्लोनन DNA (cloning); पोलिमरेज अभिक्रिया शृंखला (Polymerase chain reaction), डीएनए प्रवर्धन (DNA-amplification) डी.एन.ए अनुक्रमण (DNA seqencing), मोनोक्लोनीय प्रतिरक्षी (Monoclonal-antibodies) व हाइब्रिडोमा तकनीक (Hybridoma) आदि (DNA- क्लोनन)

1.9 सारांश

1. सूक्ष्मजीवों का मानवजीवन व सम्पूर्ण जीव जगत में बहुत अधिक महत्व है ।
2. सभी ऐसे जीव जिन्हें हम अपनी नग्न आंखों से नहीं देख सकते, वे सूक्ष्मजीवों की श्रेणी में आते हैं, यथा - जीवाणु शैवाल, कवक, विषाणु प्रोटोजोआ व कृमि आदि ।
3. सूक्ष्मजीवों का स्वरूप, कार्यिकी जनन आदि का अध्ययन सूक्ष्म जैविकी या सूक्ष्म जीव विज्ञान है ।

4. हॉलेण्ड निवासी ल्यूवेन हॉक जीवाणु देखने वाले प्रथम व्यक्ति थे । इसीलिये ल्यूवेहॉक को सूक्ष्मजगत का पितामह कहा जाता है ।
5. सतरहवीं शताब्दी (17th Century) तक जीवों की स्वत: जनन या अजीवातजनन की अवधारणा सामान्य रूप से सर्वमान्य थी ।
6. रेडी (1668) ने एक प्रयोग द्वारा सड़ते हुए माँस से मक्खी के लार्वा के स्वत:जनन की अवधारणा को नकार दिया।
7. लुई पाश्चर (1859) ने हंस कंठ फ्लास्क प्रयोग द्वारा सूक्ष्मजीवों के स्वत:जनन की परिकल्पना को गलत सिद्ध कर दिया ।
8. लुई पाश्चर के महत्वपूर्ण कार्य है :- सूक्ष्मजीवों की अनाक्सी जीवन शैली किण्वन की वास्तविक प्रकृति, सूक्ष्मजीवों व उनका रोग से सम्बन्ध, पाश्चरीकरण क्रिया का विकास व रेबीज रोग से बचाव के टीके का विकास आदि ।
9. राबर्ट कॉक (1876) नामक जर्मन चिकित्सक ने बीमारियों के रोगाणु सिद्धान्त (Germ theory of disease) को प्रमाण द्वारा स्थापित किया । इसके अतिरिक्त उन्होंने शुद्ध संवर्ध तकनीक क्षय रोग के रोगकारक जीवाणु की खोज व अध्ययन आदि कई महत्वपूर्ण कार्य किये ।
10. सूक्ष्मजीवों की रोग उत्पन्न करने की क्षमता व महत्व प्रकाश में आने से रोग विज्ञान के क्षेत्र में कई दिशाओं में शोध कार्य होने लगा ।
11. रोग की रोकथाम के लिये टीकाकरण (Vaccination) का विकास हुआ । इस क्षेत्र में इंगलैण्ड के चिकित्सक एडवार्ड जैनर (1798) व लुई पाश्चर (1885) के नाम स्मरणीय है ।
12. सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न रोगों के नियन्त्रण या उपचार हेतु पॉल ईहरलिक (1912) द्वारा सफलता पूर्वक एक रसायन के प्रयोग से रसायन चिकित्सा या (Chemo therapy) का प्रारम्भ हुआ । इस क्षेत्र मे लन्दन के चिकित्सक अलेक्जेण्डर फ्लेमिंग (1928) द्वारा पेनिसिलिन के रूप में प्रथम प्रतिजैविकी की खोज बहुत महत्वपूर्ण है ।
13. संक्रमण को रोकने व उसके प्रभाव का प्रतिकार करने की क्रियाओं का अध्ययन प्रतिरक्षा विज्ञान (Immunology) है । इस क्षेत्र में रूस के मैटचिनकॉफ द्वारा स्थापित भक्षिकाणुक क्रिया (Phagocytosis) व पॉल ईहरलिक द्वारा प्रतिपादित प्रतिरक्षा में देह द्रवी सिद्धान्त (Humoral basis Immunity) स्मरणीय है ।
14. सूक्ष्मजीवों के अध्ययन से जीवन को आणविक स्तर पर समझना सम्भव हो पाया है । सूक्ष्मजैविकी क्षेत्र में शोध कार्य द्वारा ही **जैवतकनीकी का चहुंमुखी विकास (development of Biotechnology**) हो रहा है ।

1.10 शब्दावली

1. सूक्ष्मजैविकी : सूक्ष्मजीवों का अध्ययन
2. स्वत: जनन : निर्जीव कार्बनिक पदार्थो में जीव उत्पन्न करने की मान्यता ।
3. शुद्ध संवर्ध : ऐसा संवर्ध जिसमें केवल एक ही प्रकार के सूक्ष्मजीव का संवर्ध्न हो रहा हो ।

4. एन्थ्रेक्स : जीवाणु द्वारा प्रमुख रूप से पशुओं (गाय, घोड़ा आदि) में होने वाला रोग जो यदा-कदा मनुष्यों को भी प्रभावित करता है ।
5. वैक्सीनेशन : रोग से बचाव का टीका
6. प्रतिजैविक : एक ऐसा जटिल यौगिक जो एक सूक्ष्मजीव बनाया जाता है व किसी अन्य सूक्ष्मजीवी के विरुद्ध प्रभावी होता है ।

1.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. पेल्क्जार, चान व क्रीग - माइक्रोबाइलोजी, टाटा, मैक्ग्राहिल पब्लिशिंग क., नई दिल्ली
2. पोवार एवं दागिनावाला - जनरल माइक्रोबाइलोजी, **हिमालय पब्लिशिंग हाउस-** मुम्बई, दिल्ली, नागपुर ।
3. **रोनाल्ड एटलस -** प्रिंसिपल ऑफ माइक्रोबाइलोजी, **मोस्बी - ईयर बुक इंक, यू.एस.ए. ।**
4. **टोराटोरा, फंक एवं केस** - माइक्रोबाइलोजी एन इन्ट्रोडक्शन - दी बेन्जामिन / कम्मिन्गस पब्लिशिंग कं., इन्क. केलिफोर्निया, यू.एस.ए ।
5. सिन्हा एवं श्रीवास्तव- एन इन्ट्रोडक्शन टू बेक्टीरिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।
6. **त्रिवेदी, शर्मा एवं धनखड़ (2006),** सूक्ष्मजैवीय विविधतायें, रमेश बुक डिपो, जयपुर

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

(a) एन्टोनीवॉन ल्यूवेनहॉक

(b) हंस एवं जकारियाज जैन्सन

(c) लुई पाश्चर

(d) राबर्ट कॉक को

(e) माइकोबेक्टीरियम टयूबरकुलोसिस

(f) सूक्ष्मजैविकी का विकास एवं महत्व

बोध प्रश्न 2

(a) एडवार्ड जैनर

(b) सालवर सन - 606

(c) कवक

(d) मेटचनिकॉफ

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पाश्चरीकरण व निर्जर्मीकरण में अन्तर स्पष्ट करें ।
2. स्वत: जनन की परिकल्पना से आप क्या समझते हैं ?
3. लुई पाश्चर द्वारा सूक्ष्मजैविकी के क्षेत्र में क्या-क्या कार्य किये गये थे ।
4. शुद्ध संवर्ध किसे कहते है ?
5. क्षीण रोगाणु क्या होता है ?

6. पॉल इहरलिक व अलेक्जेण्डर फ्लेमिंग के सूक्ष्मजैविकी में क्या-क्या योगदान हैं ।
7. मेटचनिकॉफ का सूक्ष्मजैविकी में क्या योगदान है ।

इकाई 2 : जीवाणुओं का सामान्य विवरण (General Account of Bacteria)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 जीवाणुओं के सामान्य लक्षण
2.3 जीवाणु आवास एवं आकारिकी
2.4 जीवाणु कोशिका की संरचना
2.5 जीवाणुओं का पोषण
2.6 प्रोकेरियोटी एवं यूकेरियोटी जीवों में अन्तर
2.7 इकाई सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 संदर्भ ग्रन्थ
2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य

1. जीवाणु क्या होते हैं ? यह जानना ।

2. जीवाणुओं की संरचना व पोषण आदि के विषय में जानना ।

3. प्रोकेरियोटी एवं यूकेरियोटी जीवों में विभेदन समझना ।

2.1 प्रस्तावना

हमारे वातावरण यथा वायु, जल, मृदा आदि में असंख्य सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं । ये हमारे जीवन को परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं । ये सूक्ष्मजीव कई प्रकार के होते हैं इनमें एक प्रमुख प्रकार के सूक्ष्मजीव है जीवाणु (Bacteria)।

जीवाणु प्राय: एक कोशिकीय व प्रोकेरियोटिक (Prokaryotic) प्रकार के सूक्ष्मजीव हैं । इन्हें संयुक्त सूक्ष्मदर्शी (Compound) या किसी अन्य आवर्धक उपकरण (magnifying device) के द्वारा ही देखा जा सकता है । जीवाणुओं की खोज हॉलेण्ड निवासी एन्टोनीवॉन ल्यूवेनहॉक (Antony von Leuwenhoek) ने 1675 में की । ल्यूवेन हाक ने स्वयंद्वारा निर्मित एक सरल किन्तु प्रभावी सूक्ष्मदर्शी द्वारा विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जल, सिरके व मानव के दांतों पर जमे हुए मैल में सूक्ष्म जीवों को प्रथम बार देखा । उन्होंने इन्हें डच भाषा में डायरकन्स (Dierkens) नाम दिया जो अनुवादित होकर जन्तुक (Animalcules) नाम हो गया । ल्यूवेनहॉक की इस खोज के कारण उन्हें Father of microbiology या Father of **Bacteriology**

(सूक्ष्मजैविकी के जनक या पितामह) कहा जाता है । एरेनबर्ग (Ehrenberg 1829) ने इनका नामकरण जीवाणु (Bacteria) के रूप में किया । बैक्टीरिया की उत्पत्ति बेक्टिरियोन शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है एक छोटी छड़ (= small rod)। जीवाणुओं की प्रकृति, स्वभाव एवं कार्यिकी के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी लुई पाश्चर (Louis Pasteur 1822 - 1895) ने किण्वन (Fermentation) आदि क्रियाओं का अध्ययन कर प्रदान की । उन्होंने जीवाणुओं के स्वत: जनन के सिद्धान्त को गलत सिद्ध किया । इसके अतिरिक्त उन्होंने सूक्ष्मजीवों द्वारा रोगों की उत्पत्ति के लिये रोगाणु सिद्धान्त (Germ Theory of Disease) की परिकल्पना की ।

उनके समकालीन जर्मन चिकित्सक एवं वैज्ञानिक राबर्ट कॉक (Robert Koch - 1843-1910) ने रोगाणु सिद्धान्त को प्रमाणित किया व कॉक के नियम (Koch's Postulates) स्थापित किये जो आज भी मान्य हैं । राबर्ट कॉक ने अपना शोधकार्य एक जीवाणु द्वारा होने वाले पशु रोग एन्थ्रेक्स (Anthrax) पर किया । इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी प्रमाणित किया कि मनुष्यों में क्षय रोग (Tuberculosis), हैजा (cholera) भी जीवाणुओं के संक्रमण से होता है ।

बुरिल (Burrill, 1878) ने यह बताया कि जीवाणुओं द्वारा पादप रोग होते हैं ।

हैन्स क्रिशचियन ग्राम (Hans Christian Gram 1853 - 1948) ने 1884 में जीवाणुओं के लिये एक अभिरंजन तकनीक (staining technique) का विकास किया जिसे ग्राम अभिरंजन (gram stain) कहते हैं । वोरोनिन (Wornin 1866) ने ग्रन्थियों (nodules) में जीवाणुओं की उपस्थिति प्रमाणित की । विनोग्रेडस्की (Winogradsky 1890) ने जीवाणुओं का नाइट्रीकरण में महत्व बताया ।

अभिरंजन तकनीकों (staining techniques) एवं इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी के प्रयोग से विभिन्न सजीव कोशिकाओं एवं सूक्ष्म जीवों का विस्तृत अध्ययन करना संभव हुआ । जीवाणुओं के अध्ययन का महत्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है । सूक्ष्मविज्ञान की शाखा जिसके अंतर्गत जीवाणुओं की संरचना, उपापचय (Metabolism) एवं प्रजनन (reproduction) आदि का अध्ययन किया जाता है, उसे जीवाणु विज्ञान (Bacteriology) कहते हैं ।

2.2 जीवाणुओं के सामान्य लक्षण (General Characters of Bacteria)

जीवाणु एककोशिकीय (unicellular) एवं प्रोकेरियोटिक (Prokaryotic) सूक्ष्म जीव हैं । इनमें सुनिश्चित केन्द्रक (definite nucleus) एवं प्रत्यक्षरूप से लैगिकता (sexuality) का अभाव होता है । ये लक्षणों में वनस्पति तथा जन्तु दोनों से ही समानता दर्शाते हैं ।

(1) जीवाणु सर्वव्यापी (Ubiquitous or **omnipresent**) होते हैं । अर्थात् ये जल, पृथ्वी तथा वायु सभी स्थानों में पाये जाते हैं ।

(2) ये अत्यन्त सरल संरचना वाले **एककोशिकीय** (unicellular) एवं प्रोकेरियोटिक (Prokaryotic) सूक्ष्मजीव हैं ।

(3) इनकी कोशिकाओं के बाहर दृढ़ कोशिका भित्ती (rigid cell wall) पाई जाती है । इसी कारण इन्हें पारम्परिक रूप से पादप जगत में रखा जाता रहा है ।

(4) इनकी दृढ़ कोशिका भित्ति **म्यूकोपेप्टाइड** (mucopeptide) से निर्मित होती है । इसमें **सेलुलोस** (cellulose) नहीं पाया जाता है ।

(5) बहुत कम ही जीवाणु प्रकाश **संश्लेषी** (Photosynthetic) होते हैं । इन प्रकाश संश्लेषी जीवाणुओं (Photosynthetic bacteria) में विशेष प्रकार का जीवाणु क्लोरोफिल पाया जाता है । इनमें वास्तविक क्लोरोफिल का अभाव होता है ।

(6) अधिकांश जीवाणु, क्लोरोफिल के अभाव के कारण अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते हैं, अत : वह **मृतपोषित** (saprophytic**), परजीवी** (parasitic) या सहजीवी (symbiotic) के रूप में अपना भोजन प्राप्त करते हैं । इनमें पोषण की सर्वाधिक विविधता (maximum) पाई जाती है ।

(7) क्योंकि इनकी कोशिकाऐ प्रोकेरियोटिक होती है अत: **नील-हरित शैवालों** (blue green algae) की भाँति जीवाणुओं में केन्द्रक सुस्पष्ट नहीं होता है । इनके केन्द्रक में केन्द्रक कला (nuclear membrane) तथा **केन्द्रिक** (nucleolus) का अभाव होता है । किन्तु इनकी कोशिकाओं में केन्द्रक के समान एक संग्रथित (composite) संरचना अवश्य पाई जाती है । जिसे केन्द्रकाभ (nucleoid) या इन्सीपियेन्ट केन्द्रक (Incipient nucleus) कहते हैं ?

(8) जीवाणुओं में **माइटोकॉण्ड्रिया** (mitochondria) का अभाव होता है । इनका कार्य अंतर्वलित कोशिकाद्रव्यी कला में स्थित मीज़ोसोम (mesosome) द्वारा किया जाता है ।

(9) **अन्तर्द्रव्यी जालिका** (endoplasmic reticulum) : तथा गॉल्जी उपकरण (Golgi apparatus) एवं अंत : प्रद्रव्यजालिका (endoplasmic reticulam) आदि का अभाव होता है ।

(10) जीवाणु कोशिका द्रव्य में Cyclosis नहीं पाई जाती । इसमें 70 S राइबोसोम स्वतंत्र रूप से बिखरे हुए पाये जाते हैं ।

(11) जीवाणुओं में **आर.एन.ए.** (RNA) तथा **डी.एन.ए.** (DNA), दोनों प्रकार के **न्यूक्लिक अम्ल** (nucleic acid) पाये जाते हैं ।

(12) जीवाणु कोशिका में एकल डी.एन.ए. गुणसूत्र को प्रदर्शित करता है । एवं यह वर्तुलाकार (Circular) होता है । इनके DNA में हिस्टोन प्रोटीन (Histone Protein) नहीं मिलते अत: स्पष्ट गुणसूत्र (distinct chromosome) नहीं मिलता।

(13) एकल डी.एन.ए. होने के कारण जीवाणु कोशिका अगुणित (Haploid) होती है ।

(14) जीवाणुओं में कायिक जनन (Vegetative reproduction) सामान्यत: द्विखण्डन (Binary fission) द्वारा होता है । इसके अतिरिक्त पुटिका निर्माण (Cystformation) एवं मुकुलन (Budding) भी पाया जाता है ।

(15) इनमें अंलैगिक जनन कोनीडिया (conidia), बीजाणु (spore) एवं अत: बीजाणु (endospore) द्वारा होता है ।

(16) जीवाणुओं में वास्तविक लैगिंक जनन (True sexual reproduction) नहीं पाया जाता है। जीवाणुओं में **आनुवंशिक पुनर्योजन** (genetic recombination) **संयुग्मन** (conjugation), **पराक्रमण** (transduction) तथा **रूपान्तरण** (transformation) द्वारा होता है ।

2.3 जीवाणु आवास एवं आकारिकी (Bacteria habitat and morphology) :

जीवाणु आवास (Habitat) :

जैसाकि हम जानते हैं, जीवाणु **सर्वव्यापी** (ubiquitous or omnipresent) होते हैं, ये भूमि, मृदा, वायु, जल, भोजन व जन्तु इत्यादि सभी में मिलते हैं । शायद ही संसार में कोई ऐसी जगह हो जहाँ बैक्टीरिया नहीं पाये जाते, यहाँ तक कि मानव आंत्र में एस्केरिशिया कोलाई (Escherichia coli) नामक जीवाणु मिलते हैं । जीवाणुओं की लगभग 2000 प्रजातियों की जानकारी अभी तक प्राप्त हुई है । ये प्रायः उन सभी स्थानों पर पाये जाते हैं, जहाँ ऊर्जा का स्रोत उपलब्ध है । ये न्यूनतम से उच्चतम ताप (-190°C से78°C) में भी पाये जाते हैं, कुछ जीवाणु तो बर्फ व उष्ण स्रोतों (Hot springs) में भी जीवित रहते हैं । जीवाणु हवा में हजारों फीट की ऊँचाई तक व जमीन में लगभग 16 फीट की गहराई तक पाये जाते हैं, **परन्तु वर्षा के जल, आसुत जल** तथा **ज्वालामुखी की राख** (volcano) में जीवाणु नहीं मिलते । सामान्यतया 1gm मृदा में 1000 से 10 मिलियन तक की संख्या में जीवाणु मिलते हैं । ये मल पदार्थों, फल, दूध, सब्जी इत्यादि में भी बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं । इनके कुछ गुण जैसे अत्यन्त **सूक्ष्मरूप** (minute form), **तीव्र विभाजनशीलता** (high rate of multiplication), **प्रतिरोधी बीजाणुअंतश्रोल** (resistant endospore) बनाने की क्षमता, पोषण में विविधता (variation in nutrition), आदि इन्हें सर्वव्यापी (ubiquitous or omnipresent) बनाते हैं ।

जीवाणु परिमाप (Size) :

जीवाणु अत्यधिक सूक्ष्म परिमाप के होते हैं, जिनको सूक्ष्मदर्शी की सहायता के बिना नहीं देखा जा सकता । इनका आमाप माइक्रॉन (Micron) में आंका जाता है । 1µm = 0.001 mm) जीवाणु कोशिका का व्यास 0.2 - 1.5 µ (सामान्यतया 0.5 से 1.0 µm) तथा इनकी औसत लम्बाई 2-5 µm तक होती है । कोकाई (cocci) या गोलाभ जीवाणुओं का व्यास (diameter) 0.5 - 2.5 µm होता है, जबकि **दंडाकार जीवाणु** (bacilli) की लम्बाई 0.3 से 15 µm एवं चौड़ाई से 0.2 से 2.0 से µm तक होती है । पानी की एक बूंद में लगभग 5 करोड़ जीवाणु हो सकते हैं एवं एक ग्राम जल में लगभग 5 खरब (5 trillion) जीवाणु आते हैं । तन्तुवत जीवाणु संरचना की लम्बाई 80 से 100 µm तक की हो सकती है। सबसे छोटे छड़ाकार जीवाणु **युबेक्टिरियम** (Eubacterium), डायालिस्टर न्यूमोसिन्टिस (Dialister pneumosintes) हैं जिसका परिमाप (size) 0.15 µ से 0.3 µ तक का होता है, जबकि जीवाणु बेसीलस बुश्चली (Bacillus

butschlii) की लम्बाई 80 µm तथा व्यास 3 से 6 µm तक का होता है । सबसे बड़ा जीवाणु बेगियाटोआ मिराबिलिस (Beggiatoa mirabilis) है जिसका व्यास 15 से 20 µm एवं लम्बाई कई सौ µm तक होती है ।

(1) **जीवाणुओं की आकृति एवं प्रकार** (Shape and Forms of Bacteria) : जीवाणुओं के आकार में अत्यधिक विविधता पाई जाती है । सामान्यत : एक जाति के सभी जीवाणु आकार में लगभग समान होते हैं, अत: पहचान (identification) तथा वर्णन की दृष्टि से आकार एक महत्वपूर्ण लक्षण है । जीवाणुओं के निम्नलिखित तीन प्रमुख आकार हैं ।

(1) गोलाकार (Spherical), (2) छड़ाकार या दण्डाणु (Rod shaped), एवं (3) कुंडलित या सर्पिलाकार (Helical or Spiral) । सभी आकारों के जीवाणु सामान्यतया द्विविखण्डन द्वारा गुणन करते हैं । जीवाणुओं के उत्तरोत्तर विभाजन (Successive division) कम से कम एक तल (single plane) व अधिकतम तीन तलों (Three planes) में संभव है । उत्तरोत्तर विभाजनों का तल (Plane of successive divisions) व विभाजन के फलस्वरूप बनने वाले जीवाणुओं का सम्मुच्य बनाने या न बनाने से भिन्न प्रकार के समूहन (Aggregation) संभव हो पाते हैं । अत : जीवाणुओं के आकार व समूहन से ये कई प्रकार से व्यवस्थित हो सकते हैं (चित्र 2.1) ।

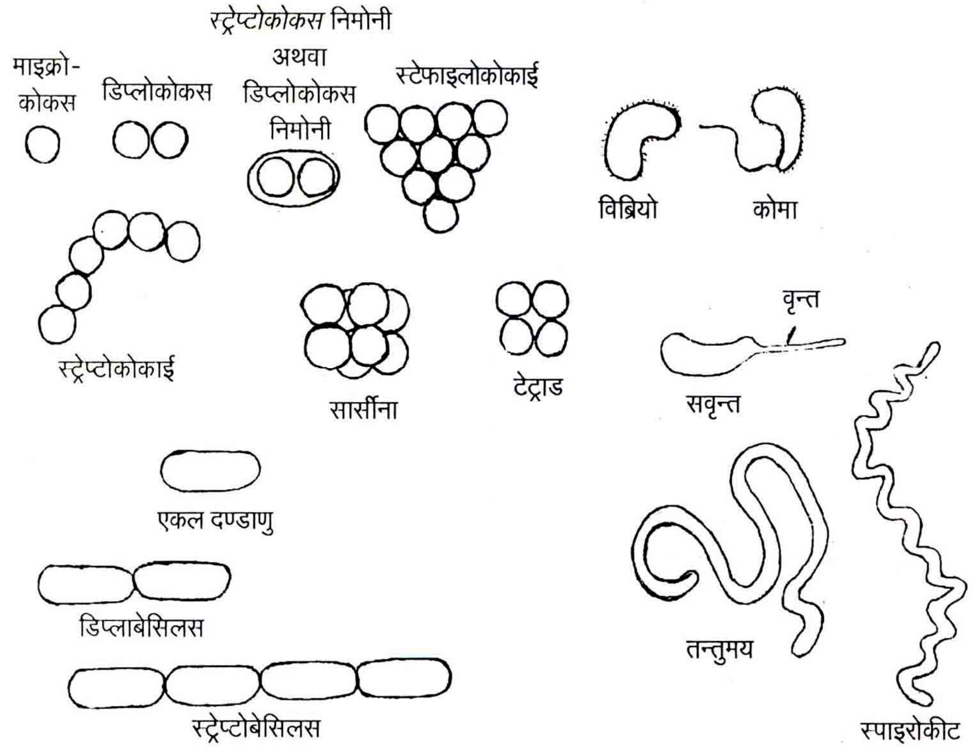

चित्र 2.1 : जीवाणुओं के विभित्र आकार एवं समूहन

(1) **गोलाकार या कोकस जीवाणु** (Spherical or Coccus) (Gr. कोकोस Kokkos = छोटा रसदार फल या कण) : ये जीवाणु गोलाकार होते हैं, जिसका व्यास 0.5 µ से 1.25 µm तक

होता है । इनमें कशाभिकाएँ उपस्थित नहीं होती अत: ये अचल (non-motile) तथा अशूक (Atrichons) होते हैं । इनकी कोशिकाओं का तीन तलों में विभाजन संभव है । मुख्य रूप से ये निम्न प्रकार के होते हैं ।

A. **माइक्रोकोकाई** (Micrococci) : जब कोकस जीवाणु अकेले मिलते हैं; उदाहरण : माइक्रोकोकस ऑरियस (Micrococcus agilis) एवं माइक्रोकोकस ऑरियर (Micrococcus aureus)

B. **डिप्लोकोकस** (Diplococcus) : जीवाणु कोशिका में द्विविभाजन होकर 2 कोशिकाएँ हैं तथा दोनों कोशिकाएँ युग्म में मिलती हैं । उदाहरण : डिप्लोकोकस बनती (Diplococcus pneumoniae)

C. **टेट्राकोकस** (Tetracoccus) : इनमें वर्गाकार आकृति के रूप में जुड़ी जीवाणु कोशिकाएँ पाई जाती हैं । उदाहरणार्थ: नाइसिरिया (Neisseria हुई चार गोलाभ टेट्रोजिनस (Micrococcus tetrogenus) एवं माइक्रोकोकस

D. **स्ट्रेप्टोकोकाई** (Streptococci) : जब गोलाभ जीवाणु एक ही दिशा में विभाजित होकर, जंजीर के समान एक श्रृंखला बनाते हैं, जैसे स्ट्रोप्टोकोकस लेक्टिस (streptococcus lactis)

E. **स्टेफाइलोकोकाई** (Staphylococci) : जब जीवाणु तीनों तलों में व अनियमित क्रम में विभाजित होकर अंगूर के गुच्छों के समान समूह बनाते हैं, जैसे : स्ट्रेफाइलोकोकस ऑरियस (Staphylococcus aureus)

F. **सार्सीनी** (Sarcinae) : जब गोलाकार जीवाणु तीन तलों में नियमित रूप से विभाजित होकर 8 अथवा अधिक कोशिकाओं का घनाभ (cuboidal) बनाते हैं, तो वह सार्सीनी (Sarcinae) कहलाता है । उदाहरण : **सार्सीना लूटिया** (Sarcinae lutea)

2. **छड़ाकार जीवाणु या दण्डाणु अथवा बेसिलस** (Bacillus) : बेसीलस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द बेसीलाई (bacilli) से हुई है, जिसका अर्थ होता है छड़ (rod) या डंडा । क्योंकि इन जीवाणुओं की आकृति छड़ या डंडे के समान होती है अत: इनको बेसीलस या छड़ाकार (rod shaped) जीवाणु कहा जाता है । इनके सिरे गोल, चपटे या नुकीले होते हैं, ये कशाभिकायुक्त (flagellated) या कशाभिकारहित (non-flagellated) होते हैं । छड़ाकार जीवाणु केवल लम्बे अक्ष के समकोण पर विभाजित होते हैं । पौधे में रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु अधिकांशत: इसी श्रेणी के होते हैं । ये निम्न प्रकार के हो सकते हैं :

A. **एकल दण्डाणु या मोनोबेसिलस** (Monobacillus) : जब छड़ाकार जीवाणु कोशिका एकल रूप में पाई जाती है ।

B. **डिप्लोबेसिलस** (Diplobacillus) : जब दण्डाणु दो के समूह या युग्म (pair) के रूप में मिलते हैं ।

C. **स्ट्रेप्टोबेसिलस** (Streptobacillus) : जब बेसिलस जीवाणु श्रृंखला (chain) में पाये जाते हैं, जैसे बेसिलस ट्यूबरक्यूलोसिस (Bacillus tuberculosis) ।

3. **सर्पिलाकार या कुंडलित जीवाणु** (Spiral or Helical) : शब्द Spiral का गठन ग्रीक भाषा के एक शब्द Spira से किया गया, जिसका अर्थ **कुंडलीय** (Coiled) होता है । नाम के अनुरूप इनकी आकृति सर्पिल या कुंडलित होती है, तथा इनको **स्पाइरिलम** (Spirillum) भी कहा जाता है । प्राय: ये एकल कोशीय स्वतंत्र इकाइयों के रूप में पाये जाते हैं । कुंडलित जीवाणुओं की लम्बाई 10 से 50 µm एवं चौड़ाई 0.5 से 3 µm तक हो सकती है । ये कशाभिकायुक्त (Flagellated) होते हैं । उदाहरण : स्पइरिलम माइनस (Spirillum minus) व स्पाइरिलम वोलूटेन्स (Spirillum volutans)

4. **विब्रियो या कोमा** (Vibrio or Coma) : ये जीवाणु कोमा या छोटी घुमावदार आकृति के हैं । इनके सिरे पर फ्लेजिला पाया जाता है, इनकी लम्बाई 10 µm तक एवं चौड़ाई 1.5 होते तक हो सकती है । उदाहरण : विब्रियो कोलेराई (Vibrio cholerae) ।

5. **स्पाइरोकिटा** (Spirochaeta) : ये जीवाणु स्क्रू के समान संरचना वाले एवं कशाभिकारहित (atrichous) अशूक होते हैं । लम्बाई की तुलना में इनका व्यास कम होता है, एवं ये अधिक लचीले होते हैं ।

6. **तन्तुमय** (Filamentous) : इस प्रकार के जीवाणु मल वाहित जल एवं शर्करा उद्योग से निष्कासित जल में पाये जाते हैं, जैसे - स्फैरोटिलिस नेटेन्स (Sphaerotilus natans) मूलत : यह एक बेसिलस जीवाणु है जो लम्बी श्रृंखला के रूप में वृद्धि करता है एवं नलिकाकार आवरण से ढका होता है । ये जीवाणु आवरण में ही विभक्त होते हैं । तन्तुमय जीवाणु **सामान्यत :** लौहयुक्त जल में पाये जाते हैं, जैसे - लेप्टोथ्रिक्स (Leptothrix), क्लेडोथ्रिक्स (Cladothrix), नोकार्डिया (Nocardia) एवं बेगिआटोआ (Beggiatoa) इत्यादि ।

7. **सवृन्त** (Stalked) : इन जीवाणुओं में बाह्य कोशिकीय संरचना होती है, जो सम्पूर्ण कोशिका को घेरे हुए रहती है, इस संरचना को वृन्त या प्रोसथीकी (prosthecae) कहते हैं । यह हल्की सी दृढ़ उपांगीय संरचना होती है । प्रोसथीकी की उपस्थिति के कारण इनको प्रोसथीकेट जीवाणु (Prosthecate Bacteria) भी कहते हैं । उदाहरण : कोलोबेक्टर (Colobacter) व हाइपोमाइक्रोबियम (Hypomicrobium)। इनका वृन्त 20 µ तक लम्बा होता है तथा यह फॉस्फेट युक्त पोषण माध्यम में बनता है । इस वृन्त का आधारीय भाग घुंडीनुमा या चिपचिपा होता है । बहुरूपी जीवाणु (Pleomorphic) : कुछ जीवाणु बदलते हुए वातावरण के अनुसार अपनी आकृति एवं परिमाप को परिवर्तित करते है, अत: इन अस्थाई परिवर्तनों के कारण ये जीवाणु एक से अधिक प्रारूपों में पाये जाते हैं । इनको बहुरूपी जीवाणु कहते हैं । उदराहरण : एसिटोबेक्टर (Acetobacter) ।

8. **मुकुलन करने वाले जीवाणु** (Budding Bacteria) : ये जीवाणु फुटबॉल जैसी आकृति के होते हैं, जिनमें एक फूला हुआ हिस्सा तथा एक पतली नलिका होती है । यही नलिका धीरे - धीरे लम्बाई में बढ़कर फूल जाती है एवं एक नयी गोलाकार कोशिका बन जाती है, अन्तत: कोशिकाओं का एक जाल सा बन जाता है । उदाहरण - रोडोमाइक्रोबियम (Rhodomicrobium)।

एल : प्रारूपी संरचनाएँ (L-forms) : सर्वप्रथम क्लिनबर्ग (Clinberg, 1954) ने स्ट्रेप्टोबेसिलस मोनीलिफोर्मिस (Streptobacillus moniliformis) नामक जीवाणु में प्रोटोप्लास्ट का अनियमित संवर्धन वियोजित किया था, जिसे L- प्रारुप का नाम दिया गया । सालमोनैला (Salmonella) एवं प्रोटियस (Poteus) जीवाणुओं को पेनिसिलिन युक्त माध्यम में संवर्धन करने पर नग्न प्रोटोप्लास्ट प्राप्त होता है । इनकी कॉलोनी माइकोप्लाज्मा के समान तले हुए अंडे जैसी होती है । इन कोशिका भित्ति विहीन जीवाणुओं को एल प्रारूपी (L-form) जीवाणु कहां जाता है । L-प्रारूप जीवाणुओं की उत्पत्ति निम्न कारणों से हो सकती है :

A. स्ट्रेप्टोबेसिलस एवं बेक्टीराइड्स प्रजातियों की कोशिकाओं को विशिष्ट ताप एवं माध्यम में रखे जाने पर ये स्वत: L-प्रारूप बना लेते हैं ।
B. पेनिसिलिन व लाइसोजाइम (Lysozyme) इत्यादि की उपस्थिति में कोशिका भित्ति नहीं बनने से ।
C. संवर्धन माध्यम में कोशिका भित्ति का संश्लेषण करने वाले पदार्थों की अनुपस्थिति के कारण ।
D. यदि कोशिका भित्ति को प्रतिरक्षियों के द्वारा नष्ट कर दिया जावे ।

2.4 जीवाणु कोशिका की संरचना (Structure of Bacterial Cell)

जीवाणु अत्यन्त सूक्ष्म जीव हैं, अत: सामान्य संयुक्त सूक्ष्मदर्शी द्वारा इनका विस्तृत अध्ययन कठिन हैं । परन्तु इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (electron microscope) तथा विभिन्न अभिरंजन तकनीकों (staining techniques) के विकास से इनकी सूक्ष्म संरचना का अध्ययन सम्भव हो सका है ।

जीवाणु कोशिका एक **प्रारूपिक प्रोकेरियोटी** (typical prokaryotic) संरचना प्रदर्शित करती है । अन्य जीवित पादप कोशिकाओं के समान ही जीवाणु कोशिका भी एक कोशिका भित्ति, प्लाज्मा झिल्ली एवं जीवद्रव्य से मिलकर निर्मित होती है । इनके अतिरिक्त कुछ और संरचनाएँ भी पाई जाती हैं, जैसे **अवपंक परत** (slime layer) या **सम्पुटिका (**capsule), **कशाभिकाएँ** (flagella), **पाइलाई** (pili) इत्यादि । में **राइबोसोम्स, केन्द्रक पदार्थ, प्लाज्यिड** (plasmid) एवं अन्य संगृहीत पदार्थ पाये जाते हैं । अवपंक परत या सम्पुटिका कोशिका भित्ति के बाहर एक अतिरिक्त आवरण के रूप में पाई जाती है । जीवाणु कोशिका की प्रमुख संरचनाओं का विवरण निम्न प्रकार से है : (चित्र 2.2)

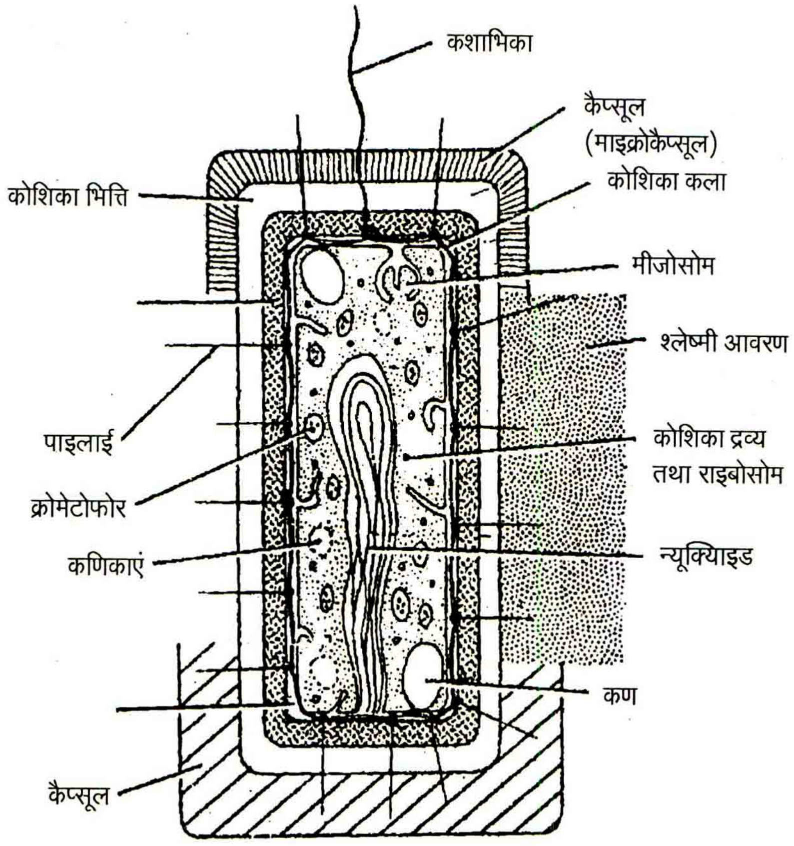

चित्र 2.2 : जीवाणु कोशिका की परासंरचना

1. सम्पुटिका या अवपंक परत या ग्लाइकोकेलिक्स (Capsule or Slime layer or Glycocalyx) : कुछ जीवाणुओं में कोशिका भित्ति के बाहर जलीय बहुल पदार्थ का एक म्यूसिलेज आवरण पाया जाता है, इसे **अवपंक परत** या **सम्पूटिका** (slime layer or capsule) कहते हैं । कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार यदि यह परत दृढ़ एवं नाइट्रोजन युक्त पदार्थों की होती है तो इसे केप्सूल कहते हैं, लेकिन यदि यह परत पतली हो तो यह **स्लाइम परत** कहलाती है । क्योंकि ये पदार्थ श्यान प्रकृति (viscous) के होते हैं, अत: इस परत को **ग्लाइकोकेलिक्स** भी कहते हैं ।

परजीवी जीवाणुओं में मुख्यतया **सम्पुटिका** (capsule) पाये जाते हैं, जो इनकी कोशिका भित्ति को **लाइसोजाइम** द्वारा पाचन से बचाते हैं । केप्सूल का रासायनिक संगठन अलग-अलग जीवाणुओं में भिन्न होता है । बहुत से जीवाणुओं में केम्सूल प्राय: पोलीसेकेराइड का बना होता है, जिसमें ग्लूकोज के अलावा अमीनोशुगर, रेहम्नोज, गेलेक्टोनिक अम्ल विभिन्न शर्कराओं के यूरेनिक अम्ल तथा पाइरुवेट एव ऐसिटेट होते हैं । बेसीलस सबटिलिस (Bacillus subtilis) में यह पॉलीपेप्टाइड मुख्यतया **पॉलीग्लूटेमिक** अम्ल द्वारा बना होता है । वह केप्सूल, जिसे साधारण सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जाना संभव हो, उसे **मेक्रोकेप्सूल** (macrocapsule) कहते हैं यह 0.2 μm या अधिक मोटा होता है । जबकि वह केप्सूल जिसकी पहचान इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के अध्ययन के द्वारा ही स्थापित होती है, उसे **माइक्रोकेप्सूल** (microcapsule) कहते हैं ।

प्राय: कोशिका के बाहर केप्सूल का निर्माण करने वाला पदार्थ **अवपंक** या **रलाइम** (slime) के रूप में स्रावित होता है g यह अवपंक पदार्थ कोशिका भित्ति से दृढ़तापूर्वक न जुड़ कर शिथिलतापूर्वक सलग्न रहता है । कभी - कभी विभिन्न जीवाणु कोशिकाओं की अवपक परतें (slime layers) यदि एक दूसरे के सम्पर्क में हों तो जुड़ जाती हैं या चिपक जाती हैं और एक विशिष्ट अवस्था के रूप में परिलक्षित होती हैं । इसे **जूग्लिया** (Zooglea) अवस्था कहते हैं ।

सम्पूटिका के अन्य लक्षण

- कुछ जीवाणुओं में केप्सूल पाया जाता है व कुछ में नहीं ।
- जीवाणु में इसका निर्माण अनुवांशिक आधार पर होता है । उदाहरण स्ट्रेप्टोकोकस न्युमोनाई (Streptococcus pneumoni) के प्रभेद (strain) S 111 में सम्पुटिका बनती है व R 11 में नहीं बनती ।
- यदि किसी सम्पुटिका युक्त जीवाणु की सम्पुटिका को प्रयोगशाला में हटा दिया जाय तो भी वह जीवाणु जीवित रहता है व उसकी मृत्यु नहीं होती ।

सम्पुटिका एवं स्लाइम परत के कार्य (Functions of Capsule and Slime Layer)

(a) इसकी सहायता से जीवाणु विभिन्न आधारस्तरों (substrata), जैसे : चट्टानों, पौधों की जड़ो व कोशिका की सतह इत्यादि पर चिपक सकते हैं ।

(b) प्रतिकूल परिस्थितियों में अवपंक परत द्वारा पोषण प्राप्त होता है ।

(c) स्लाइम परत या केप्सूल में उपस्थित जल, जीवाणु कोशिका को अस्थाई शुष्कता से बचाता है।

(d) रोगकारी (pathogenic) जीवाणुओं की उग्रता केप्सूल की उपस्थिति के कारण संभव होती है।

सतही उपांग (Surface Appendages)

(A) **कशाभिकायें** (Flagella) : जीवाणुओं में चलन **सूक्ष्म रोम सदृश्य उपांगों** (hair-like appendages) द्वारा होता है जिसे **कशाभ** (Flagellum) कहते हैं । प्रत्येक कशाभ एक समान मोटाई की प्रोटोप्लाज्मीय संरचना है । कशाभिकायें जीवद्रव्यकला से उत्पन्न होकर कोशिका भित्ति से बाहर निकलती है । ये आधार पर ब्लेफैरोप्लास्ट (blepharoplast) नामक **कणिका** (granule) से जुड़ी रहती हैं ।

गतिशीलता सर्पिल जीवाणुओं का सार्विक लक्षण है । बेसिलस जीवाणुओं में कशाभिकायें सामान्य रूप से पायी जाती है जबकि कोकस जीवाणु अचल (non-motile) होते हैं तथा उनमें कशाभिकाओं का अभाव होता है ।

कशाभिकाओं का विन्यास (Arrangement of flagella) कशाभिका की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर जीवाणुओं को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है

1. **अशूक** (Atrichous) : ऐसे जीवाणुओं में कशाभिका का अभाव होता है, अत: ये **अचल** (non-motile) होते हैं । उदाहरण: **लैक्टोबैसिलस** (Lactobacillus), **पास्चुरैला** (Pasteurella) । (चित्र 2.3)

2. **कशाभिक अथवा कशाभिका युक्त** (Trichous) : इन जीवाणुओं में कशाभिकायें पाई जाती हैं, अत: ये **गतिशील** अथवा **चल** (motile) होते हैं । जीवाणु कोशिका की सतह पर

कशाभिकाओं का वितरण जीवाणुओं का लाक्षणिक गुण है । विभिन्न जातियों में इनकी **संख्या** (number), **स्थिति** (position) तथा **व्यवस्था** (arrangement) में भिन्नता होती है । यदि कशाभिकायेँ जीवाण्विक कोशिका के एक अथवा दोनों **सिरों** (ends or poles) पर स्थित हों, तो यह **ध्रुविय कशाभिका विन्यास (polar flagellation)** कहलाता है । इसके विपरीत यदि कशाभिकायें जीवाणु की सम्पूर्ण सतह पर वितरित हों, तो इसे **अध्रुवीय कशाभिका विन्यास** (non-polar flagellation) कहते है (चित्र 2.3)

(a) **एककशाभिकी** (Monotrichous) : यदि जीवाण्विक कोशिका एक के केवल एक सिरे पर कशाभिका उपस्थित हो, उदाहरण - विब्रियो कोलेरी (vibrio cholerae) ।

(b) **उभयकशाभिकी** (Amphitrichous) : जब जीवाण्विक कोशिका के दोनों सिरों पर एक-एक कशाभिका हों, उदाहरण- **नाइट्रोसोमोनास** (Nitrosomonas) ।

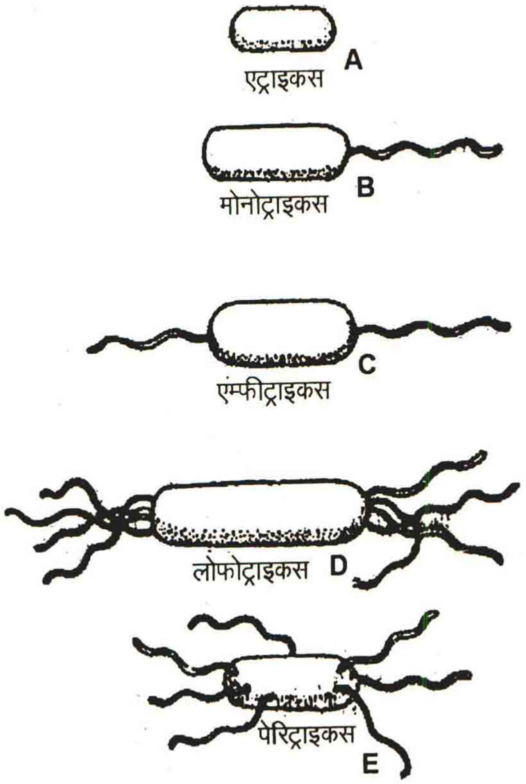

चित्र 2.3 : जीवाणु कोशिकाओं पर कशाभिकाओं की स्थित

(c) **सिफेलोट्राइकस** (Cephalo) : इस प्रकार के जीवाणओं को **शिरोपुच्छकशाभिक** भी कहते हैं । इनमें जीवाणु कोशिका के किसी एक सिरे पर दो या दो से अधिक कशाभिकाओं का एक गुच्छा पाया जाता है । जैसे : स्यूडोमोनास फ्लोरीसेंस (Pseudomonas flourescens) ।

(d) **गुच्छकशाभिकी** (Lophotrichous) : ऐसी जीवाणु कोशिकाओं में दोनों सिरों पर कशाभिकाओं के गुच्छे पाये जाते हैं, उदाहरण : स्पाइरिलम वाल्यूटेन्स (Spirillum volutans) ।

(e) अध्रुवीय या पीरकशाभिक (Nonpolar or peritrichous) : इस प्रकार की संरचना में जीवाणु कोशिका की सम्पूर्ण सतह पर कशाभिकाएँ समान दूरी पर व्यवस्थित होती हैं, जैसे : क्लॉस्ट्रीडियम (Clostridium,) एरिविनिया (Eriwina)।

कशाभिका की परासंरचना (Ultrastructure of Flagellum) :

सामान्य कशाभिका एक प्रारूपिक जीवाणु कोशिका की तुलना में 10 गुना तक अधिक लम्बी होती है । विभिन्न जीवाणुओं में कशाभिका की लम्बाई एवं व्यास अलग-अलग होता है । प्राय: कशाभिका की लम्बाई 4 से 10 μm एवं व्यास 120 A° से 180 A° होता है ।

जीवाणु कशाभिका **किरेटिन** या मायोसिन जैसे ही एक अन्य प्रोटीन **फ्लेजिलिन** द्वारा बनी होती है । प्रत्येक जीवाणु कशाभिका में केवल एक पतला तन्तुक (fibril) पाया जाता है, जबकि यूकेरियोटिक चल कोशिकाओं में 11 तन्तुक (fibrills) 9 + 2 के क्रम में व्यवस्थित होते हैं । इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि जीवाणु कशाभिका कुंडलित (helical) एवं रस्सी के समान गुंथी हुई संरचना होती है । जीवाणु कशाभिका **फ्लैजिलिन** (flagellin) नामक प्रोटीन की उपइकाइयों द्वारा बनी होती है । इन प्रोटीन उपइकाइयों का अणुभार 40,000 डाल्टन तथा व्यास 40 A होता है । ये प्रोटीन अणु बेलनाकार अक्ष के चारों ओर कुंडलित (helical) क्रम में व्यवस्थित होते हैं । एक कुंडलिका मे 8-10 फ्लैजिलिन अणु होते हैं । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि फ्लैजैला की संरचना प्रोटीन उपइकाइयों की प्रकृति पर निर्भर करती है । प्रोटीन फ्लैजिलिन का निर्माण कोशिकाद्रव्य में होता है तथा यह कशाभिका के खोखले भाग में से होकर कशाभिका के दूरस्थ सिरे पर एकत्र हो जाती है । अत: कशाभिका की वृद्धि आधारीय भाग के बजाय शीर्षस्थ सिरे पर होती है । कशाभिका के विभिन्न घटकों के निर्माण के लिए 12 जीन उत्तरदायी होते हैं (चित्र 2.4) ।

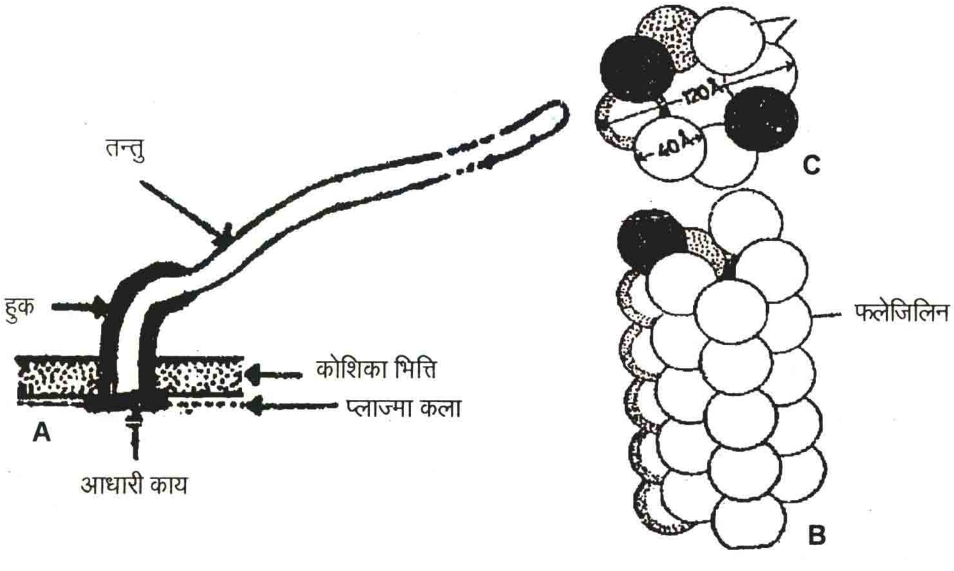

चित्र 2.4 : A- कशाभिक की बाह्य संरचना, B-C कशाभिक की परासंरचना

कशाभिका की संरचना को तीन भागों में विभेदित किया जा सकता है । ये हैं : 1. आधारीय कणिका (Basal granule), 2. हुक (Hook), एवं 3. तन्तु (Filament or Shaft) ।

कशाभिका के कार्य (Function of Flagella) इनका प्रमुख कार्य जीवाणु कोशिका को गतिशील बनाकर इनके स्थान परिवर्तन का होता है । इससे पोषण पदार्थों को अधिक मात्रा में ग्रहण किया जा सकता है ।

बोध प्रश्न -1

(a) जीवाणुओं का सर्वप्रथम नाम क्या था ?

....

(b) जीवाणु (Bacteria) शब्द सर्वप्रथम किसने प्रयोग किया ?

....

(c) मानव आंत में पाये जाने वाले जीवाणु का क्या नाम है ?

....

(d) सबसे बड़े जीवाणु का नाम है ?

....

(e) जीवाणुओं के तीन प्रमुख आकार क्या-क्या है ?

....

(f) जीवाणु कशाभिका किस यौगिक की बनी होती है ?

....

(B) रोम या पाइलाई या झालर (Pili or Fimbrae) अनेक ग्राम-नेगेटिव जीवाणुओं एवं आंत्र में पाये जाने वाले जीवाणुओं (Enteric bacteria) में कुछ सूक्ष्म उपांग पाये जाते हैं जो कशाभिकाओं की तुलना में छोटे होते हैं एवं इनका गतिशीलता से कोई सम्बन्ध नहीं होता । इनको **रोम** या **पाइलाई** (Pili) कहते हैं (चित्र 2.5)। ये कशाभिका की भाँति खोखले होते हैं, परन्तु कुंडलित या सर्पिल नहीं होते । इनकी लम्बाई 0.2 से 2 रूम एवं व्यास 30 - 150 A होता है । एक जीवाणु कोशिका सामान्यत: 100 - 150 रोम पाये जाते हैं । ये पेरीट्राइकस रूप से उत्पन्न होते हैं । रोम की संरचना अपेक्षाकृत सरल होती है, ये कोशिका भित्ति को भेद कर बाहर आ जाते हैं । रोम का निर्माण पाइलिन (Pilin) नामक प्रोटीन के अणुओं से होता है । जीवाणुओं में कई प्रकार के रोम पाये जाते हैं, जिनमें से दो प्रमुख हैं:

1. कायिक रोम (Somatic Pili) प्रत्येक जीवाणु कोशिका में इनकी संख्या लगभग 100 होती है । इनका प्रमुख कार्य जीवाणु कोशिका को, आधारीय सतह (Substratum) से चिपकने में सहायता देना है ।

2. लैंगिक रोम या संयुग्मनी रोम (Sex pili or Conjugate pili) : इनको I पाइलाई भी कहा जाता है, जो लैंगिक कारकों द्‌वारा निर्धारित होती हैं, ये अपेक्षाकृत लम्बी एवं अधिक व्यास की होती हैं । संयुग्मन के समय नर या दाता (donar) जीवाणु का रोम, मादा या ग्राही (recipient) को पहचान कर उसकी सतह पर उपस्थित ग्राही प्रोटीन (receptor protein) से चिपक कर एक संयुग्मन नाल (conjugation tube) बनाता है । इस संयुग्मन नाल के द्‌वारा दाता जीवाणु का DNA ग्राही जीवाणु में जाता है ।

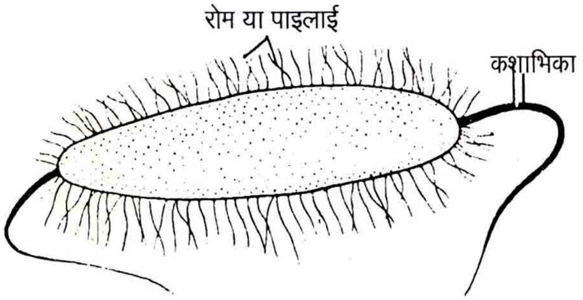

चित्र 2.5 : ध्रुवीय कशाभिका एवं रोम

रोम के कार्य (Functions of pili) :

1. रोम, रोगकारी जीवाणुओं को परपोषी सतह पर चिपकाने में सहायक होते हैं ।
2. इनमें प्रतिजन (antigenic) विशिष्टता पाई जाती है ।
3. संयुग्मन नाल के निर्माण द्वारा गुणसूत्र स्थानान्तरण में सहायक होते हैं ।
4. **कोशिकाभित्ति** (Cell wall) जीवाणु की कोशिकाभित्ति पतली (50 A से 100 तक मोटी) किन्तु दृढ़ (rigid) संरचना होती है एवं यह कोशिका को एक निश्चित आकृति (Shape) प्रदान करती है । इसमें अत्यधिक दबाव को भी सहन करने की क्षमता होती है । कोशिकाभित्ति जीवाणुओं में कोशिका विभाजन (cell division) तथा वृद्धि के लिए जरूरी होती है। विभिन्न जीवाणु प्रजातियों में कोशिका के शुष्क भार (dry weight) का 10 से 40 प्रतिशत भाग कोशिका भित्ति का होता है ।

कोशिका भित्ति का निर्माण अनेक परतों से मिलकर होता है । इन परतों की मोटाई अलग - अलग होती है । प्राय : ग्राम पॉजिटिव जीवाणु कोशिका भित्ति की मोटाई (25 - 30 nm), ग्राम नेगेटिव जीवाणु भित्ति की (मोटाई 10 से 15 nm) तुलना में अधिक होती है । इस कोशिकाभित्ति की मुख्य संरचना **पेप्टीइडोग्लाइकॉन** (peptidoglycan) द्वारा बनी होती है । ये पदार्थ अत्यधिक दृढ़, छिद्रिल एवं अघुलनशील बहुलक (polymer) होते हैं, तथा केवल प्रोकेरियोटी कोशिकाओं में ही पाये जाते हैं । जीवाणुओं की विभिन्न जातियों में कोशिका भित्ति का **रासायनिक संगठन** (chemical) एक समान नहीं होता है, तथापि एन - एसिटइल ग्लूकोसेमिन (N-Acetylglucosamine, NAG); तथा एन - एसिटाइल म्यूरेमिक अम्ल (N-Acetyl Muramic acid NAM); कोशिका भित्ति के धारभूत घटक हैं । ये दोनों पदार्थ लगभग बराबर मात्रा में पाये जाते हैं । इनके अतिरिक्त पॉलिसैकेराइड तथा ऐमिनो अम्ल भी मुख्य घटक के रूप में उपस्थित होते हैं । कुछ प्रकार के जीवाणुओं में **लिपिड** (lipids) भी कोशिका भित्ति का अभिन्न घटक अंग होते हैं । उपरोक्त सभी घटक (NAG,NAM, पॉलिसैकेराइड्स ऐमीनो अम्ल तथा लिपिड) मिलकर **पेप्टाइडोग्लाइकॉन** (peptidoglycan) अथवा म्यूकोपेप्टाइड (mucopeptide) नामक **बहुलक** (polymer) बनाते हैं ।

ग्राम पॉजीटिव (Gram positive) जीवाणुओं की कोशिका भित्ति में म्यूकोपेप्टाइड की मात्रा 80% तक होती है, जबकि **ग्राम - निगेटिव** (Gram negative) जीवाणुओं में वह केवल 3 से 12% तक होता है ।

ग्राम पोजिटिव एवं ग्राम नेगेटिव जीवाणु (Gram positive and Gram negative Bacteria) डेन्मार्क के प्रसिद्ध चिकित्सक **हंस क्रिश्चियन ग्राम** (Hans Christian Gram, 1884) ने अपनी प्रसिद्ध एव सर्वग्राह्य अभिरंजन विधि (staining method) द्वारा जीवाणुओं को दो समूहों में विभेदित किया -

1. वे जीवाणु जो ग्राम के अभिरंजन से अभिरंजित कर देने व इसके बाद ऐल्कोहॉल से धोने पर भी अभिरंजित बने रहते हैं, इनको **ग्राम धनात्मक** या **ग्राम ग्राही** (Gram positive) कहते हैं ।
2. वे जीवाणु जो ऐलकोहॉल से धोने पर विरंजित (destain) हो जाते हैं, उनको **ग्राम ऋणात्मक** या **ग्राम अग्राही** (Gram negative) कहा जाता है । ग्राम पॉजिटिव एव ग्राम निगेटिव जीवाणुओं की कोशिका भित्ति में अलग प्रकार की निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं. (चित्र 2.6)

A. ग्राम पोजिटिव जीवाणुओं की कोशिकाभित्ति (Cell wall of Gram positive Bacteria) इनमें कोशिकाभित्ति एक स्तरीय, सघन, समरूप एवं 20-30 nm मोटाई वाली होती है । कोशिकाभित्ति का हिस्सा कोशिका के कुल शुष्क भार का 20 से 40 प्रतिशत होता है । इसमें पेप्टाइडोग्लाइकेन की मात्रा बहुत अधिक अर्थात् कोशिकाभित्ति के शुष्कभार का 50 प्रतिशत या इससे भी अधिक होती है कुछ मात्रा में प्रोटीन एवं पॉलीसेकेराइड शर्कराएँ भी पाई जाती हैं । कुछ ग्राम पॉजिटिव जीवाणुओं की कोशिका भित्ति में एक ऋणात्मक आवेशयुक्त (negatively charged) बहुलक (polymer) भी पाया जाता है । इसे **टिकोइक अम्ल** (teichoic aicd) कहते हैं । टिकोइक अस्त की खोज बाडिली (Baddiley 1933) द्वारा की गई थी ।

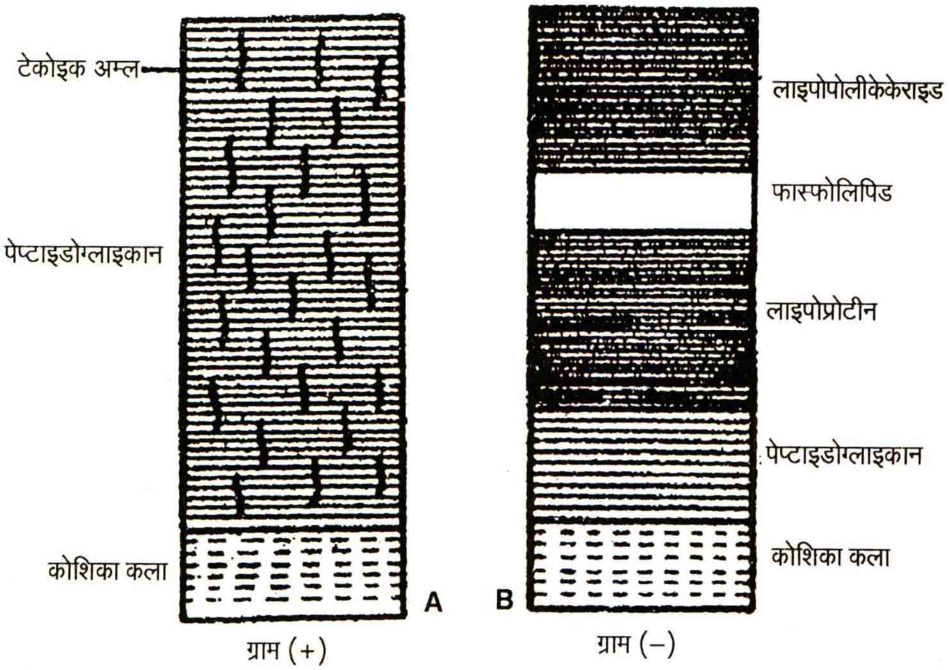

चित्र 2.6. ग्राम (+) तथा ग्राम (-) जीवाणुओं की कोशिका भित्ति

B. ग्राम नेगेटिव जीवाणुओं की कोशिका भित्ति (Cell wall of Gram negative Bacteria) इन जीवाणुओं में कोशिका भित्ति की मोटाई कम पर संरचना अपेक्षाकृत जटिल होती है । इसमें पेप्टाइडोग्लाइकोन की मात्रा बहुत कम (5-10 प्रतिशत) होती है, तथा इसकी पतली परत के बाहर एक बाह्य झिल्ली (outer membrane) पाई जाती है ।

सारिणी

ग्राम पॉजिटिव (Gram + ve) तथा ग्राम निगेटिव (Gram-ve) जीवाणुओं में मुख्य अन्तर

क्रम संख्या	ग्राम + ve जीवाणु (Gram + ve Bacteria)	ग्राम + ve जीवाणु (Gram+ ve Bacteria)
1.	कोशिक भित्ति (cell wall) 25-30nm मोती, शुष्क भर का 20-40% अपेक्षाकृत सरल संरचना, आकारहीन (amorphous), एकस्तरीय, अधिक समांग (homogeneous) तथा दृढ़ होती है।	कोशिका भित्ति 10-15 nm मोटी शुष्क भार का 10-20% अपेक्षाकृत जटिल सरंचनायुक्त कम दृढ़ होती है।
2.	टीकोइक अमल (teichoic acid) प्रायः उपस्थित।	टीकोइक अमल नही पाया जाता है।
3.	मध्यकाय (Mesosome) उपस्थित होता है।	मध्यकाय बहुधा अनुपस्थित।
4.	कोशिका तिथि (Cell wall) में मुख्य पेप्टीडोग्लाइकन (Peptidoglycans) 80% तक तथा शेष प्रोटीन एवं बहुशर्करा होते है।	कोशिका भित्ति में पेप्टीडोग्लाइकन -5-15%, फोस्फोलिपिड 35%, प्रोटीन 15% तथा लाइपोपोलिसेकेराइड 50% तक होते है।
5.	पेनिसिलिन (Penicillin) के प्रति संवेदनशील (Sensitive) होते है।	पेनिसिलिन के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते है।
6.	कोशिका भित्ति में सल्फर युक्त अमीनो अम्ल अम्ल नहीं होते है।	कोशिक भित्ति में सल्फर युक्त अमीनो अम्ल होते है।
7.	जीवाणु 1% KOH घोल में अघुलनशील होते है।	जीवाणु 1% KOH घोल में घुलनशील होते है।
8.	लाइसोजाइम (Lysozyme) कोशिका भित्ति को आसानी से स्पष्ट कर सकते है।	कोशिका भित्ति को नष्ट करने के लाइसोजाइम से पहले क्षार के द्वारा अभिक्रिया करवानी पड़ती है।
9.	स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin) अपेक्षाकृत कम प्रभावी होती है।	स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin) का निरोधी (Inhibitory) प्रभाव होता है।
10.	ट्राइफ़ीनाइल मीथेन (triphenyl methane) रंजक (dyes) जैसे क्रिस्टल वॉयलेट का जीवाणु	जीवाणु पर इन रंजकों का कुछ विशेष प्रभाव बहिन होता है।

	पर निरोधक प्रभाव होता है।	
11.	RNA तथा DNA का अनुपात 8 : 1 होता है।	RNA तथा DNA का अनुपात लगभग 1 : 1 होता है।
12.	सल्फोनिललैमाइड (Sulphonilamide drugs), ऋणायन अपमार्जक से अधिक प्रभावित होते है।	अपेक्षाकृत कम प्रभावित होते है।
13.	इनमें बही: आविष (Exotoxin) बनते हैं।	इनमें अन्तःविश (endotoxin) बनते हैं।

इसमें **फॉस्फोलिपिडस** (Phospholipids) की दो परतें हैं, जिनके बाहरी सिरे **जलरागी** (hydrophilic), एव बीच का भाग **जलविरागी** (hydrophobic) होता है । ये **लाइपोप्रोटीन** अणुओं के द्वारा पेप्टाइडोग्लाइकॉन में स्थिर (anchored) होता है । फॉस्फोलिपिड के अतिरिक्त बाहरी झिल्ली में **प्रोटीन** एवं **लाइपोपॉलीसेकेराइड** (LPS) शर्करा भी उपस्थित होते हैं।

ग्राम अभिरंजन विधि (Gram Staining Method) यह अभिरंजन प्रक्रिया **क्रिस्टल वॉयलेट रंग** (Crystal violet dye) के विलयन तथा आयोडीन विलयन (iodine solution) की सहायता से की जाती है । इस विधि की प्रमुख प्रक्रिया निम्न प्रकार से है ।

1. जीवाणुयुक्त पदार्थ का आलेप (smear), या निलम्बन (suspension) स्वच्छ स्लाइड पर तैयार कर, स्लाइड को हल्का सा गर्म किया जाता है ।
2. जीवाणु आलेप युक्त स्लाइड को क्रिस्टल वॉयलेट में 30 सेकण्ड तक रखकर, इसके बाद पानी में अच्छी तरह प्रक्षालित करते हैं ।
3. अब स्लाइड को 30 सेकण्ड तक आयोडीन घोल में रखते हैं, इसके बाद पानी में प्रक्षालित (धुलाई) कर लेते हैं ।
4. आलेप युक्त स्लाइड को 90 प्रतिशत इथाइल ऐल्कोहॉल से प्रक्षालित किया जाता है, व इसे सुखाया जाता है । इस प्रकार तैयार जीवाणु आलेप की स्लाइड को सूक्ष्मदर्शी से देखने पर यदि जीवाणु बैंगनी रग के दिखाई देते हैं तो इनको ग्राम पॉजिटिव कहा जाता है और यदि रंगहीन हैं तो इनको ग्राम निगेटिव की श्रेणी में रखते हैं ।
5. ग्राम निगेटिव जीवाणु आलेप स्लाइड को 1 प्रतिशत सेफ्रेनिन रजक के घोल में 30 सेकण्ड तक रखा जाता है, फिर पानी से इसकी धुलाई करते हैं । स्लाइड को सुखा कर माइक्रोस्कोप में देखने पर ग्राम निगेटिव जीवाणु गुलाबी रंग के दिखाई देते हैं ।

I. ग्राम-पॉजीटिव जीवाणुओं के प्रमुख उदाहरण :

माइक्रोकोकस (Micrococcus), स्ट्रेप्टोकोकस (Streptococcus), लेक्टोबेसीलस (Lactobacillus), क्लाॅस्ट्रीडियम (Clostridium) व कोरीनेबेक्टरियम (Corynebacterium)

II. ग्राम निगेटिव जीवाणुओं के प्रमुख उदाहरण :

राइजोबियम (Rhizobium), सूडोमोनास (Pseudomonas), साल्मोनैला (Salmonella), जेन्थोमोनास (Xanthomonas), विब्रियो (Vibrio), एग्रोबेक्टिरियम (Agrobacterium) ।

ग्राम अभिरंजन की प्रकिया, जीवाणुओं की जैविक क्रियाओं से जुड़ी है, जैसे ग्राम पॉजिटिव जीवाणु अस्त, पेनिसिलिन, लाइसोजाइम व डिटरजेन्ट्स आदि के लिए ग्राम निगेटिव जीवाणुओं की तुलना में अधिक संवेदन शील होते हैं । लेकिन क्षारों, एजाइड एवं प्रोटियोलिटिक एन्जाइम्स के प्रति संवेदनशील नहीं होते ।

कुछ जीवाणु, जैसे : **हीमोफिलस वेजीनेलिस** (Haemophilus vaginalis) एवं **माइक्रोकोकस रेडियोडेयूरेन्स** (Micrococcus radiodurans) न तो ग्राम पॉजीटिव होते हैं और न ही ग्राम नेगेटिव, अत : इनको **अविभेदित ग्राम जीवाणु** (unidifferentiated gram Bacteria) कहा जाता है ।

कोशिका झिल्ली या जीवद्रव्य कला (Cell membrane or Plasma membrane) : कोशिका झिल्ली, जीवाणु कोशिका भित्ति के ठीक नीचे पाई जाती है एवं जीवाणु कोशिका को बाहरी पर्यावरण से पृथक करती है । इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखने पर अन्य द्विस्तरीय झिल्ली (bilayered membrane) की भाँति ही इसकी संरचना प्रदर्शित होती है, जिसमें दो सघन परतों के बीच एक पतली परत दिखाई पड़ती है । यह अत्यन्त पतली, कोमल एवं लगभग 5-7nm मोटाई वाली होती है । इसके घटकों में मुख्य रूप से **फॉस्फोलिपिड्स** (20 से 30 प्रतिशत) तथा प्रोटीन (60 से 70 प्रतिशत) होते हैं । प्लाजमा झिल्ली में स्टीरोल्स (sterols) जैसे कोलेस्टारॉल इत्यादि नहीं पाये जाते । यह झिल्ली अर्धपारगम्य (semi-permeable) होती है अत: यह जीवाण्विक कोशिका के **परासरणी लक्षणों** (osmotic characters) को निर्धारित करती है । इसके अतिरिक्त इस कला के **अंतर्वलित** (infolded) क्षेत्रों पर **मीजोसोम** (mesosome) स्थित होते हैं, जिनमें अनेक **श्वसन एन्जाइम** (respiratory enzymes) होते हैं । कोशिका भित्ति तथा जीवद्रव्य कला के बीच एक रिक्त स्थान होता है जिसे **परिद्रव्यी अवकाश** (periplasmic space) कहते हैं ।

5. कोशिका द्रव्य एवं कोशिका उपांग (Cytoplasm and Cell Organelles) :

I. कोशिका द्रव्य : कोशिका झिल्ली, कोशकीय क्षेत्र को घेरे हुए होती है, इस क्षेत्र में कोशिका द्रव्य उपस्थित होता है । कोशिका द्रव्य का लगभग 80 प्रतिशत भाग जल के रूप में होता है, इसके अतिरिक्त इसमें न्यूक्लिक अम्ल, प्रोटीन, लिपिडस, कार्बोहाइड्रेट्स, अकार्बनिक आयन एवं अनेक कम अणुभार वाले पदार्थ पाये जाते हैं । इस तरल कोशिका द्रव्य में अनेक रासायनिक क्रियाएँ होती हैं । यूकेरियोटी कोशिकाओं के विपरीत जीवाणुओं में **कोशिका द्रव्यिक प्रवाह** (cytoplasmic streaming) नहीं होता एव कोशिकीय पंजर (cytoskeleton) भी नहीं पाया जाता है ।

II. मध्यकाय अथवा मीज़ोसोमा (Mesosomes) : जीवाणुओं में अन्य प्रोकेरियोटिक कोशिकाओ के समान हरित लवक (chloroplast) एवं माइटोकॉण्ड्रिया (Mitochondria) जैसी कलाबद्ध संरचनाएँ नहीं पाई जाती, परन्तु इसके स्थान पर अनेक ग्राम पॉजिटिव जीवाणुओं में कोशिका झिल्ली के द्वारा कोशिका के भीतर अनेक अन्तर्वलन (infolding) उत्पन्न होते हैं । इनको **मध्यकाय** या (mesosomes) कहते हैं । इनका नामकरण फिटज़ जेम्स (Fliz

James,1939) द्वारा किया गया था । मीजोसोम्स यदि कोशिका झिल्ली के पास उपस्थित हों तो इनको **परिधीय मध्यकाय** (peripheral mesosomes) कहते हैं और यदि कोशिका में गहरे समाये हुए हों तो इनको **केन्द्रीय मध्यकाय** (central Mesosomes) कहते हैं । केन्द्रीय मीजोसोम्स प्राय: केन्द्रकाय (nucleoid) के साथ संलग्न पाया जाता है तथा डी.एन.ए. प्रतिकृतिकरण एवं कोशिका विभाजन में सहायक होता है । प्राय: ये दण्डाणुओं (बेसीलस जीवाणु) में पाये जाते हैं ।

परिधीय मीजोसोम्स को कुछ विशेष एन्जाइमों के स्राव हेतु उत्तरदायी माना जाता है, जैसे पेनिसिलिन को नष्ट करने के लिए पेनिसिलेज का स्राव । इसके अतिरिक्त सभी मीजोसोम्नन संवहन तंत्र के लिए सतही क्षेत्र बढ़ाते हैं एवं पटनिर्माण के द्वारा साइटोकाइनेसिस के लिए उत्तरदायी होते हैं (चित्र 27) ।

III. **राइबोसोम** (Ribosomes) अनेक राइबोसोम्स कोशिकाद्रव्य में बिखरे हुए पाये जाते हैं व इनका प्रमुख कार्य प्रोटीन संश्लेषण का होता है जीवास्थों के राइबोसोम्स (ribosomes) दो उपइकाइयों से मिलकर बनते हैं । जिनका परिमाप एवं आकृति अलग-अलग होती है, बड़ी उपइकाई (subunit) को 50S उपइकाई एवं छोटी 30S उपइकाई होती है, ये दोनों मिलकर एक 70S राइबोसोम का गठन करती हैं । राइबोसोम का व्यास 180 A होता है व अणुभार 3 मिलियन तक होता है । जीवाणु कोशिका में लगभग 15,000 से 20,000 तक राइबोसोम्स होते हैं जो कि कोशिका के कुल भार का 30 प्रतिशत भाग होते हैं । ये अंत: कोशिका कण हैं जो RNA एवं प्रोटीन के द्वारा निर्मित संरचनाएँ होती हैं । जीवाणु कोशिका में लगभग 10 से 20 प्रतिशत राइबोसोस्वर. स्वतन्त्र तथा 80 प्रतिशत पोलीसोम्स के रूप में कोशिका द्रव्य में पाये जाते हैं । m-RAN रज्जुक (m-RNA strand) द्वारा राइबोसोम समूह मे एकत्रित हो पॉलिराइबोसोम या पोलीसोम्स बनाते हैं । इनका दो तिहाई भाग RNA व एक -तिहाई (1/3) भाग प्रोटीन्स का बना होता है । अनेक प्रतिजैविक (antibiotic) जैसे - स्ट्रे प्टोमाइसिन (atreptomycin) एवं टेट्रासाइक्लिन (tetracycline) इत्यादि जो कि जीवाणु कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण को अवराद्ध करते हैं । उनका लक्ष्य जीवाणु राइबोसोम्स ही होते हैं ।

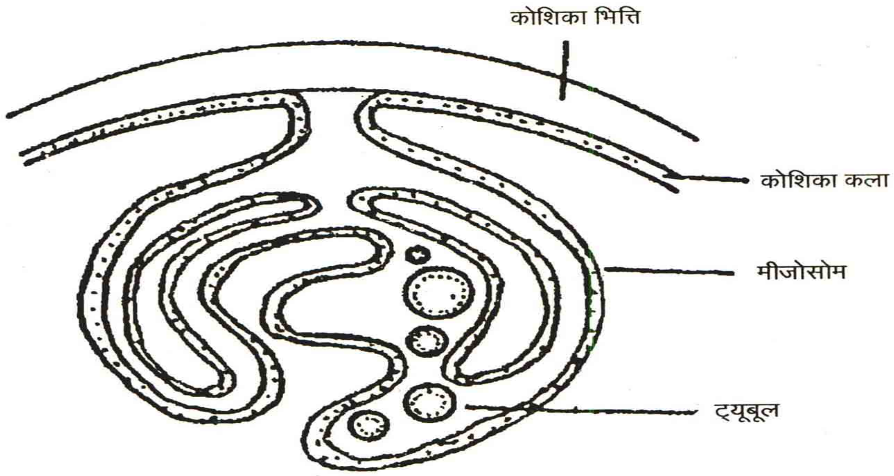

चित्र 2.7 : जीवाणु : मीजोसोम की संरचना

IV. **पटलिकाएँ या वर्णकी लवक** (Lamellae or Chromatophore) : प्रकाश संश्लेषी जीवाणुओं (photosynthetic) में **पटलिकाएँ** (lamellae thylakoids) या पुटिकाएँ (vesicles) पायी जाती हैं, इनको वर्णकी लवक (chromatophores) भी कहते हैं । स्वपोषी जीवाणुओं में हरित लवक नहीं पाया जाता । पटलिका का निर्माण दो समानांतर इकाई झिल्लियों (unit membranes) के द्वारा होता है । वर्णकी लवक या पुटिकायें खोखली गोलाकार एवं 300 A व्यास की संरचनाएँ होती हैं । इनमें प्रकाश संश्लेषी वर्णक, एन्जाइम आदि पाये जाते हैं ।

V. **केन्द्रकाभ या न्यूक्लिओटाइड या क्रोमेटिन पिंड** (Nucleoid or Chromatin material) : जीवाणुओं में भी अन्य प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं की भाँति सत्य केन्द्रक का अभाव होता है, अत : यहाँ क्रोमेटिन पदार्थ, झिल्ली द्वारा घिरा हुआ नहीं होता । यह **केन्द्रीय या क्रोमेटिन पदार्थ (nuclear or chromatin material)**, जीवाणु कोशिका के बीच में उपस्थित होता है तथा भी - कभी मीजोसोम्स से संलग्न पाया जाता है । इस क्रोमेटिन पदार्थ को केन्द्रकाभ (nucleoid) कहते हैं । यह भाग अन्य जीवों के केन्द्रक के समतुल्य है । **इसमें केन्द्रक कला (nuclear membrance)** तथा **केन्द्रिक (nucleolus)** का अभाव होता है ।

यह वलयाकार (circular), द्वरज्जुकी (double stranded)DNA का बना होता है एवं एक **गुणसूत्र** (chromosome) को निरूपित करता है । इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से देखने पर यह तन्तुवत एवं हल्के रंग के क्षेत्र के रूप में दिखाई देता है ।DNA की लम्बाई लगभग 1000 µm व मोटाई 3nm होती है ।

इनका अणुभार 20 खरब होता है । केन्द्रकाभ में लगभग 4000 जीनोम होते हैं तथा द्विगुणन या प्रतिकृतिकरण (replication) अर्धसंरक्षी (semicoonservative) विधि द्वारा होता है । वैसे तो एक जीवाणु कोशिका में सामान्यतया एक ही केन्द्रकाभ पाया जाता है, किन्तु सक्रिय रूप से वृद्धि करने वाली जीवाणु कोशिकाओं मे 1 से 4 तक केन्द्रकाभ पाये जाते हैं (चित्र 2.8)।

VI. **प्लाज्मिड एवं अधिकाय** (Plasmids and Episome) : कुछ जीवाणु कोशिकाओं में गुणसूत्र के अतिरिक्त भी एक और DNA खण्ड पाया जाता है, जो छोटे वलय (ring) की आकृति में होता है । इसे **प्लाजिम्ड** (Plasmid) कहते हैं । इनका **प्रतिकृतिकरण** (replication) स्वतन्त्र रूप से होता है । ये अतिरिक्त गुणसूत्री खण्ड (extrachromosomal DNA fragments) हैं, जिनकी सर्वप्रथम खोज **लेडरबर्ग** (Laderberg 1952) के द्वारा की गई थी । जीवाणुओं में कुछ ऐसे प्लाज्मिड भी पाये जाते हैं, जो मुख्य गुणसूत्र के साथ जुड़ सकते हैं, इनको **एपीसोम या अधिकाय (Episomes)** कहते हैं ।

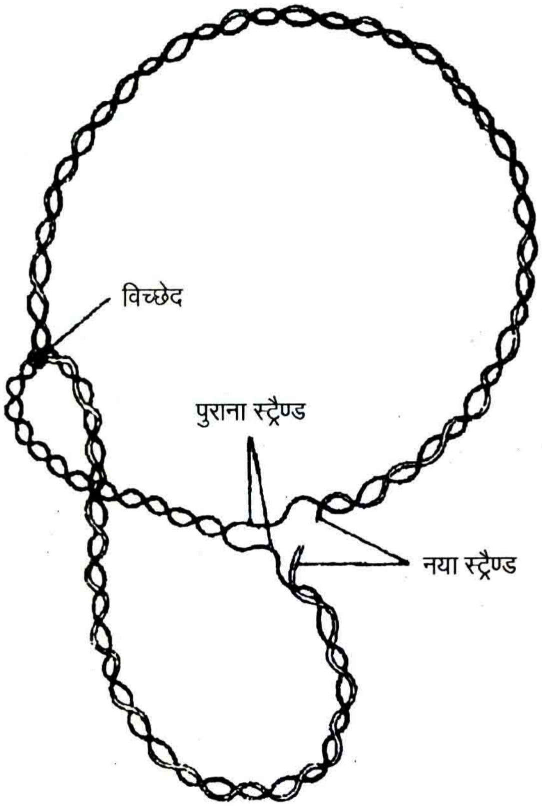

चित्र 2.8 : जीवाणु गुणसूत्र का प्रतिलिपिकरण (केन्द्रकाभ)

प्लाज्मिड के द्विरज्जुकी DNA (Double Strandard DNA) की प्रकृति न्यूक्लिओइड DNA से अलग होती है । इसमें उपस्थित जीन, जीवाणु की वंशागति के लिए आवश्यक नहीं होते । कुछ जीवाणुओं में अधिकाय (Episome) मुख्य गुणसूत्र से जुड़कर **उर्वरता कारक (fertility factor)** के रूप में भी कार्य करते हैं । इसके अतिरिक्त इनमें **प्रतिजैविक** (antibiotic) के प्रतिकार के लिए कुछ जीन होते हैं ।

VII. **संचित पदार्थ** (Reserve materials) : जीवाणु कोशिका में विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थ अनुकूल परिस्थितियों में एकत्र होकर एक प्रकार का **अविलेय निक्षेप** (insoluble deposits) बनाते हैं, इनको **कोशिकीय समविष्ट संरचनाएँ** (cell inclusions) कहा जाता है । इन संचित या संग्रहित पदार्थो में लिपिड्स, पोलीसेकेराइड्स, ग्लाइकोजन्, पॉलीफॉस्फेट्स एवं गंधक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इन संचित पदार्थों के प्रमुख उदाहरणों में हाइड्रोजन सल्फाइड - ऑक्सीकारी जीवाणुओं में सल्फर निक्षेप गोलिका (globule) एवं **वाल्यूटिन** है । उपरोक्त पदार्थो के अतिरिक्त जीवाणुओं में एक और विशेष प्रकार का संचित पदार्थ **पोलीबीटा हाइड्रोक्सी ब्युटाइरिक अम्ल (Poly-β-hydroxybutyric acid)** पाया जाता है ।

VIII. **गैस रिक्तिकाएँ** (Gas Vacuoles) : अनेक प्रकार के जलीय जीवाणुओं यथा **फोटोट्रोफ्स** (Phototrophs) जीवाणुओं की वर्णक-रहित (non-pigmented) प्रजातियों जैसे होलोबेक्टीरियम

(Holobacterium) एवं क्लोस्ट्रीडियम (Clostridium) में जीवाणु कोशिका के प्लावन या अधोस्तर पर स्थिर रखने में सहायता प्रदान करने हेतु गैस रिक्तिकाएँ (gas vacuoles) उपस्थित होती हैं ।

IX. **कार्बोक्सीसोम्स** (Carboxysomes) : यह संरचनाएँ नाइट्रोसोमोनास (Nitrosomonas) एवं कुछ अन्य स्वपोषी जीवाणुओं में पाई जाती हैं तथा बहुभुजी आकृति की होती हैं । इनका परिमाप एवं आकार जीवाणुभोजी के समकक्ष होता है । कार्बोक्सीसोम्स में सूक्ष्म DNA के अतिरिक्त राइबुलोज़ डाइफॉस्फेट कार्बोक्साइलेज़ (RUDP Carboxylase) नामक एन्जाइम मिलता है ।

जीवाणु: श्वसन (Bacteria : Respiration) : श्वसन क्रिया के लिये जीवाणु कोशिका द्रव्य में उपलब्ध भोज्य पदार्थों के ऑक्सीकरण द्वारा ऊर्जा का उत्पादन होता है । श्वसनक्रिया के अंतर्गत कुछ जीवाणु वायुमंडल में मुक्त ऑक्सीजन या द्रवीय पदार्थों में घुली हुई ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं, इनको **वायवीय या ऑक्सी जीवाणु** (aerobic bacteria) कहते हैं ।

दूसरी ओर कुछ ऐसे भी जीवाणु होते हैं, जो श्वसन क्रिया के लिये वायवीय ऑक्सीजन का उपयोग नहीं करते, इनको **अवायवीय या अनॉक्सी जीवाणु** (anaerobic bacteria) कहते हैं । ऐसे जीवाणु केवल ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में ही जीवित रह सकते हैं, तथा ऑक्सीजन की उपस्थिति में ये मर जाते हैं । इसलिए इनमें श्वसन के अंतर्गत कार्बनिक पदार्थों का अपघटन वायुमण्डलीय ऑक्सीजन के उपयोग के बिना ही होता है जो कि निम्न प्रकार से है

C6 H12 O6 ऊर्जा ATP के रूप में

C6 H12 O6 - 2C2H5OH + 29के Cals ऊर्जा ATP के रूप में

उपरोक्त प्रक्रिया में कुछ ऑक्सीकारी एन्जाइम्स की उपस्थिति आवश्यक होती है एवं यहाँ ग्लूकोसशर्करा का पूर्ण ऑक्सीकरण नहीं होता, अत: बहुत कम ऊर्जा मिलती है । ऊर्जा का कुछ अंश ऊष्मा (heat) में भी बदल जाता है । कुछ जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न ऊष्मा की मात्रा इतनी अधिक होती है कि उन **खलिहानों** में जहाँ भूमि के ढेरों में अवायवीय जीवाणु होते हैं, वहाँ आग लग जाती है ।

जीवाण्विक कोशिका द्रव्य में **माइलकॉन्ड्रिया** (mitochondria), **अंतर्द्रव्यी जाल** (endoplasmic reticulum), **सेण्ट्रोसोम** (centrosome), तथा **गॉल्जी उपकरण** (Golgi apparatus) का **अभाव** होता है । यद्‌यपि जीवाणुओं में सुसंगठित **क्लोरोप्लास्ट** (chloroplast) नहीं पाये जाते हैं, तथापि प्रकाश संश्लेषी जीवाणुओं के कोशिका द्रव्य में **वर्णकी लवक** (chromatophores) पाये जाते हैं ।

बोध प्रश्न - 2

(a) ग्राम नेगेटिव जीवाणुओं में म्यूकोपेप्टाइड की मात्रा कितनी होती है?

....

(b) ग्राम अभिरंजित करने पर राइजोबियम जीवाणु कैसे दिखते हैं ?

....

(c) एक जीवाणु कोशिका में राइबोसोम्स की संख्या कितनी होती है ?

....

(d) जीवाणु गुणसूत्र के दो प्रमुख गुण लिखें ?

....

(e) पोलीबीटा हाइड्रोक्सी ब्यूटाइरिक अम्ल क्या है ?

....

2.5 जीवाणुओं का पोषण (Nutrition of Bacteria)

पोषण के आधार पर जीवाणुओं को निम्न दो श्रेणियों में विभेदित किया जा सकता है :

1. स्वपोषी जीवाणु (Autotrophic bacteria)
2. परपोषी जीवाणु (Heterotrophic bacteria)

1. स्वपोषी अथवा स्वपोषित जीवाणु (Autotrophic Bacteria) : वे जीवाणु जिनमें कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों से अपना भोजन स्वयं बनाने की क्षमता होती है, स्वपोषित (autotrophic) कहलाते हैं । **ऊर्जा के स्रोत** (energy source) के आधार पर स्वपोषित जीवाणु दो प्रकार के होते हैं :

(a) A. प्रकाश संश्लेषी जीवाणु (Photosynthetic bacteria) : ये जीवाणु **प्रकाश स्वपोषित** (photoautotrophic) अथवा **प्रकाश अकार्बनिक पोषित** (photolithotrophic) भी कहलाते हैं । इनमें उच्च पौधों के समान **विकिरण ऊर्जा** (radiant energy) का उपयोग करने की क्षमता होती है । सभी शैवालों व अन्य हरित वनस्पतियों में वर्णक के रूप में क्लोरोफिल a पाया जाता है । इसके विपरीत जीवाणुओं में क्लोरोफिल (Chlorophyll) नहीं पाया जाता । उच्च पौधों में **हाइड्रोजन दाता** (hydrogen donor) जल है तथा जल के **प्रकाश अपघटन** (photolysis) से ऑक्सीजन विमुक्त होती है । इसके विपरीत प्रकाश स्वपोषित जीवाणुओं में हाइड्रोजन दाता जल के अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ होता है । अत: इनमें ऑक्सीजन का विमोचन नहीं होता है । ये जीवाणु कार्बन **अकार्बनिक स्रोत** (inorganic sources, जैसे कार्बन डाइऑक्साइड, CO2) से प्राप्त करते हैं ।

जीवाणुओं में विशेष प्रकार का वर्णक **जीवाणु क्लोरोफिल (bacterio chlorophyll)** पाया जाता है । यही नहीं कुछ जीवाणुओं में अन्य उपयोगी वर्णक जैसे : बैक्टीरियोविरिडिन (Bacteriovirdin) या **क्लोरोबियम क्लोरोफिल** (Chlorobium chlorophyll) भी पाया जाता है । लेकिन ये लवक में (plastids) नहीं पाये जाते अपितु विशेष संरचनाओं वर्णकी-काय (chromatophores) में विकसित होते हैं । यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि, जीवाणु कोशिका प्रोकेरियोटिक होती है, अत: इनमें लवक (Plastid) जैसे झिल्ली बद्ध संरचना (membrane bound structure) नहीं पाई जाती ।

इस श्रेणी में **हरित गंधक जीवाणु** (Green sulphur bacteria) आते हैं । ये हाइड्रोजन दाता के रूप में हाइड्रोजन सल्फाइड (H2S) काम में लेते हैं । इनमें **गंधक**, प्रकाश संश्लेषण के सहउत्पाद (byproduct) के रूप में, ऑक्सीजन की जगह उत्पन्न होती है । जीवाणु प्रकाश संश्लेषण की समग्र रासायनिक समीकरण निम्न प्रकार से है

$$CO_2 + 2H_2S - (CH_2O)_n + 2S + H_2O + \text{ऊर्जा}।$$

कार्बोहाइड्रेट

इस वर्ग का उदाहरण है क्लोरोबियम (Chlorobium)

इसके अतिरिक्त इस श्रेणी में बैगनी गंधक जीवाणु (purple sulphur bacteria) क्रोमेटियम (chromatium) आदि भी आते हैं । प्रकाश संश्लेषी जीवाणु श्रेणी में एक अन्य वर्ग **प्रकाश : कार्बनिक पोषित** (Photo organotroph) भी पाया जाता है । ये जीवाणु हाइड्रोजन दाता के रूप में कार्बनिक स्त्रोत (organic source) काम में लेते हैं । उदाहरण : **गंधकहीन जीवाणु (Non sulphur bacteria)**

(b) रसायन संश्लेषी जीवाणु (Chemosynthetic Bacteria) : अनेक जीवाणु प्रजातियाँ CO2 को कार्बोहाइड्रेट्स में परिवर्तित करने के लिए अनेक प्रकार की रासायनिक क्रियाओं से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग करते हैं (लेकिन ये क्लोरोफिल की अनुपस्थिति के कारण प्रकाश की ऊर्जा का उपयोग नहीं कर सकते) । अत: इनमें भोजन निर्माण के लिए कुछ पदार्थो के ऑक्सीकरण से उत्पन्न ऊर्जा का उपयोग किया जाता है । गंधक और उसके यौगिक, अमोनिया, नाइट्राइट्स (nitrites), लोहा (iron), हाइड्रोजन, कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) एवं मीथेन आदि कुछ ऐसे ही रासायनिक पदार्थ हैं, जिनका ऑक्सीकरण जीवाणुओं द्वारा किया जाकर, इससे प्राप्त ऊर्जा का भोज्य पदार्थ संश्लेषण में उपयोग होता है । मुख्यतया रसायन संश्लेषी जीवाणु निम्न प्रकार के होते हैं :

I. **गंधक जीवाणु** (Sulphur bacteria) : अनेक प्रकार के गंधक जीवाणु, जैसे थायोबेसिलस (Thiobacillus), बेगिआटोआ (Beggiatoa) एवं थायोथ्रिक्स (Thiothrix) इत्यादि । गंधक या गंधक के यौगिकों का ऑक्सीकरण करके उनसे ऊर्जा प्राप्त करते हैं । उदाहरणतया थायोथ्रिक्स हाइड्रोजन सल्फाइड या खनिज सल्काइड्स को गंधक में ऑक्सीकृत करते हैं। यह गंधक स्ल्फ्यूरिक अम्ल में परिवर्तित हो जाती है ।

2H2S + O2 - 2S + 2H2O + 122.2 K.cal

2S + H2O + 3O2 - 2H2SO4 + 248.4 k. cal

II. **लोहा जीवाणु** (Iron bacteria) : लोहा जीवाणु अनेक प्रकार के होते हैं जो फेरस यौगिकों को फेरिक यौगिकों में ऑक्सीकृत कर इनसे ऊर्जा प्राप्त करते है, जैसे : लेप्टोथ्रिक्स (Leptothrix), एवं फैरोबेसिलस (Ferrobacillus) इत्यादि।

4FeCO3 + O2 + 6H2O - 4Fe (OH)3 + 4CO2 + 81 k.cal.

III. **हाइड्रोजन जीवाणु** (Hydrogen bacteria) : ये जीवाणु अणु रूपी हाइड्रोजन को जल में बदल देते हैं एवं रासायनिक संश्लेषण में इनसे प्राप्त ऊर्जा का उपयोग करते हैं, जैसे : बेसिलस पेन्टोट्रोफस (Bacillus pantotrophus) एवं हाइड्रोमोनास (Hydromonas) आदि ।

2H2 + O2 - 2H2O + 137 k cal.

IV. **नाइट्रीकारी जीवाणु** (Nitrifying bacteria) : ये जीवाणु नाइट्रोजन यौगिकों से ऊर्जा प्राप्त करते हैं । प्राय : ये 2 प्रकार के होते हैं : अमोनिया को नाइट्राइट्स में ऑक्सीकृत करने

वाले, जैसे : **नाइट्रोसोमोनास** (Nitrosomonas) तथा **नाइट्रोबेक्टर** (Nitrobacter) नाइट्रोकोकस (Nitrococcous) आदि जो नाइट्राइट को नाइट्रेट्स में बदल देते हैं :

2NH3 + 3O2 - 2HNO2 + 2H2O + 158 K. cal.

2NHO2 + O2 - 2HNO3 + 38 k. cal.

इनके अतिरिक्त कुछ रसायन **कार्बन - पोषी जीवाणु** (chemo-organotrophs) भी पाये जाते हैं जो कार्बन एवं इसके यौगिकों का उपयोग ऊर्जा स्रोत के रूप में करते हैं । ये निम्न प्रकार के हैं :

I. **मीथेन जीवाणु** (Methane bacteria) : ये जीवाणु मीथेन (CH4) गैस को CO2 व H2O में ऑक्सीकृत कर देते हैं । जैसे : मीथेनोकोकस (Methanococcus), लेक्टोबेसिलस (Lactobacillus) एवं एसिटोबेक्टर (Acetobacter) आदि।

II. **कार्बन जीवाणु** (Carbon bacteria) : ये जीवाणु **कार्बन मोनो ऑक्साइड** (CO) को ऑक्सीकृत करके ऊर्जा प्राप्त करते हैं, जैसे : बेसिलस ओलीगोकार्बोफिलस (Bacillus oligocarbophilus)

2CO + O2 - 2CO2 + Energy

परपोषी जीवाणु (Heterotrophic Bacteria) :

जीवाणुओं की अधिकांश प्रजातियाँ मुख्यतया परपोषी होती हैं, जो अन्य सजीवों द्वारा तैयार भोजन से अपना पोषण प्राप्त करती हैं । क्योंकि इनकी कोशिकाओं में कोई वर्णक नहीं होता, अत: ये सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करने में असमर्थ होते हैं । अत: इस प्रकार के जीवाणु **जटिल कार्बनिक यौगिकों** को एन्साइम्स की सहायता से घुलनशील बनाकर इनका अवशोषण करते हैं । इस प्रकार के जीवाणुओं को तीन वर्गो में बाँटा जा सकता है : **(a) मृतोपजीवी (Saprophytic,) (b) सहजीवी (Symbiotic),** एवं **(c) परजीवी (Parasitic)** जीवाणु ।

(a) **मृतोपजीवी जीवाणु** (Saprophytic bacteria) : इस प्रकार के जीवाणु मृत एवं सड़े गले अपघटित कार्बनिक पदार्थों से पोषण प्राप्त कर अपना जीवन - यापन करते हैं । ये जटिल कार्बनिक पदार्थों को पहले अपने एन्जाइम्स द्वारा घुलनशील यौगिकों में बदल देते हैं एवं फिर आवश्यकतानुसार इनका अवशोषण करते हैं । मृत जीवों के शरीर को सड़ाने एवं गलाने का काम यह जीवाणु ही करते हैं । इनके द्वारा **प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट** के अपघटन की प्रक्रिया को पूयन (putrification) एवं किण्वन (fermentation) कहते हैं उदाहरण लेक्टोबेसिलस (Lactobacillus) । अनेक जीवाणु वसीय पदार्थों का विघटन भी करते हैं । सामान्यतया मृतोपजीवी जीवाणु **विकल्पी परजीवी** (facultative parasites) या **अविकल्पी मृतोपजीवी** (obligate saprophyte) होते हैं । विकल्पी परजीवी मृत कार्बनिक पदार्थों के न मिलने पर सजीवों के ऊपर परजीवी बन कर पोषण प्राप्त करते हैं ।

(b) **सहजीवी जीवाणु** (Symbiotic bacteria) : कुछ जीवाणु, जैसे राइजोबियम (Rhizobium) की अनेक प्रजातियाँ **सहजीवी (symbionts)** का उपयुक्त उदाहरण हैं । ये लेग्यूमिनोसी कुल के पौधों की मूल ग्रन्थियों (root nodules) में पाये जाते हैं तथा वायुमंडलीय

नाइट्रोजन को नाइट्राइट या नाइट्रेट्स में बदल देते हैं, जिनका उपयोग पौधों के द्वारा होता है । बदले में ये आवास एवं कार्बोहाइड्रेट पोषण पदार्थ पौधों से प्राप्त करते हैं ।

(c) **परजीवी जीवाणु** (Parasitic bacteria) : अनेक जीवाणु अपने पोषण के लिए सजीव जन्तुओं एवं पेड़-पौधों पर निर्भर करते हैं । ये वायु, भोजन एवं जल के द्वारा उनके शरीर में पहुँचते हैं । परजीवी जीवाणु भी दो प्रकार के क्रमशः **हानिकारक** या **रोगकारी (pathogenic)** एवं **हानिकारक** या **रोगकारी (nonpathogenic)** होते हैं । सभी प्रकार के परजीवी जीवाणु रोग उत्पन्न नहीं करते, जैसे अनेक प्रकार के कोलाइ जीवाणु जानवरों व मनुष्यों की आँतों में रहते हैं । लेकिन रोग उत्पन्न नहीं करते, जबकि जैन्थोमोनास जैसे जीवाणु पौधों में रोग उत्पन्न कराते हैं ।

बोध प्रश्न - 3

(a) हरित गंधक जीवाणु का पोषण किस प्रकार का होता है ?

....

(b) गंधक जीवाणु यथा बेगिआटोआ का पोषण का प्रकार लिखिये ?

....

(c) ऐसे नाइट्रीकारी जीवाणु का उदाहरण दीजिये जो सहजीवी न हो ?

....

2.6 प्रोकेरियोटी एवं यूकेरियोटी जीवों में अन्तर (Differences between Prokaryotes and Eukaryotes)

कोशिका की संरचना के आधार पर जीवों को दो वर्गों में विभाजित किया है । इन्हें दो वर्गों में विभक्त करने का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण इन जीवों की कोशिका में केन्द्रक का स्पष्ट होने या न होने पर आधारित था । ऐसी कोशिका जिसमें केन्द्रक स्पष्ट व सुसंगठित हो उसे **यूकेरियोटिक (Eukaryotic)** व जीव को **यूकेरियोटी** जीव **(Eukaryote)** कहते हैं ।

अस्पष्ट व सुसंगठित केन्द्रक के अभाव वाली कोशिका **प्रोकेरियोटिक (Prokaryotic)** व जीव **प्रोकेरियोटी जीव (Prokaryotes)** कहलाते हैं ।

इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी एवं सम्बद्ध अभिरंजक तकनीकों के विकास व प्रयोग से सूक्ष्मदर्शी की विभेदन क्षमता (resolving power) व आवर्धन क्षमता (Magnifying power) सामान्य संयुक्त सूक्ष्मदर्शी (compound microscope) की तुलना में बहुत अधिक बढ़ गई । परिणामस्वरूप कोशिकाओं व सूक्ष्मजीवों की **परासंरचना (ultrastructure)** का अध्ययन सम्भव हो पाया । इन अध्ययनों के परिणामस्वरूप प्रोकेरियोटी एवं यूकेरियोटी कोशिकाओं व जीवों में बहुत से अन्तर स्थापित किये जा सके हैं ।

यूकेरियोटी (Eukaryotic = Eukaryotic) : इस शब्द का अर्थ है सुसंगठित या वास्तविक केन्द्रक (well formed nucleus or true nucleus) Eu का अर्थ है भला या सत्य (good or well or true).**प्रोकेरियोटी** (Prokaryotic = Procaryotic) का अर्थ है आद्‌य केन्द्रक (Primitive nucleus) वाली कोशिका या जीव ।

प्रोकेरियोटी के महत्वपूर्ण लक्षण हैं :

(a) **केन्द्रक (nucleus)** अस्पष्ट होता है व केन्द्रक कला (Nuclear membrane) का अभाव होता है । केन्द्रिक (nucleous) का अभाव होता है । इन्हें **केन्द्रकाभ** (nucleoid) या **केन्द्रक समतुल्य** (nuclear equivalent) कहा जाता है । इनके विपरीत यूकेरियोटी में स्पष्ट व सुसंगठित व केन्द्रक कला से घिरा केन्द्रक होता है । केन्द्रिक (nucleous) पाया जाता है ।

(b) गुणसूत्र कभी भी स्पष्ट दृष्टिगत नहीं होते । इसके विपरीत यूकेरियोटी में कोशिका विभाजन की प्रक्रिया में स्पष्ट गुणसूत्र दिखाई पड़ते हैं :

(c) प्रोकेरियोटी में **अनेक झिल्लीबद्ध कोशिकांगों का अभाव** होता है यथा इनमें गॉल्जीकाय (Golgibodies), हरितलवक (chloroplasts), अन्तद्रव्यी जालिका (endoplasmic reticulum) व माइटोकोन्ड्रिया (mitochondria) नहीं पाये जाते।

प्रोकेरियोटा (Prokaryota) शब्द का प्रयोग सबसे पहले क्रिस्टेनसन (Christensen 1962) द्‌वारा किया गया ।

प्रोकेरियोटी व यूकेरियोटी कोशिका में अन्तर

अन्तर का आधार (Character)	**प्रोकेरियोटी (Prokaryota)**	**यूकेरियोटी (Eukaryota)**
(1) आनुवंशिक संगठन (Genetic organisation)		
(a) केन्द्रक (Nucleus)		
(b) केन्द्रक कला	अस्पष्ट	स्पष्ट
(c) हिस्टोन प्रोटीन (डी.एन.ए. के साहचर्य में) (DNA Associated)	अनुपस्थित अनुपस्थित	उपस्थित उपस्थित
(d) केन्द्रिक	अनुपस्थित	उपस्थित
(e) गुणसूत्र	प्राय: केवल 1 अस्पष्ट व वलयाकार	स्पष्ट विविध संख्या में, यदि 1 तो वलयाकार नहीं
(f) कोशिकागों में डी.एन.ए.	अनुपस्थित	उपस्थित
(2) झिल्लीबद्ध कोशिकांग	अनुपस्थित	उपस्थित
गोलजीकाय	अनुपस्थित	उपस्थित
अन्तः द्रव्यी जालिका	अनुपस्थित	उपस्थित
माइटोकोंड्रिया	अनुपस्थित	उपस्थित

लाइसोसोम	अनुपस्थित	उपस्थित
हरितलवक	प्रकाश संश्लेषी वणर्क जिन जीवों में मिलते है वहाँ Thylacoids में मिलते हैं।	उपस्थित (पादपों में)
(3) जीवद्रव्य प्रवाह (Cyclosis)	प्रायः अनुपस्थित	उपस्थित
(4) रोइबोसोम	70S प्रकार के अन्तद्रव्यी जालिका से असम्बद्ध	80S प्रकार के अन्त द्रव्यी जालिका से जुड़े
(5) कशाभिका	कुछ जीवों में विद्यमान, 9+2 संगठन नहीं, कम व्यास (120 A प्राय)	कुछ जीवों में पाएँ जाते है, 9+2 संगठन अधिक व्यास
(6) कोशिका विभाजन		
(a) प्रकार	असूत्री विभाजन या	सूत्री विभाजन या माइटोसिस
(b) तर्कु निर्माण	एमाइटोसिस	उपस्थित
(c) तारककाय (Centrosome/Centriole)	अनुपस्थित	उपस्थित
(7) युग्मक के संलयन से लैंगिक जनन	अनुपस्थित कुछ में आनुवशिक पुनर्योजन पाया जाता है।	उपस्थित
अगुणित / द्विगुणित चक्र	अनुपस्थित (प्राय अगुणित)	उपस्थित
(8) आनुवांशिक पदार्थ की मात्र या जीनोम का आकार (Genome size)	बहुत छोटा	बड़ा
(9) कोशिका भित्ति:	प्रायः उपस्थित पेप्टाडोग्लाइकिन की (माइकाप्लाज्मा में अनुपस्थित)	पादपों में प्रायः सेलुलोज की जन्तुओं में उपस्थित
उदाहरण	जीवाणु, नीलहरित, शैवाल, माइकोप्लाज्मा	अधिकांश शैवाल, कवक, बीजीय पादप आदि
(10) क्रमविकास में स्थिति (evolutionary position)	आघ (Primitive)	प्रगत (Advanced)

2.7 इकाई सारांश

1. हालैण्ड निवासी ल्यूवेनहॉक ने जीवाणु की खोज की ।

2. जीवाणु एककोशीय, प्रोकेरियोटिक सूक्ष्म जीव हैं ।
3. जीवाणु सर्वव्यापी (ubiquitous or Ominipresent) होते हैं ।
4. जीवाणुओं का अध्ययन जीवाणु विज्ञान कहलाता है ।
5. लुई पाश्चर द्वारा रोग की जर्म थ्योरी प्रस्तुत की गई जिसे राबर्ट कॉक ने प्रमाणित व स्थापित किया ।
6. बहुत कम्म जीवाणु स्वपोषी होते हैं । सामान्यत: ये परजीवी, मृतोपजीवी एवं कुछ सहजीवी होते है ।
7. इनकी कोशिका भित्ति म्यूकोपेप्टाइड द्वारा निर्मित होती है ।
8. कुछ जीवाणु कोशिकाओं के बाहर सम्पुटिका पाई जाती है ।
9. इनमें श्वसन प्राय: मीजोसोम्स द्वारा होता है ।
10. जीवाणु मुख्यतया गोलाकार या छड़ाकार या कुंडलित या विब्रियो अर्थात् कोमा के समान होते हैं ।
11. जीवाणु अभिरंजन की ग्राम अभिक्रिया, एक डेनिश चिकित्सक क्रिश्चियन ग्राम ने विकसित की थी ।
12. ग्राम पॉजिटिव जीवाणु अभिरंजन पर बैंगनी रंग ग्रहण कर लेते हैं, जबकि ग्राम निगेटिव जीवाणु अभिरंजित नहीं होते।
13. जीवाणु गतिशील एवं अचल दोनों प्रकार के होते हैं ।
14. जीवाणुओं में गतिशीलता के लिए कशाभिकाएँ होती है । ये संरचना में यूकेरियोटी कशाभिकाओं से भिन्न होती हैं।
15. जीवाणुओं में पोषण की विविधता जीव जगत में सर्वाधिक पाई जाती है ।
16. प्रमुखतया ये परपोषी (Heterotrophic) होते हैं जो मृतोपजीवी, परजीवी व सहजीवी रूप में पोषण प्राप्त करते हैं।
17. कुछ जीवाणु प्रकाश संश्लेषी व कुछ रसायन संश्लेषी होते हैं ।
18. प्रोकेरियोटिक कोशिका (या जीवों) में स्पष्ट केन्द्रक, केन्द्रक कला व अनेक झिल्लीबद्ध कोशिकांगों का अभाव होता है । यह यूकेरियोटिक से आद्य (Primitive) मानी जाती है ।

2.8 शब्दावली

1. **सर्वव्यापी :** जो सभी स्थानों में मिलता हो ।
2. **प्रोकेरियोटिक :** आद्य केन्द्रक वाली कोशिका या जीव ।
3. **सम्पुटिका :** जीवाणु कोशिका भित्ति के बाहर पाये जाने वाला जलीय बहुल पदार्थ का म्यूसिलेजी आवरण ।
4. **अशूक जीवाणु** : ऐसे जीवाणु जिनमें कशाभिका का अभाव होता है ।
5. **पेप्टीडोग्लाइकॉन** : केवल प्रोकेरियोटी कोशिका भित्ति में पाये' जाने वाले अघुलनशील बहुलक का नाम ।

6. **मध्यकाय** (Mesosmes) : जीवाणु में कोशिका झिल्ली के अन्तर्वलन से बनने वाली संरचना।

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. पेल्क्जार, चान व क्रीग - माइक्रोबाइलोजी, टाटा, मैक्ग्राहिल पब्लिशिंग क., नई दिल्ली
2. पोवार एवं दागिनावाला - जनरल माइक्रोबाइलोजी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस- मुम्बई, दिल्ली, नागपुर ।
3. रोनाल्ड एटलस - प्रिंसिपल ऑफ माइक्रोबाइलोजी मोस्वी - ईयर बुक इंक, यू.एस.ए. ।
4. टोराटोरा, फंक एवं केस - माइक्रोबाइलोजी एन इन्ट्रोडक्शन - दी बेन्जामिन/कम्मिन्गस पब्लिशिंग कं., इन्क. केलिफोर्निया, यू.एस.ए ।
5. सिन्हा एवं श्रीवास्तव- एन इन्ट्रोडक्शन टू बेक्टीरिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।
6. त्रिवेदी, शर्मा एवं धनखड़ (2006), सूक्ष्मजैवीय विविधतायें, रमेश बुक डिपो, जयपुर

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(a) डायरकन्स या जन्तुक

(b) एरेनबर्ग

(c) एस्केरिशिया कोलाई

(d) बेगियाटोआ मिराबिलिस

(e) गोलाकार, छड़ाकार, सर्पिलाकार

(f) फ्लैजेलिन नामक प्रोटीन की

बोध प्रश्न 2

(a) 3 से 120/0 तक

(b) ग्राम निगेटिव

(c) 15,000 से 20,000

(d) वलयाकार, द्विरज्जुकी DNA उपस्थित

(e) जीवाणुओं में संचित भोज्य पदार्थ का नाम

बोध प्रश्न 3

(a) प्रकाश संश्लेषी

(b) रसायन संश्लेषी

(c) नाइट्रोसोमोनास, नाइट्रोबेक्टर

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जीवाणुओं के सामान्य लक्षण बतायें ?
2. जीवाणुओं के विभिन्न आकार व समूहन का सचित्र वर्णन कीजिये ।
3. ग्राम पॉजीटिव व ग्राम निगेटिव जीवाणुओं की कोशिका भित्ति में प्रमुख अन्तर लिखें ।

4. प्लाज्मिड क्या होता है ?
5. जीवाणुओं की पोषण विधियाँ लिखिये ?
6. प्रोकेरियोटी व यूकेरियोटी कोशिका में प्रमुख अन्तर लिखिये व प्रोकेरियोटी जीवों के चार उदाहरण लिखिये ।

इकाई 3 : जीवाणु : जनन एवं आर्थिक महत्व (Reproduction in Bacteria and economic Importance)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 कायिक जनन
3.3 अलैंगिक जनन
3.4 लैंगिक जनन या आनुवंशिक पुनर्योजन
3.5 जीवाणुओं का आर्थिक महत्व
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 संदर्भ ग्रन्थ
3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य :

1. जीवाणुओं के जनन के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट करना ।
2. जीवाणुओं के आर्थिक महत्व के विषय में समझना ।
3. जीवाणुओं के महत्व को स्पष्ट करना ।

3.1 प्रस्तावना

जीवाणुओं में जनन (Reproduction in Bacteria) की प्रक्रिया मुख्यतया कायिक व अलैंगिक (asexual reproduction) विधियों द्वारा सम्पन्न होती है । पूर्ववर्ती सूक्ष्म जीवविज्ञानियों की यह मान्यता थी कि जीवाणुओं में लैंगिक जनन नहीं पाया जाता, परन्तु सूक्ष्मजीव विज्ञानियों द्वारा किये गये प्रयोगों व सूक्ष्मविज्ञान की नवीन तकनीकों के उपयोग एवं इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर यह पाया गया है कि कुछ जीवाणुओं में आनुवंशिक पदार्थो का **विनिमय या पुनर्योजन (genetic recombination)** होता है, यह **विनिमय सदैव एकलदिशीय (unidirectional)** होता है ।

जीवाणुओं में जनन का अध्ययन हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते है :

– कायिक जनन
– अलैंगिक जनन
– लैंगिक जनन या आनुवंशिक पुनर्योजन ।

3.2 कायिक जनन (Vegetative reproduction)

यह निम्न विधियों द्वारा होता है

A. द्विविखण्डन (Binary fission)

B. मुकुलन (Budding)

A. द्विविखण्डन अथवा द्विखण्डन अथवा अनुप्रस्थ द्विविखण्डन (Binary fission or transverse binary fission):

– खण्डन (Fission) की प्रक्रिया केवल जीवाणुओं व यीस्ट में पाई जाती है ।

– जीवाणुओं का जनन सामान्यतया द्विविखण्डन द्वारा होता है ।

पोषण, ताप एवं आर्दता की अनुकूल परिस्थितियों में प्राय: इस प्रक्रिया के द्वारा जनन होता है । यहाँ एक जीवाणु कोशिका विभक्त होकर दो समान आकार की संतति कोशिकाओं का निर्माण कर लेती है, इस प्रक्रिया को द्विविखण्डन (binary fission) कहते हैं (चित्र 3.1) । दण्डाणु (Bacilli) तथा सर्पिल (Spiral) जीवाणु, कोशिका की लम्बवत् अक्ष के समकोण पर विभाजित होते हैं, जबकि गोलाणु (Coccus) जीवाणु कोशिका किसी भी अक्ष पर विभाजित हो जाती है । द्विविखण्डन प्रकिया निम्न चरणों में सम्पन्न होती है :

1. **केन्द्रकीय या आनुवंशिक पदार्थ का विभाजन (Division of nuclear or genetic material) :** विखण्डन **सामान्य सूत्री विभाजन** (Normal Mitotic division) से भिन्न होता है । जब जीवाणु कोशिका अपना अधिकतम आकार प्राप्त कर लेती है, तब यह विभाजन हेतु लम्बाई में वृद्धि करती है । **केन्द्रकाभ (Nucleoid) संकीर्णन (Constriction)** के दारा विभाजित होता हुआ प्रतीत होता है । इसमें केन्द्रीय या आनुवंशिक पदार्थ जो वर्तुलाकार (Circular) DNA के रूप में होता है, इसका **प्रतिकृतिकरण (replication)** हो जाता है एवं दो DNA घटकों का निर्माण होता है । यह प्रक्रिया अर्थात् **रेप्लीकेशन अर्धसरंक्षी (semi-conservative type)** प्रकार का होता है । (कैर्न Cairn, 1863 के अनुसार) केन्द्रकीय पदार्थ के विभाजन के समय तर्कुतन्तु (spindle fibres) नहीं बनते हैं, अत: इस विभाजन को **असूत्रीविभाजन (amitosis)** कहते हैं ।

2. **कोशिका द्रव्यीय विभाजन या पट निर्माण (Division of Cytoplasm or Septum formation) :** केन्द्रकीय पदार्थ विभाजन की अंतिम अवस्थाओं में जीवाणु कोशिका के मध्य भाग पर कोशिका झिल्ली **अंतर्वलित (invaginate)** होने लगती है । यह अंतर्वलन निरंतर **केन्द्राभिसारी (Centripetal)** क्रम में आगे बढ़ता है । यह अंतर्वलन धीरे-धीरे बढ़ता जाता है एवं कोशिका की सतह पर **संकीर्णन (constriction)** के रूप में दिखाई देता है । यह संकीर्णन क्रमश : गहरा होता जाता है परिणामस्वरूप जीवाणु कोशिका अंतत: दो बराबर की संतति कोशिकाओं में विभक्त हो जाती है । अब दोनों कोशिकाएँ अलग-अलग हो जाती हैं । जीवाणु कोशिका के द्विविखण्डन द्वारा विभाजित होने की प्रक्रिया में लगने वाले समय को **(Doubling time) द्विगुणन-समय या**

(Generation time) पीढ़ी-अवधि कहते हैं । अनुकूल परिस्थितियों में द्विविखण्डन की प्रक्रिया **18 से 20 मिनट** में पूरी हो जाती है अनुकूलतम परिस्थिति में जीवाणु संख्या मात्र 9.8 मिनिट में द्विगुणित हो सकती है । विब्रियो जीवाणु 20 मिनट में विभाजित होता है तथा 24 घंटे में $\mathbf{47 \times 10^{20}}$ की संख्या में जीवाणु बनने चाहिए । लेकिन वास्तव में निम्न कारणों से इतनी अधिक संख्या में जीवाणु
कोशिकाओं का निर्माण नहीं होता ।

1. भोजन, ऑक्सीजन, स्थान व जल की कमी के कारण ।
2. कोशिका द्वारा स्रावित कुछ पदार्थ, इनकी वृद्धि एवं विभाजन में रुकावट डालते है ।
3. प्रकाश, तापक्रम व आर्द्रता जैसी वातावरणीय परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण।
4. जीर्णता के कारण या वाइरस द्वारा संक्रमित हो जाने के कारण जीवाणु कोशिका की मृत्यु ।

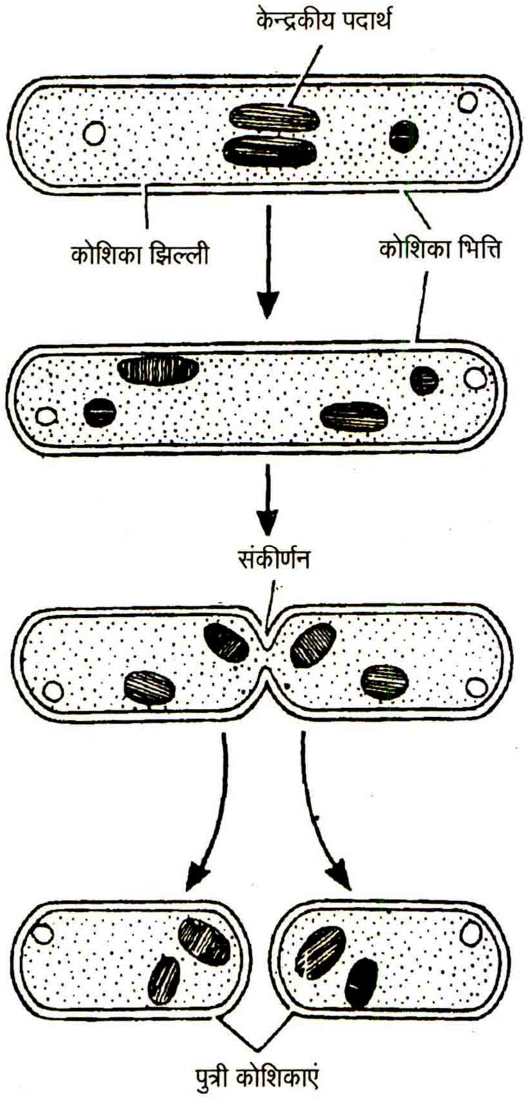

चित्र 3.1 : जीवाणु कोशिका का विखण्डन

B. मुकुलन (Budding)

इस प्रक्रिया में जीवाणु कोशिका के एक सिरे पर या उसके पास ही एक पतली झिल्ली से ढकी कोशिकाद्रव्ययीय अतिवृद्धि (cytoplasmic outgrowth) उत्पन्न होती हैं, जिसमें आनुवंशिक पदार्थ भी आ जाते हैं । यह संरचना आकार में बढ़ती जाती है, इसे मुकुल (Bud) कहते हैं, अंत में यह संकीर्णन के द्वारा जनक कोशिका से पृथक हो जाती है । अब यह संतति कोशिका या मुकुल कोशिका स्वयं जनक कोशिका के बराबर आकृति ग्रहण करके मुकुलन द्वारा कायिक जनन करती है, उदाहरण : **हाइफोमाइक्रोबियम ।**

इनके अतिरिक्त कुछ जीवाणु खण्डीभवन (Segmentation) द्वारा भी कायिक जनन करते हैं । यह प्रक्रिया प्राय: तन्तुमय जीवाणुओं में होती है । उदाहरण : **नोकार्डिया** (Nocardia) ।

3.3 अलैंगिक जनन (Asexual Reproduction)

यह निम्न विधियों द्वारा होता हैं ।

A. कोनिडियोबीजाणु एवं बीजाणु अथवा धानी बीजाणु द्वारा (By conidiospores and Spores or Sporangiospore)

तन्तुमय जीवाणुओं (Filamentous Bacteria) के एक बड़े समूह **एक्टिनोमाइसीट्स** (Actionmycetes) का कायिक भाग शाखित तन्तुओं का होता है । इन तंतुओं के शीर्ष पर बीजाणु के समान छोटी-छोटी गोल अथवा अण्डाकार संरचनाएँ बनती हैं जिन्हें **कोनिडियोबीजाणु** अथवा **कोनिडिया (Conidiophore or conidia)** कहते हैं । इनका विकास जीवाणु तन्तु में **अनुप्रस्थ भित्तियों** के बनने से एक लम्बी श्रृंखला में होता है । कोनिडिया युक्त तन्तु **कोनिडियमधर (conidiophore)** कहलाता है (चित्र 3.2) । प्रत्येक कोनिडियम मुक्त होने के पश्चात् अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित होकर नये जीवाणविक तन्तु का निर्माण करता है । उदाहरण : स्ट्रेप्टोमाइसीज़ (Streptomyces)

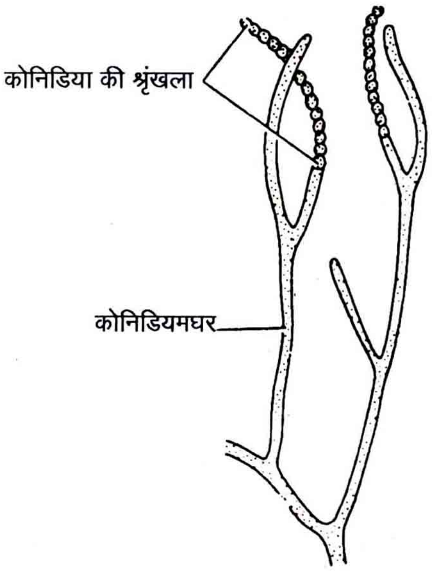

चित्र 3.2 : स्ट्रेप्टोमाइसीज (Streptomyces) में कोनिडियो बीजाणु

यदि बीजाणुओं का निर्माण **बीजाणुधानी** (Sporangia) में होता है तो इन्हें धानी बीजाणु या बीजाणु (sporangiospore or spore) कहा जाता है ।

B. अन्त: बीजाणु द्वारा (By Endospore)

अलैंगिक जनन की यह अनूठी प्रक्रिया प्राय : जीवाणुओं की प्रतिकूल परिस्थितियों में दृष्टिगोचर होती है । अत: बीजाणुओं का निर्माण सामान्यतया परजीवी जीवाणुओं में होता है । ये जीवाणु प्रतिकूल परिस्थितियों आने पर **अंत: बीजाणुओं (endospores)** जैसी विशिष्ट संरचनाओं का निर्माण करते हैं, जो कि जनक जीवाणु कोशिका में विकसित होने वाली **अत्यन्त प्रतिरोधी (highly resistant)**, कार्यिकी रूप से **सुषुप्त (dormant)**, एककोशीय संरचनाएँ होती हैं । ये पोषक पदार्थों के न मिलने पर भी लम्बे समय तक जीवित रह सकते हैं । वे जीवाणु कोशिकाएँ जिनमें अत: बीजाणुओं का निर्माण होता है, प्राय: बड़े आकार के जीवाणुओं, जैसे : बेसीलस (Bacillus) एवं क्लॉस्ट्रीडियम(Clostridium) आदि में बनती हैं ।

सामान्यतया एक कोशिका में एक ही अंत:बीजाणु का निर्माण होता है, लेकिन कुछ उदाहरणों में एक से अधिक अंत: बीजाणुओं का निर्माण भी एक कोशिका में देखा गया है एनेएरोबेक्टर (Anaerobacter) में एक कोशिका में सात तक अन्त:बीजाणु भी पाये जाते हैं ।

अन्त: बीजाणु धारण करने वाली जीवाणु कोशिका को बीजाणुधानी (sporangium) कहते हैं । विभिन्न जातियों में अन्त: बीजाणुओं का आकार, आमाप तथा स्थिति भिन्न होती है । इनका आकार गोल अथवा अण्डाकार होता है तथा इनका आमाप जीवाण्विक कोशिका से कम, अधिक अथवा उसके बराबर हो सकता है ।

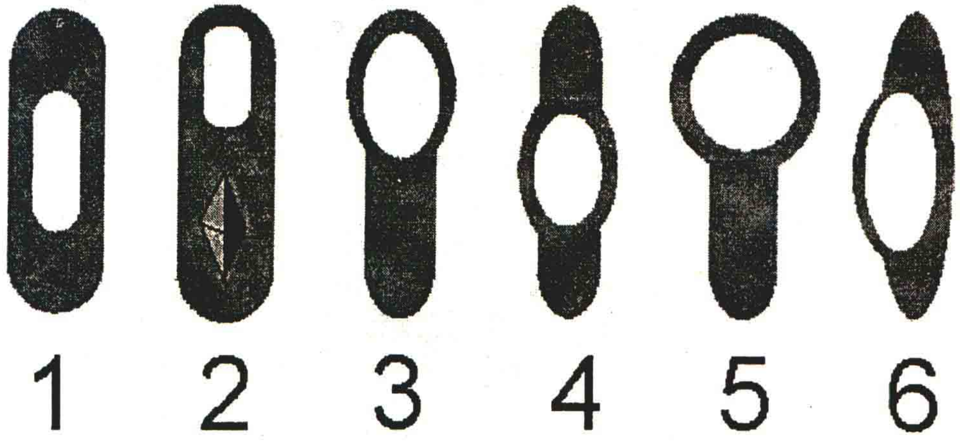

चित्र 3.3 : अन्त: बीजाणुओं की विभित्र स्थिति एवं आकार

अन्त:बीजाणु निर्माण की प्रक्रिया (Process of Endospore formation) :

अंत:बीजाणुओं का निर्माण एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है ।

अंत:बीजाणु बनाने वाली कोशिका में वृद्धि होती है एवं इसका क्रोमेटिन संघटित होकर एक अक्षयी तन्तु का आकार ले होता है । DNA का **प्रतिकृतिकरण (replication)** हो जाता है ।

कोशिका के एक ध्रुव से कुछ हटकर प्लाज्मा झिल्ली दोनों तरफ से अंतर्वलित (invaginate) होना प्रारम्भ हो जाती है। यह **केन्द्राभिसारी (centripetal)** रूप से वृद्धि करती है, दोनों छोर

आपस में जुड़कर पट्ट बनाते हैं जिनको आद्‌यक पट्ट कहते हैं । पट्ट निर्माण के द्‌वारा एक छोटी कोशिका बनती है, इसे **बीजाणु आद्‌यक (Fore Spore)** कहते हैं । इस संरचना में केन्द्रीय पदार्थ भी स्थानांतरित हो जाता है । आद्‌यक बीजाणु मातृक कोशिका के कोशिका द्रव्य में स्वतन्त्र हो जाता है ।

इसके बाद आद्‌यक बीजाणु की कोशिका झिल्ली के बाहर पेप्टाइडोग्लाइकोन की कोशिका भित्ति का संश्लेषण हो जाता है । इसे बीजाणु भित्ति कहते हैं । तत्पश्चात बीजाणु कोशिका भित्ति एवं कोशिका झिल्ली के बीच पेप्टाइडोग्लाइकोन वल्कुट का निक्षेपण या जमाव हो जाता है । अब जीवाणु कोशिका में जीवद्रव्य अधिक सघन हो जाता है । इसमें डाइ-पिकोनिलिक अम्ल का संश्लेषण होता है जिसका जमाव कोशिका झिल्ली में हो जाता है । इसके साथ ही बीजाणु जीवद्रव्य में **Ca^{++} आरजीनीन** एवं ग्लूटामिक अम्ल की मात्रा बढ़ जाती है । बीजाणु भित्ति में अत्यधिक विभेदन हो जाता है एवं यह बहुस्तरीय हो जाती है ।

इसके बाद बीजाणु मातृ कोशिका में परिपक्व हो जाता है, एवं अरब इस मातृकोशिका को बीजाणुधानी कहते हैं ।

बीजाणु के परिपक्व हो जाने के बाद **बीजाणुधानी (sporangium)** का आत्मलयन (autolysis) हो जाता है, एवं बीजाणु स्वतन्त्र हो जाता है । बीजाणु का प्रकीर्णन वायु द्‌वारा होता है । सामान्यतय: अन्त: बीजाणु की ही निर्माण प्रक्रिया लगभग 8 घंटे में पूरी हो जाती है ।

क्लॉस्ट्रीडियम में अंत: बीजाणु निर्माण की प्रक्रिया में 2 घंटे लगते हैं, जबकि बेसीलस सबटेलिस में अंत: बीजाणु का निर्माण 7 घंटे में होता है । कुछ जीवाणुओं में तो अंत: बीजाणु निर्माण की प्रक्रिया 16 से 20 घंटों में पूरी होती है । प्रकीर्णन के बाद अंत: बीजाणु अनेक वर्षों तक सुधुप्तावस्था में रहते हैं । अन्त: बीजाणु लाखों वर्षों तक जीवित रह सकते हैं ।

अन्त:बीजाणु की संरचना (Structure of Endospore) : प्रत्येक जीवाणु प्रजाति में अन्त:बीजाणु की संरचना में भिन्नता पाई जाती है । इसकी भित्ति विशेष प्रकार की होती है एवं अनेक स्तरों मे विभेदित होती है । यह बीजाणु का आधे से भी अधिक आयतन घेरती है । बीजाणु का केन्द्रीय भाग, जिसमें जीवद्रव्यक **(protoplast)** होता है, क्रोड **(core)** कहलाता है । इसमें DNA व राइबोसोम होते हैं ।

यह एक झिल्ली से ढका होता है, जिसे क्रोड कला (core membrane), कहते है । क्रोड के चारों ओर का बहुस्तरीय भाग **कॉर्टेक्स (Cortex,)** कहलाता है यह पेप्टाइडोग्लाइकान युक्त होती है । इसके बाहर की मोटी परत **बीजाणु चोल (Spore Coat)** कहलाती है । यह **सुदृढ़** एवं **अपारगम्य (impermeable)** होती है । अन्त:बीजाणु के अंकुरण से सम्बन्धित **विकर (enzymes)** सम्भवतया इसी बीजाणु चोल में निहित होते हैं (चित्र 3.4) ।

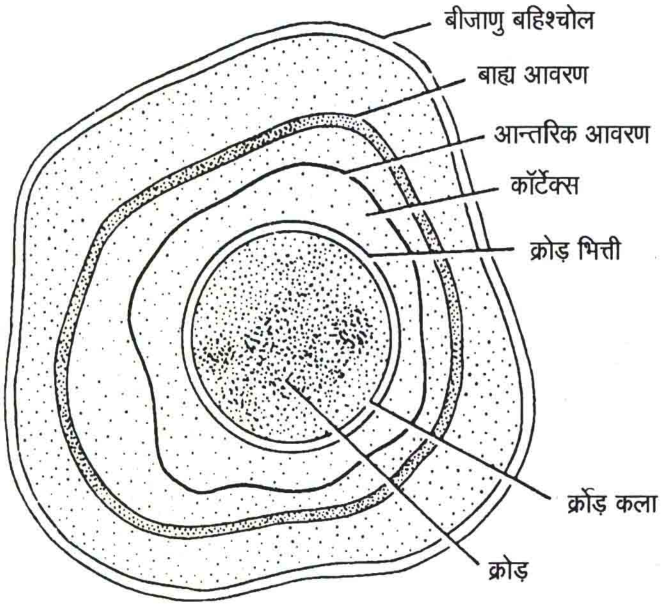

चित्र 3.4 : जीवाणु के अन्त: बीजाणु का अनुप्रस्थ परिच्छेद

अंत: बीजाणु की कार्यात्मक विशिष्टता (Physiological Characteristics of Endospore): इनमें तापमान की चरम परिस्थितियों, प्रकाश, रोगानुनाशियों एवं विषालु पदार्थो के लिये अपूर्व प्रतिरोधी क्षमता होती है । ये अंत: बीजाणु 100° से. ताप के लगभग 20 घंटे तक सहन कर सकते हैं, कुछ बीजाणु तो 120° से. तापमान पर भी अप्रभावित रहते हैं । इसी प्रकार द्रवरूपी हीलियम (ताप -260° से.) के न्यूनतम तापमान का भी इनके ऊपर कोई असर नहीं होता । अन्त: बीजाणु की यह प्रतिरोधी क्षमता निम्न कारणों से हो सकती है :

1. उपापचयी क्रियाओं की न्यूनता, 2. जल की अल्प मात्रा, 3. बीजाणुभित्ति (spore coat) का अपारगम्य होना तथा सुरक्षात्मक प्रकृति, 4. सक्रिय एन्जाइम की न्यूनता या कमी, 5. बीजाणु संगठन में केल्सीयम की बहुलता, 6. स्थायीकारी पदार्थ डाइपिकोनिलिक अम्ल की उपस्थिति ।

अनुकूल परिस्थितियों के आने पर, अंत:बीजाणु का अंकुरण हो जाता है । बीजाणु के बीच से या ऊपरी सिरे से बीजाणु चोल (spore coat) टूट जाता है एवं एक वृद्धिशील कोशिका बाहर आ जाती है । यहाँ एक और महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि, एक जीवाणु कोशिका द्वारा केवल एक अन्त:बीजाणु बनता है एवं एक अंत:बीजाणु के अंकुरण से केवल एक जीवाणु कोशिका बनती है । अत: अन्त:बीजाणु के निर्माण को अलैंगिक जनन की अपेक्षा एक **चिरकालिता विधि (perennation method)** कहना उचित होगा ।

C. पुटी या सिस्ट (Cyst):

कुछ जीवाणुओं जैसे **एजोटोबेक्टर** (Azotobacter) की कुछ जातियों में यह देखा गया है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में कोशिका का सम्पूर्ण जीव द्रव्य (protoplast), कोशिका भित्ति को छोड़कर अंदर की ओर सिकुड जाता है । इसके बाद इसके चारों ओर एक मोटी भित्ति का निर्माण हो जाता है । यह संरचना भी सुषप्त, मोटी भित्ति वाली व शुष्कता प्रतिरोधी **(Desiccation resistant)** होती है । यद्यपि यह अन्त:बीजाणु के समान प्रतीत होती है परन्तु इनकी संरचना

व रासायनिक संगठन अलग प्रकार का होता है । ये अन्त:बीजाणु के समान ताप प्रतिरोधी नहीं होते । इसे सिस्ट (cyst) कहते हैं । अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर यह पुटी या **सिस्ट** (cyst) अंकुरित होकर नई जीवाणु कोशिका बनाती है ।

इनके अतिरिक्त कुछ जीवाणुओं में ओइडियोबीजाणु द्वारा (By oidiospores) व अपवादस्वरूप कुछ जीवाणुओं में चल बीजाणुओं (By motile spores) द्वारा भी अलैंगिक जनन होता है ।

3.4 लैंगिक जनन या आनुवंशिक पुनर्योजन (Sexual Reproduction or Genetic Recombination)

जीवाणुओं में अन्य प्रोकेरियोट्स की भाँति ही वास्तविक लैंगिक जनन् नहीं होता, क्योंकि इनमें लैंगिक संरचनाएँ अनुपस्थित होती हैं, व अन्य जीवधारियों की भांति **युग्मकों का संलयन** (Gametic fusion) नहीं होता है । जीवाणुओं में **केन्द्रकीय युग्मन** (Karyogamy) एवं **अर्धसूत्री विभाजन** (Meiosis) भी नहीं पाये जाते । लेकिन इनमें आनुवंशिक पदार्थों का विनिमय (genetic material exchange) निम्न प्रक्रियाओं द्वारा हो सकता है

(a) रूपान्तरण (Transformation)

(b) संयुग्मन (Conjugation)

(c) पराक्रमण (Transduction)

(a) रूपान्तरण या स्थानान्तरण (Transformation)

जीवाणुओं में रूपान्तरण की खोज **फ्रेडरिक ग्रिफिथ** (Fredrick Griffith 1928) द्वारा की गई थी । यह अंग्रेज जीवाणुविज्ञानी एक जीवाणु डिप्लोकोकस निमोनी (Diplococcus pneumoniae), आधुनिक नाम स्ट्रेप्टोकोकस निमोनी (Streptococcus pneumoniae) के दो प्रभेदों (strains) का अध्ययन कर रहे थे ।

ग्रिफिथ द्वारा प्रयुक्त दो जीवाणु प्रभेदों में एक प्रभेद (strain) की कोशिकाएँ **चिकनी एवं सम्पुटिका युक्त** (smooth and capsulated) थीं, इसे S 3 प्रभेद कहा गया । यह उग्र एवं रोगकारी (virulent and pathogenic) होता है । व इसके संक्रमण से न्यूमोनिया रोग होता है । दूसरा जीवाणु प्रभेद **रुक्ष या खुरदरा** (rough) एवं **सम्पुटिका रहित** (non capsulated) होता है । इसे R 2 प्रभेद कहते हैं एवं यह अनुग्र एवं अरोगकारी (nonvirulent and non-pathogenic) होता है । R 2 प्रभेद के संक्रमण से न्यूमोनिया रोग नहीं होता ।

उपरोक्त दोनों प्रभेदों के साथ चूहों पर निम्न प्रयोग किये गये (चित्र 3.5) ।

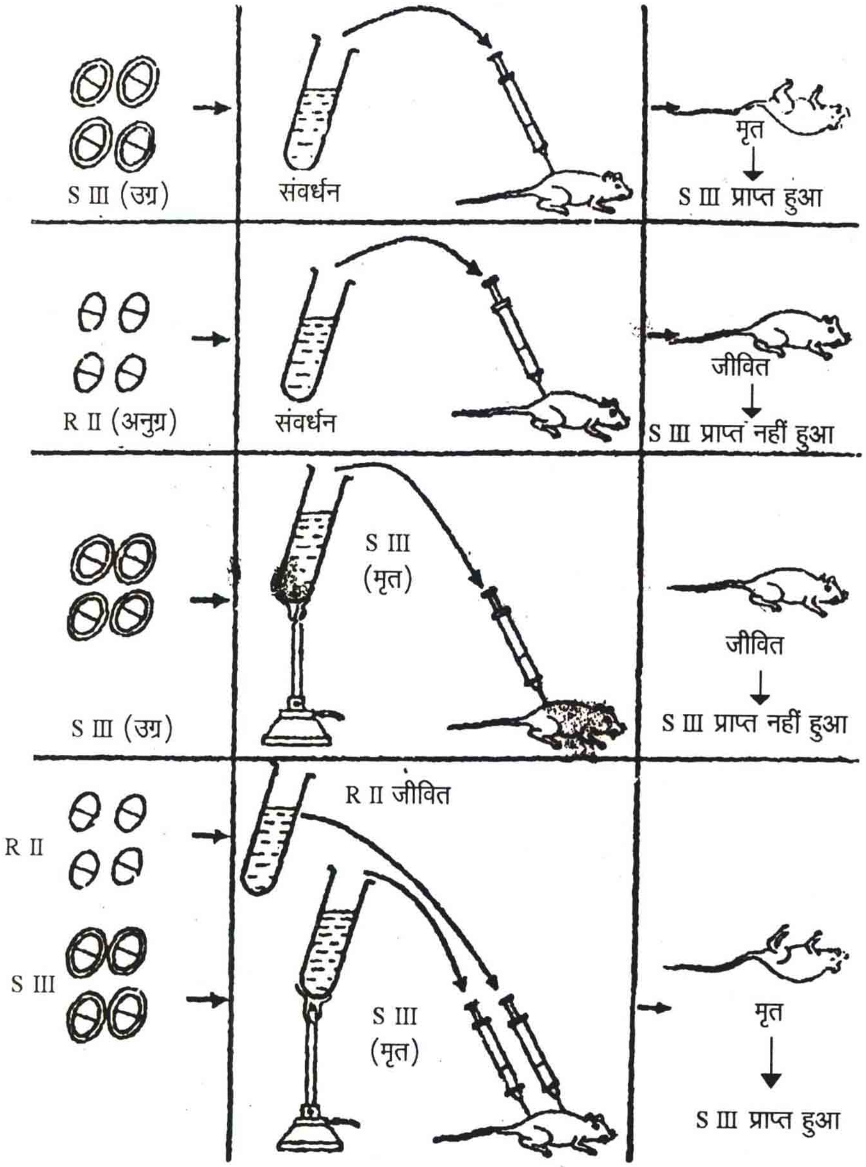

चित्र 3.5 : ग्रिफिथ का जीवाणु में रुपान्तरण सम्बंधित प्रयोग

(I) जीवित R II जीवाणु प्रभेद को चूहे में अन्तक्षेपित (inject) करवाने पर इसमें रोग नहीं होता, फलतः चूहे की मृत्यु नहीं होती ।

(II) जीवित S III प्रभेद को चूहे में अन्तःक्षेपित (inject) करवाने पर उसकी न्यूमोनिया रोग के कारण मृत्यु हो जाती है ।

(III) S III प्रभेद के जीवाणु को 85° C तापमान पर गर्म करने से ये **अरोगकारी** (non pathogenic) हो जाते हैं, या मृत हो जाते हैं । अतः इनका चूहे के शरीर में अन्तःक्षेपित (inject) करवाने पर चूहा रोगग्रस्त नहीं होता और उसकी मृत्यु भी नहीं होती ।

(IV) SIII प्रभेद जीवाणुओं को अधिक तापमान पर गर्म करने के पश्चात् (अर्थात् **अरोगकारी अवस्था**) में या **मृत अवस्था** में, R 2 प्रभेद के जीवित जीवाणुओं के साथ मिलाकर चूहे के

शरीर में अन्त: क्षेपित करवाने पर यह पाया गया कि चूहे की न्यूमोनिया रोग के कारण मृत्यु हो गई ।

मृत चूहे के शरीर में न केवल R II प्रभेद वाले जीवित जीवाणु प्राप्त हुऐ बल्कि S III प्रभेद वाले, जीवित जीवाणु भी प्राप्त हुऐ । इस प्रकार R 2 प्रभेद के जीवाणुओं का S 3 प्रभेद में रूपान्तरण **(Transformation)** हो गया ।

इसके आगे के प्रयोगों में यह पाया गया कि ताप द्वारा मृत S 3 प्रभेद के रस या निचोड़ द्वारा भी रूपान्तरण की प्रक्रिया हो जाती है व यह प्रक्रिया पेट्रीडिश में भी हो जाती है, इसके लिए चूहे में अन्त:क्षेपित करना आवश्यक नहीं है । इस प्रयोग द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि S 2 प्रभेद का कोई अवयव ही **रूपान्तरण घटक** (Transforming principle) है ।

आगे चलकर **एवरी, मेकलिओड** एवं **मेकार्थी** (Avery,McCleod and McCarthy), ने रूपान्तरण / स्थानानंतरण प्रक्रिया के दौरान किये गये अपने प्रयोगों में यह पाया कि मृत चूहे के शरीर से वियुक्त किये गये नग्न DNA खण्डों (isolated DNA-fragments) द्वारा R 2 प्रभेद रोगकारी S 3 जीवाणु प्रभेद में रूपान्तरित हो जाता है । इस प्रयोग के द्वारा पहली बार DNA की पहचान आनुवंशिक पदार्थ के रूप में की गई । **रूपान्तरण कि प्रक्रिया में DNA का अंश जीवाणु में बाह्य माध्यम से प्रविष्ट करता है व जिस प्रकार प्रयोगशाला में पुनर्योजन देखा गया वैसे ही यह प्रकृति में भी सम्भव है ।**

(b) संयुग्मन (Conjugation)

इस प्रक्रिया का सर्वप्रथम अध्ययन **लेडरबर्ग** एवं **टाटम (Lederberg** and **Tatum**, 1946) के द्वारा एस्केरीशिया कोलाई (Escherichia coli) नामक जीवाणु में किया गया था ।

उन्होंने इस जीवाणु प्रजाति के (E. coli K12) के दो **उत्परिवर्ती (mutants)** प्रभेदों का उपयोग किया । इन दोनों प्रभेदों को **न्यूनतम पोषण माध्यम** पर सामान्य वृद्धि के लिए कुछ विशेष बृद्धिकारकों की आवश्यकता होती है । इस प्रकार के जीवाणुओं को **असर्वसंश्लेषी (auxotrophs)** कहते हैं ।

ई. कोलाई (E. Coli) की एक प्रभेद - A को वृद्धि करने के लिए अमीनो अम्ल **मिथियोनीन** (methionine) एवं विटामिन **बायोटिन** (biotin) की आवश्यकता होती है । इसका जीन प्ररूप **Met-Bio** माना गया । जबकि ई. कोलाई के दूसरे प्रभेद-B की वृद्धि के लिये थायोनीन (Thrionine), **ल्यूसीन** (leucine), एवं **थायमिन** (thiamine) की आवश्यकता होती थी, इस प्रभेद को **Thr-Leu-Thi-** जीन प्ररूप कहा गया ।

न्यूनतम माध्यम (minimal medium) में इन सभी अवयवों अर्थात् मिथियोनीन, बायोटिन, थ्रायोनीन, ल्यूसीन व थायमिन का अभाव होता है । इस न्यूनतम माध्यम पर प्रभेद A या प्रभेद B वृद्धि नहीं कर पाते हैं ।

उपरोक्त दोनों प्रभेदों अर्थात् E. coli A व E. coli B के संवर्धन को मिलाकर अपकेन्द्रण (centrifugation) किया गया तथा पूर्ण माध्यम (जिसमें ये दोनों प्रभेद संवर्धित किये गये थे), को हटाने के लिए इनकी सावधानीपूर्वक धुलाई की गई। इसके बाद इनको न्यूनतम माध्यम

(minimal medium) पर संवर्धित किया गया । इस प्रयोग के द्वारा पाया गया कि इनका **संवर्धन न्यूनतम माध्यम** (minimal medium) में भी सम्भव हो गया । अर्थात् A एवं B प्रभेद के मिलन से **सर्वसंश्लेषी (prototrophs)** प्रभेद बन गये । सर्वसंश्लेषी प्रभेद की उपस्थिति से यह सिद्ध हुआ कि जीवाणुओं के दो जीन प्रारूपों क्रमश **प्रभेद A** या **Met Bio** एवं **प्रभेद-B** या Thr-Leu-Thi- के **संयुग्मन (conjugation)** एवं इसके द्वारा **पुनर्योजन (recombination)** से **सर्वसंश्लेषी (prototroph) जीवाणु प्रभेद Met+Bio+Thr+Leu+Thi+** की उत्पत्ति हुई । इस प्रकार जीवाणु **संयुग्मन (conjugation)**, के द्वारा यह **आनुवंशिक पुनर्योजन (genetic recombination)** का एक सुन्दर उदाहरण है ।

संयुग्मन की प्रक्रिया में जीवाणु कोशिकाएँ परस्पर एक दूसरे से शारीरिक सम्पर्क (physical contact) स्थापित करती हैं, तथा एक जीवाणुकोशिका (दाता या Donor) से आनुवंशिक पदार्थ DNA, की प्रतिकृतिका कुछ भाग विशेष **संयुग्मन नलिका (conjugation tube)** द्वारा दूसरी कोशिका **(recipient या ग्राही)** आ जाता है ।

संयुग्मन में F+ उर्वरता कारक (F+ or Fertility factor in conjugation) : विलियम हेस (William Hayes, 1950) ने सर्वप्रथम ई. कोलाई (E. coli) जीवाणु में **लिंग कारक या उर्वरता कारक** (Sex or F factor) की खोज की थी । उन्होंने बताया कि ई: कोलाई जीवाणु में एक **प्लास्मिड (plasmid)** उर्वरता कारक के रूप में उपस्थित होता है । इस कारक (F factor) के आधार पर ई. कोलाई जीवाणु में दो प्रभेद होते हैं जो निम्न प्रकार से हैं:

(I) F+ प्रभेद जिसमें **उर्वरता कारक (Fertility factor)** पाया जाता है, इसे **दाता कोशिका** भी कहते हैं । इसकी सतह पर **लिंगरोम** या **F पाइलाई (sex pili or F pili)** पाये जाते हैं ।

(II) F- प्रभेद जिसमें उर्वरता कारक या F- कारक अनुपस्थित होता है । इसे **ग्राही कोशिका** कहते हैं एवं इनकी सतह पर **लिंग रोम** या **F पाइलाई** अनुपस्थित होते हैं ।

ई. कोलाई में आनुवंशिक पुनर्योजन **एकल दिशीय (unidirectional)** प्रक्रिया है, जिसमें दाता कोशिका में से ग्राही कोशिका में आनुवंशिक पदार्थ DNA का अभिगमन होता है । यह प्रक्रिया निम्न सोपानों में होती है :

F+ या दाता एवं F- या ग्राही जीवाणु कोशिकाओं के समूह में, जब विपरीत प्रभेद (strains) कोशिकाएँ एक दूसरे के नजदीक आती हैं तो लिंगरोम (sex pili) द्वारा ये एक-दूसरे से जुड़ जाती हैं (चित्र 3.6) । इसके बाद इन दोनों कोशिकाओं के बीच एक नलिकाकार संरचना का निर्माण होता है, जिसे संयुग्मन नलिका (conjugation tube) कहते हैं ।

F+ कारक का प्रति कृतिकरण हो जाता है व संयुग्मन नलिका से होकर F+ कारक दाता कोशिका से ग्राही कोशिका में आ जाता है । इस प्रकार F- ग्राही कोशिका F+ दाता कोशिका में बदल जाती है ।

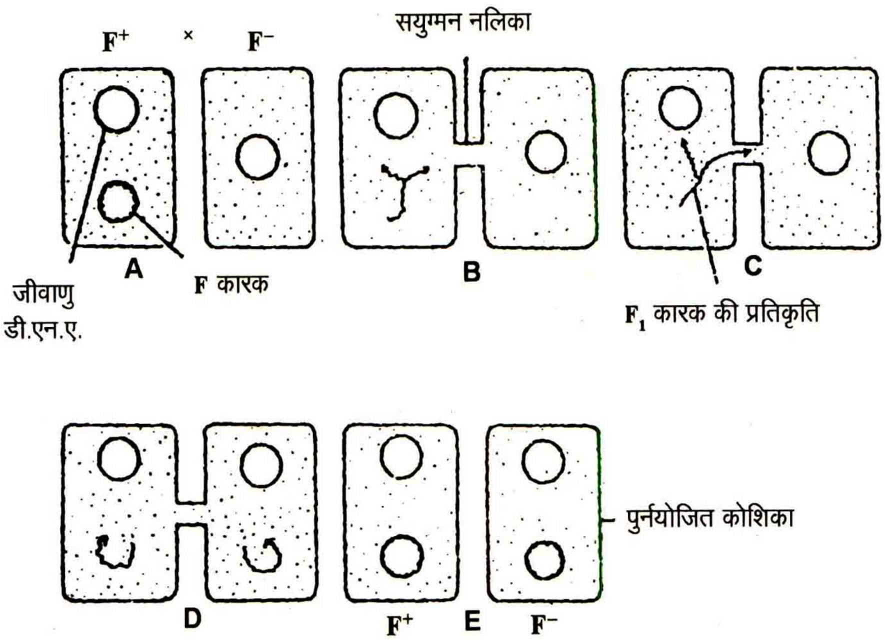

चित्र 3.6 : जीवाणु सयुंग्मन द्वारा F- का F+ में परिवर्तन

उच्च आवृत्ति पुनर्योजन या **Hfr स्थानांतरण** (High frequency recombination or Hfr Transfer) **जेकब** एवं **बुलमेन** (Jacob and Wollman, 1951) ने यह बताया कि, F+ या factor F+ कारक दो अवस्थाओं में पाया जाता है : (1) या तो यह जीवाणु कोशिका द्रव्य में स्वतन्त्र रुप से पाया जाता है अथवा (2) जीवाणु गुणसूत्र से संयुक्त हो जाता है।

लेडरबर्ग एवं उसके सहयोगियों (1952) द्वारा प्रदत्त जानकारी के अनुसार जब F+ कारक, ग्राही जीवाणु DNA या गुणसूत्र से **समाकलित** (जुड़) हो जाता है तो इस समाकलित DNA (**integrated** DNA) को **एपीसोम (Episome)** कहते हैं । ऐसी जीवाणु कोशिका **उच्च जनन** क्षमता वाली दाता (Donor) या **नर (Male)** कोशिका बन जाती है । इस प्रक्रिया को उच्च आवृत्ति पुनर्योजन (High frequency recombination) या **Hfr स्थानांतरण** या Hfr नर **(Hfr Male)** कहा जाता है । Hfr की जनन क्षमता सामान्य F+ दाता की तुलना में 1000 गुना अधिक होती है ।

Hfr नर में संयुग्मन (Conjugation in Hfr Male) - F- ग्राही जीवाणु कोशिका एवं Hfr नर के बीच संयुग्मन के समय, एक संयुग्मन नलिका बन जाती है । इसके साथ ही जीवाणु कोशिका (दाता) का DNA, F+ कारक के पास से खुल जाता है एवं यह एकरज्जुकी रेखीय (linear) संरचना बन जाती है ।

एकल रज्जुकी रेखीय DNA (single stranded linear DNA) की प्रतिकृति का अंश धीरे-धीरे नर (दाता) कोशिका से संयुग्मन नलिका द्वारा ग्राही कोशिका में स्थानांतारित होता है ।

यह स्थानांतरण प्रक्रिया उस समय तक जारी रहती है जब तक कि Hfr एवं F- जीवाणु कोशिकाएँ प्राकृतिक रूप से अपने आप या किसी अन्य कारण से अलग-अलग नहीं हो जाती ।

दोनों जीवाणु कोशिकाओं के पृथक होने पर Hfr के DNA का कुछ भाग टूटकर F- ग्राही कोशिका में ही रह जाता है (चित्र) एवं Hfr का DNA, ग्राही F- जीवाणु के DNA से जुड़ जाता है तथा F- ग्राही जीवाणु कोशिका में नये जीन्स का समावेश हो जाता है । इस प्रकार निर्मित आनुवंशिक संकर (genetic hybrid) **आंशिक** रूप से द्विगुणित (diploid) होते हैं । ई. कोलाई के अतिरिक्त साल्मोनैला (Salmonella), स्यूडोमोनास (Pseudomonas), एवं विब्रियो (Vibrio) में भी इस प्रकार की संयुग्मन प्रक्रिया पाई जाती है (चित्र 3.7)।

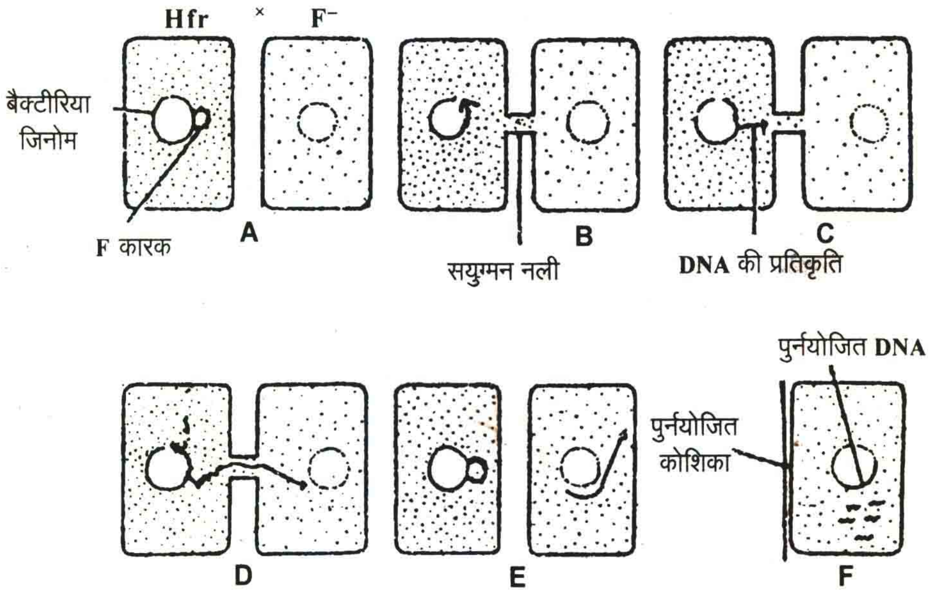

चित्र 3.7 : जीवाणु संयुग्मन द्वारा आनुवांशिक पदार्थ (DNA) का पुनर्योजन

लैंगिक क्रमण (Sexduction) :

जेकब एवं **एडलबर्ग (Jacob and Adelberg, 1959)** ने सर्वप्रथम जीवाणु में इस प्रक्रिया का अध्ययन किया था । उनके अनुसार वैसे तो जीवाणु कोशिका के Hfr प्रभेद में F+ कारक सामान्यता जीवाणु गुणसूत्र (Bacterial chromosome) से जुड़ हुआ रहता है लेकिन कई बार यह गुणसूत्र से अलग होकर स्वतन्त्र भी हो जाता है । ऐसी स्थिति में यह पुन: स्ततन्त्र या स्वायत्त कारक (autonomous factor) के रूप से प्रतिकृतिकरण (replication) कर सकता है।

कभी-कभी F+ कारक जीवाणु गुणसूत्र या DNA से अलग होते समय, इस जीवाणु DNA के कुछ जीन्स अपने साथ संलग्न कर लाता है, इसे F1 प्राइम (F1 Prime) कहते हैं । जब यह F1 कोशिका, ग्राही कोशिका के सम्पर्क में आती है, तो इस F1 कारक के साथ पूर्व जीवाणु F1 DNA से लिए हुए कुछ जीन्स भी स्थानांतरित हो जाते हैं । इस प्रक्रिया को **लैंगिक क्रमण** (Sexduction) कहते हैं ।

(c) पराक्रमण (Transducation)

'जीवाणुओं में इस प्रक्रिया का अध्ययन सर्वप्रथम **जिंडर** एवं **लेडरबर्ग (Zinder and Lederberg**, 1952) द्वारा किया गया था ।

"दाता कोशिका से ग्राही कोशिका में जीवाणुभोजी (Bacteriophage) के माध्यम से आनुवंशिक पदार्थ (genetic material) के स्थानांतरण की प्रक्रिया को पराक्रमण (transduction) कहते हैं ।"

सर्वप्रथम उपरोक्त वैज्ञानिकों द्वारा पराक्रमण की खोज साल्मोनैला टाइफोम्यूरियम (Salmonella typhomurium) नामक जीवाणु में की गई थी । परन्तु इसके बाद पराक्रमण का अध्ययन एस्केरीशिया कोलाई (Escherichia coli), प्रोटियस (Proteus), शाइजैला (Schizella) एवं स्टेफाइलोकोकस (Staphylococcus) तब इत्यादि में भी किया गया ।

हर्शे एवं चेस (Hershey and Chase, 1952) ने **जीवाणुभोजी (bacteriophage)** की खोज की एवं यह जानकारी दी कि जीवाणुभोजी द्वारा जीवाणु के संक्रमण (infection) की क्रिया के दौरान वास्तव में जीवाणुभोजी के न्यूक्लिक अम्ल का स्थानान्तरण जीवाणु कोशिका में होता है । पराक्रमण क्रिया दो प्रकार की होती है (चित्र 3. 8) :

1. सामान्य पराक्रमण (Generalized Transduction), एवं
2. विशिष्ट पराक्रमण (specialized Transduction)

1. सामान्य पराक्रमण (Generalized Transduction) :

यह प्रक्रिया निम्न चरणों में सम्पूर्ण होती है :

1. इस प्रकार का पराक्रमण **जीवाणुभोजी (bacteriophage)** द्वारा जीवाणु के **संक्रमण** के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है । यह प्रक्रिया विभोजी के जीवाणु कोशिका द्रव्य में उपस्थित DNA खण्डों, जिनको **प्रोफाज कण (prophage particles)** कहते हैं, के द्वारा नियन्त्रित होती है ।
2. जीवाणभोजी द्वारा संक्रमण के दौरान लयजनक जीवाणुकोशिका (lysogenic bacterial cell) में जीवाणु का DNA छोटे-छोटे खण्डों (Fragments) में विघटित हो जाता है । जीवाणुभोजी का न्यूक्लिक अम्ल, जीवाणु के एन्जाइम आदि का उपयोग करके नये **विभोजी घटक (phage components)** बनाता है ।
3. जब ये घटक संगठित होकर संतति विभोजी कणों (progeny phage particles) का निर्माण करते हैं, तो उस समय, जीवाणु के खंडित DNA अणुओं का भी इनमें **समावेश (incorporation)** हो जाता है ।
4. इस प्रकार उत्पन्न संतति विभोजी कण (progeny phage particles) जब दूसरी जीवाणु कोशिकाओं को संक्रमित करते हैं तो ऐसी स्थिति में विभोजी न्यूक्लिक अम्ल के साथ-साथ **पूर्ववती जीवाणु के खंडित DNA अणु या जीन्स** भी नव संक्रमित जीवाणु कोशिकाओं में स्थानांतरित हो जाते हैं ।

इस प्रकार का DNA स्थानांतरण, जिसमें जीवाणु जीन के किसी भी अंश को स्थानांतरित करने में विभोजी (phage) की सक्रिय भूमिका होती है, **सामान्य पराक्रमण (generalized transduction)** कहलाता है ।

2. विशिष्ट पराक्रमण (Specialized Transduction):

आन्द्रेलाफ एवं सहयोगियों (Andre Lwoff et al., 1953) ने सर्वप्रथम यह बताया कि कुछ जीवाणु प्रभेदों (Bacterial strains) में विभोजी द्वारा संक्रमण के बाद भी लम्बे समय तक जीवाणु कोशिका का **लयन (lysis)** नहीं होता । अपितु ऐसे जीवाणुओं में विभोजी DNA (phage DNA) व जीवाणु DNA दोनों जुड़ जाते हैं, एवं यह जुड़ा हुआ विभोजी DNA "जीवाणु गुणसूत्र या DNA" के साथ ही प्रतिकृत (replicate) होता है । इस प्रकार के जीवाणु को **लयजनक जीवाणु (lysogenic bacteria)** कहते हैं एवं **विभोजी** को **प्रोफाज (prophage)** कहते हैं ।

ऐसी जीवाणु कोशिकाऐं अनेक पीढ़ियों तक लयजनक अवस्था में बनी रहती है, यह स्थिति जीवाणु कोशिका में संश्लेषित विशेष प्रकार की **दमनकारी प्राटीन (Repressor Protein)** के कारण सम्भव होती है । ये प्रोटीन्स जीवाणु कोशिका में विभोजी कणों के **संश्लेषण (synthesis)** को अवरुद्ध करती हैं । जब दमनकारी प्रोटीन का निर्माण जीवाणु कोशिका में बद हो जाता है तथा विभोजी के घटकों (components) का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है ।

विभोजी डी.एन.ए., जीवाणु डी.एन.ए. से विभोजी कणों के निर्माण के पूर्व टूट कर अलग हो जाता है, इस दौरान **जीवाणु के कुछ जीन भी विभोजी डी.एन.ए. के साथ आ जाते हैं** एवं प्रतिकृतिकरण (replication) भी विभोजी डी.एन.ए. के साथ ही होता है । इस प्रकार बनने वाले **संतति विभोजी कण (progeny phage particles)** सर्वथा **नवीन** प्रकार के होते हैं । जब ये संतति विभोजी अन्य जीवाणु को संक्रमित करते हैं, तब पूर्ववर्ती परपोषी जीवाणु कोशिका के जीन (genes), नव संक्रमित जीवाणु में स्थानांतरित हो जाते हैं । इस पराक्रमण मे सभी जीन समान रूप से स्थानांतरित नहीं होते । केवल ऐसे **विशेष जीवाणु जीन (special gene)** ही होते हैं जो कि **जीवाणु भोजी डी.एन.ए. (phage DNA) से बिल्कुल सटे हुऐ होते हैं ।**

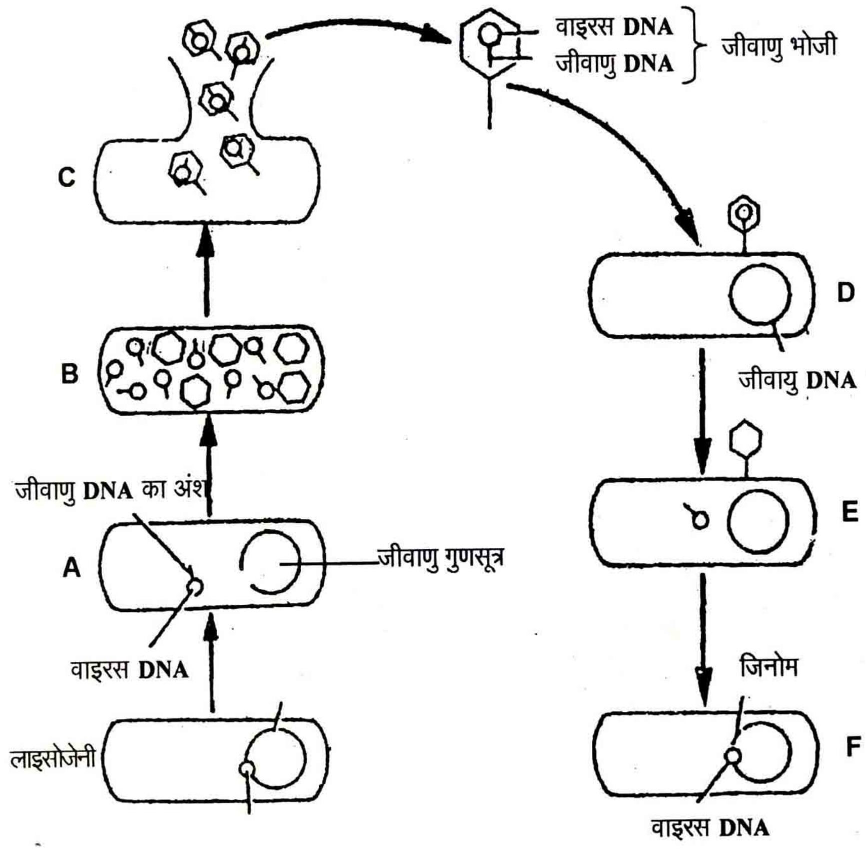

चित्र 3.8 : पराक्रमण

बोध प्रश्न - 1

(a) जीवाणु द्विखण्डन में अनुकूल परिस्थितियों में कितना समय लगता है ?

....

(b) जीवाणु द्विखण्डन में लगने वाले समय को क्या कहते हैं?

....

(c) जीवाणु अन्त: बीजाणु के दो प्रमुख गुण या लक्षण लिखिये।

....

(d) जीवाणुओं में आनुवांशिक पुनर्योजन के प्रमुख प्रकार क्या-क्या है ?

....

(e) जीवाणुओं में रुपान्तरण की खोज किसने व कब की थी ?

....

(f) संयुग्मन में प्रयुक्त जीवाणु का नाम व प्रभेदों के नाम लिखिये ।

....

(g) संयुग्मन की खोज किसने व कब की थी ?

....

(h) संयुग्मन में प्रयुक्त जीवाणु का नाम व प्रभेद का नाम लिखिये ।

....

(i) जीवाणुओं में पराक्रमण का अध्ययन सर्वप्रथम किसने व कब किया था ?

....

3.5 जीवाणुओं का आर्थिक महत्व (Economic importance of Bacteria)

आर्थिक दृष्टि से जीवाणु अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । जहाँ एक ओर ये प्राणियों व पौधों में विनाशकारी रोग के कारक हैं, वहीं दूसरी ओर जीवधारियों की दैनिक जीवन क्रियाओं में इनका इतना महत्व है कि इनके बिना जीवन असम्भव प्रतीत होता है । अत: इनके आर्थिक महत्व का उल्लेख **लाभकारी** तथा **हानिकारक** गतिविधियों में किया गया है ।

जीवाणुओं की आर्थिक महत्त्व (Economic Importance) :

(A) लाभकारी गतिविधियाँ (Useful activities) :

(I) जीवाणु एवं भूमि की उर्वरता (Soil fertility) :

यद्यपि वायुमंडल का लगभग 78% भाग नाइट्रोजन है जो एक स्वतन्त्र या मुक्त गैस के रूप में पाई जाती है एवं पौधों के लिय नाइट्रोजन बहुत आवश्यक है परन्तु पौधे इस स्वतन्त्र नाइट्रोजन (Free nitrogen) का उपयोग नहीं कर सकते। पौधे इस नाइट्रोजन के उपयोगी रूप को ही ग्रहण कर सकते हैं । जीवाणु महत्वपूर्ण सूक्ष्म जीव हैं जो भूमि की उर्वरता बढ़ाने में वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने का कार्य करते हैं, या पौधों को भूमि से नाइट्रोजन उपलब्ध करवाने का कार्य करते हैं । उपयोगी नाइट्रोजन प्रदान करने वाले जीवाणुओं को तीन वर्गों में विभेदित किया गया है : लेग्युमिनोसी कुल के पौधों की जड़ों की **ग्रन्थियों** (nodules) में उपस्थित जीवाणुओं व मृदा में पाये जाने वाले कुछ अन्य जीवाणुओं में **आण्विक नाइट्रोजन** (molecular nitrogen) को नाइट्र ओजनी यौगिकों में बदलने की क्षमता होती है। मुक्त नाइट्रोजन को नाइट्रोजन यौगिकों में बदलने की प्रक्रिया **नाइट्रोजन अनुबंधन** अथवा **नाट्रोजन का स्थिरीकरण (nitrogen fixation)** कहलाती है।

(a) अमोनीकारक जीवाणु (Ammonifying Bacteria) :

कुछ मृतोपजीवी जीवाणु मिट्टी में उपस्थित प्रोटीन युक्त पदार्थो (Proteinaceous substances) को अमोनिया में परिवर्तित कर देते हैं, एवं इसके बाद यह मुक्त अमोनिया जल एवं CO2 से संयोग कर अमोनियम कार्बोनेट बनाती है। कुछ अन्न उत्पादक फसलों में नाइट्रोजन स्रोत के रूप में अमोनियम यौगिकों का उपयोग होता है । अमोनीकारक जीवाणुओं (ammonifying bacteria) के प्रमुख उदाहरण बैसीलस माइकोइडिस (Bacillus mycoides) एवं बैसीलस रेमोसस (Bacillus ramosus) हैं ।

(b) नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) :

कुछ जीवाणु प्रजातियां वायु में उपस्थित नाइट्रोजन को, सरल अकार्बनिक यौगिकों में परिवर्तित कर देती हैं

1. मृदा में स्वतन्त्र रूप से रहने वाले कुछ जीवाणु, जैसे : एजोटोबेक्टर (Azotobacter) तथा क्लॉस्ट्रीडियम (Clostridium) मिट्टी के कणों के बीच उपस्थित वायु से नाईट्रोजन अवशोषित करके इनको नाइट्रोजन यौगिकों में परिवर्तित कर देते हैं। इनकी मृत्यु होने पर, इनके अपघटन से उत्पन्न अमोनिया, जीवाणुओं की सहायता से पहले नाइट्राइट एवं फिर नाइट्रेट में परिवर्तित होती है । इन यौगिकों का उपयोग पौधों के द्वारा पोषण हेतु किया जाता है ।

2. फेबेसी (लेग्यूमिनोसी) कुल के पौधों, जैसे मटर व चना इत्यादि की जड़ों में **ग्रन्थियाँ (root nodules)** पाई जाती है। इनमें उपस्थित राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम (Rhizobium leguminosarum) नामक जीवाणु वायु में उपलब्ध नाइट्रोजन को अवशोषित करके नाइट्रोजन यौगिक बनाते हैं । इस सारी प्रक्रिया में पौधे जीवाणु को उपयुक्त आवास उपघटन कराते हैं, जबकि जीवाणु बदले में पौधे को नाइट्रोजन यौगिक देते हैं । यह **सहजीविता (symbiosis)** का एक अच्छा उदाहरण है । इसके द्वारा मृदा के उपजाऊपन में वृद्धि होती है ।

(c) नाइट्रीफाइंग जीवाणु (Nitrifying Bacteria) :

ऐसे कुछ जीवाणु, जैसे नाइद्रोसोमोनास (Nitrosomonas) अमोनिया को नाइट्राइट में परिवर्तित करने का कार्य करते हैं ।

जबकि कुछ अन्य जीवाणु प्रजातियाँ जैसे. नाइट्रोबेक्टर (Nitrobacter) नाइट्राइट को नाइट्रेट यौगिकों में बदलने का कार्य करते हैं ।

(II) जीवाणुओं का उद्योग में महत्त्व (Importance of Bacteria in Industry) :

जीवाणुओं का औधोगिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है जो कि निम्न प्रकार से है ।

1. डेरी उद्योग एवं भोजन प्राप्ति में महत्व (importance in Dairy industry and Food processing) : दूध में विभिन्न प्रकार के दण्डाणु, जैसे बैक्टीरियम लेक्टिसी एसिडी (Bacterium lactic acidi) और बैक्टीरियम एसिडी लेक्टीसाइडी (Bacterium acidi lactici) इत्यादि पाये जाते हैं । ये दूध में उपस्थित **लेक्टोस (lactose) शर्करा का किण्वन (fermentation)** करके इसे **लेक्टिक अम्ल** में परिवर्तित कर देते हैं, परिणामस्वरूप **दूध खट्टा** हो जाता है।

डेरी उद्योग (dairy industry) में जीवाणुओं के द्वारा लेक्टोस शर्करा से लेक्टिक अन्त निर्माण की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, इसी प्रक्रियाके द्वारा मक्खन एवं पनीर बनाया जाता है । इसके अंतर्गत दुग्ध दुग्ध प्रोटीन केसीन (Milk protein Casein) जम कर अलग हो जाती है ।

इसी प्रकार पनीर, दही, मक्सन व सिरका प्राप्त करने के लिये अनेक प्रकार के जीवाणु कार्य शील होते हैं।

सारणी 3. 1 : विभिन्न डेयरी उत्पादों से सम्बन्धित जीवाणु क्रम जीवाणु

क्रम संख्या	**डेरी उत्पाद (Dairy Product)**	**जीवाणु (Bacteria)**
1.	बटर मिल्क या छाछ	लेक्टोबेसिलस बेलोरिक्स (lactobacillus baloricus)
2.	योगर्ट (Yoghurt)	लेक्टोबेसिलस बल्गेरिक्स + स्ट्रेप्टोकोकस थर्मोफिलस
3.	दही (Curd)	स्ट्रेप्टोकोकस टेक्टिस + लेक्टोबेसिलस (Streptococcus lactis) + (Lactobacillus)
4.	पनीर (Cheese)	लेक्टोबसिलस लेक्टिस + स्ट्रेप्टोकोकस क्रिमेरिस (Lactobacillus lactis) + (Streptococus cremaris)
5.	एसिडोफिलस दुग्ध (Acedophilus milk)	लेक्टोबेसिलस एसिडोफिल्स (Lactobacillus acidophilus)

कॉफी (Coffee), **कोको** (Coco) तथा **चाय** (Tea) के उत्पादन में भी जीवाणुओं का महत्वपूर्ण एवं लाभप्रद योगदान है। जीवाणु चाय की पत्तियों का **परिपक्वन (ripening)** तो करते ही हैं, परन्तु इसके साथ ही इनमें एक विशेष प्रकार की **सुगंध (aroma)** एवं **सुरुचि (flavour)** भी पैदा करते हैं । कॉफी में चाकलेट जैसा स्वाद भी जीवाणुओं की सक्रियता का ही परिणाम है ।

ऐल्कोहॉल से **सिरका** बनाने की प्रक्रिया भी एक अन्य छड़ जीवाणु बैसीलस एसिटाइ (Bacillus acetii) के द्वारा निष्पादित होती है । सिरके का स्वाद एवं गंध इसमें उपस्थित **एसिटिक अम्ल (acetic acid)** के कारण होता है, इस अम्ल की वजह से ही सिरका प्राप्त होता है । शर्करा के घोल के किण्वन द्वारा सिरका प्राप्त करने में **माइकोडर्मा (Mycoderma)** जीवाणु सहायक होता है ।

तम्बाकू (Tabacco) की पत्तियों के **संसाधन (Curing)** एवं **परिपक्वन (Ripening)** का कार्य कुछ विशेष जीवाणुओं, जैसे. बेसीलस मेगाथेरियम (Bacillus megatherium) एवं माइकोकोकस (Mycococcus) के द्वारा होता है । विभिन्न प्रभेदों (strains) के ये जीवाणु ही इनमें विभिन्न प्रकार की गंध (flovour) के लिए उत्तरदायी हैं, जिससे इनकी कीमत बढ़ती है ।

2. **चमड़ा उद्योग में** (Leather Industry) : कुछ जीवाणु जन्तुओं की त्वचा पर पाये जाने बाल एवं वसा (fats) आदि का विघटन कर देते हैं जिससे त्वचा व बाल अलग - अलग हो जाते हैं और यह चमड़ा उपयोगी हो जाता है ।

3. **औद्योगिक विलायक** (Industrial Solvents) अनेक नित्य प्रति काम में आने वाले पदार्थ एवं औद्योगिक विलायक को जीवाणुओं की किण्वन (fermentation) क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है । उदाहरण के तौर पर **एसिटोन** (acetone) एवं **ब्यूटाइल ऐल्कोहॉल** (butyl alcohol) इत्यादि कुछ ऐसे ही उपयोगी पदार्थ हैं जिनको **जीवाणु किण्वन** (bacterial fermentation) के द्वारा प्राप्त किया जाता है । ये पदार्थ औषधियाँ (medicines), मदिरा,

सुगन्धियाँ (scents), रंग (paints) कृत्रिम रेज़िन (artificial resins), एवं क्लोरोफॉर्म (Chloroform) बनाने में प्रयुक्त होते हैं ।

4. **रसायन उद्योग** (Chemical Industry) : विभिन्न प्रकार के उपयोगी जैव रसायन जीवाणुओं द्वारा प्राप्त हैं । कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं :

डेक्सट्रिन (dextrin) नामक उपयोगी **बाहय-कोशिकीय पॉलीसैकेराइड (extracellular polysaccharide)** ल्यूकोनोस्टॉक (Leuconostoc) नामक जीवाणु की सक्रियता के कारण निर्मित होता है । डेक्सट्रिन का उपयोग खाद्य, पदार्थों में **स्थायीकारक** (stabilizer) के रूप में किया जाता है । द्वारा शर्करा के किण्वन से होता है । एक जीवाणु प्रजाति क्लास्ट्रीडियम ब्यूटाइलिकाम ब्यूटाइरिक अम्ल एवं एसिटिक अम्ल का उत्पादन **ब्यूटारिक** अम्ल जीवाणुओं (Clostridium butylicum) के द्वारा **एसिटिक अम्ल** का ऐसीटोन एवं ब्यूटेनॉल में रूपान्तरण कर दिया जाता है।

कुछ जीवणु, जैसे माइक्रोकॉकस (Micrococcus) एवं आर्थोबेक्टर (Arthobacter), ग्लूटेमिक अम्ल तथा कोराइनीबेक्टीरियम (Corynebacterium) लाइसीन जैसे महत्वपूर्ण अमीनो ऐसिड्स के बनाने में काम आते हैं ।

ई. कोलाई (E. Coli) जीवाणु की **पुनर्योगज डी.एन.ए. वेराइटी (recombinant DNA variety)** द्वारा **जैविक इन्सुलिन** का उत्पादन होता है । इसका उपयोग मधुमेह (diabetes) के उपचार में किया जाता है ।

5. **रेशा उद्योग** (Fibre Industry) : जूट, सन् आदि पौधों के तनों से रेशे (fibres) प्राप्त किये जाते हैं । इन रेशों को अन्य पदार्थो से पृथक करने में जीवाणु (Bacteria) का योगदान महत्वपूर्ण है । पौधों को जल में डुबा दिया जाता है, जहाँ क्लॉस्ट्रीडियम ब्यूटाइरियम (Clostridium butyrium) जैसे जीवाणुओं की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप फ्लोएम रेशों को छोड़ कर अन्य ऊतक नष्ट हो जाते हैं ।

6. **विविध उत्पाद** (Miscellaneous Products) : जीवाणु ऐसिटोबेक्टर सुऑक्सीडेन्स (Acetobacter suoxydantce) के द्वारा अनेक पदार्थों का उपयोग करके डाइहाइड्रॉक्सी-एसिटोन (Dihydroxyacetone), व कीटोग्लूटारिक अम्ल (ketoglutyric acid) का निर्माण किया जाता है । बेसीलस सुबटेलिस (Bacillus subtalis) के द्वारा **एन्साइम एमाइलेज** (amylase) तथा **प्रोटिऐज** (protease) का उत्पादन होता है ।

(III) **जीवाणुओं का औषधियों में योगदान (Role of Bacteria in medicines) :**

`

1. जीवाणुओं की कुछ प्रजातियों के संवर्धन से विटामिन प्राप्त किये जाते हैं, जैसे : क्लॉस्ट्रीडियम एसिटोब्यूटाइलिकम (Clostridium acetobutylicum) के संवर्धन द्वारा **राइबोफ्लेविन** (riboflavin) नामक विटामिन- B2 का संश्लेषण होता है । कुछ जीवाणु, जैसे ई.

कोलाई मनुष्य की आंत में सहजीवी (symbiont) के रूप में रहते हैं, जो विटामिन - B का निर्माण करते हैं एवं पाचन के लिए कुछ जरूरी एन्जाइम भी उत्पन्न करते हैं ।

2. **शाकाहारी चौपायों** (Herbivores) : जैसे - घोड़ा, गाय, भैंस आदि में तो प्रोटोजोअन्स के साथ-साथ जीवाणु सेल्यूलोज़ (Cellulose) के पाचन में सक्रिय योगदान देते हैं, क्योंकि इन स्तनपायी शाकाहारी प्राणियों में उत्पन्न किसी भी एन्साइम के द्वारा सेल्यूलोज का पाचन नहीं हो सकता ।

3. **प्रतिजैविक औषिधियाँ** (Antibiotics) : प्रतिजैविकों (antibiotics) का उपयोग न केवल विभिन्न रोगों के उपचार हेतु किया जाता है अपितु अनेक भोज्य पदार्थों की सुरक्षा हेतु भी इनका उपयोग होता है । लगभग 50 से भी अधिक प्रकार की महत्वपूर्ण एन्टीबायोटिक दवाएँ, जीवाणुओं से प्राप्त होती हैं जो जानवरों एवं मनुष्यों के अनेक गंभीर रोगों के उपचार में उपयोगी हैं । इन दवाओं का उपयोग ग्राम पॉजिटिव या ग्राम नेगेटिव जीवाणुओं के संक्रमण से उत्पन्न रोगों में किया जाता है ।

जीवाण्तुओं द्वारा प्राप्त विभिन्न प्रतिजैविक

एन्टीबायोटिक्स	स्रोत
1. ग्रेमीसिडीन	बैसीलस ब्रीविस
2. टायरोसिडीन	ब्रैसीलस ब्रीविस
3. बेसीट्रासिन	बैसीलस सबटीलिस
4. पॉलीमिक्सिन	बैसीलस पोलीमिक्सा
5. बोकामाइसिन	स्ट्रेप्टोमाइसीज़ ओरिन्टेलिस
6. नियोमाइसिन	स्ट्रेप्टोमाइसीज़ फ्रेडी
7. स्ट्रेप्टोमाइसिन	स्ट्रेप्टोमाइसीज़ ग्रेसियस
8. टेट्रासाइक्लिन	स्ट्रेप्टोमाइसीज़ ओरिफेसियेन्स
9. क्लोरेम्म्फ़ेनिकाल	स्ट्रेप्टोमाइसीज वेनेज्यूली
10. इरिथ्रोमाइसिन	स्टेष्ट्रोमाइसीज इरीथ्रिस

IV. **क्षरण एवं विघटन तथा सफाई में महत्व** (Decay and Decomposition). मृदा में उपस्थित जीवाणु इसमें उपस्थित जटिल कार्बनिक पदार्थों के विघटन में सक्रिय योगदान देते हैं । इनकी सक्रियता दो स्तरों पर होती है : 1. मिट्टी में पाये जाने वाले **हानिकारक कूड़े - कचरे (harmful waste) का क्षरण (decay)** करके एक प्रकार से **अपमार्जक (scavanger)** की भूमिका निभाते हैं । 2. मृदा में उगने वाले पौधों के लिये भोजन उपलब्ध करवाने का कार्य करते हैं ।

जीवाणुओं की क्षरण एवं विघटन सम्बन्धी क्रिया शीलता का उपयोग महानगरों में संचालित मल **निष्पादन तंत्र (sewage disposal system)** में किया जाता है, परिणामस्वरूप प्रदूषित जल पुन ' स्वच्छ, शुद्ध एवं दुर्गन्ध रहित हो जाता है । इसी प्रकार मलमूत्र इत्यादि पदार्थों को ये एकत्र नहीं होने देते एवं प्रकृति में नाइट्रोजन तथा कार्बन - चक्रों के संचालन में महत्वपूर्ण भुमिका निभाते हैं ।

V. **जीवाणुओं द्वारा कीटनाशी एवं शकनाशी पदार्थो का अपघटन (Decomposition of Pesticides,Insecticides and Weedicides)** : अनेक प्रकार के जीवाणु विभिन्न कार्बनिक रसायनों का विघटन करते हैं, जैसे. एक्रोमोबेक्टर (2, 4-D (2, 4-Dichlorophenoxy acetic acid) का एवं एग्रोबेक्टीरियम (Agrobacterium), सूडोमोनोस (Pseudomonas) व क्लॉस्ट्रीडियम (Clostridium), **डेलपान (Dalpan)** एवं **पारक्वेट (paraquat)** को अपघटित कर मृदा एवं वायुमंडल को इनके हानिकारक प्रभाव से सुरक्षित करने का कार्य करते हैं ।

VI. **कीट नियन्त्रण** (Control of Insects) : एक जीवाणु प्रजाति बेसीलस थुरिजिएनसिस (bacillus thuringienisi) एक विशेष प्रोटीन विष का निर्माण करती है जिसे **बीटी टॉक्सिन या** पेरास्पोरल क्रिस्टल कहते हैं (BT toxin) । यह क्रिस्टल अनेक हानिकारक कीटों के लिए घातक होता है ।

B. जीवाणुओं की हानिकारक क्रियाएँ (Harmful activities of Bacteria) :

1. रोग संक्रमण एवं जीवाणु (Bacteria and Disease Infection) : विभिन्न परजीवी जीवाणु मनुष्य, अन्य प्राणियों एवं पौधों में रोग उत्पन्न करते हैं । जीवाणुओं द्वारा मनुष्यों में उत्पन्न प्रमुख रोग सारणी में दिये गये हैं ।

सारणी : मनुष्यों के विभिन्न जीवाणु जनित रोग तथा रोगजनक

रोग (Disease)	जीवाणु (Bacteria)
1. हैजा (Cholera)	विब्रियो कोलेरी (Vibrio cholerae)
2. डिफ्थीरिया (Diphtheria)	कोरीनीबेक्टीरियम डिफ्थेरी (Corynebacterium diphtteriae)
3. निमोनिया (Pneumonia)	स्ट्रेप्टोकोकस न्यूमोनी (Streptococcus pneumonia)
4. तपेदिक (Tuberculosis)	माइकोबेक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस (Mycobacterium tuberculosis)
5. पेचिस (Dysentery)	शाइजेला डिसेन्टरी (Schizella dysenteriae)
6. टाइफ़ॉइड (Typhoid)	सालमोनैला टाईफी (Salmonella typhiae)
7. एन्थ्रेक्स (Anthrax)	बैसिलस एन्थ्रेसिस (Bacillus anthracis)
8. टिटैनस (Tetanus)	क्लॉस्ट्रीडियम टिटैनी (Clostridium tetani)
9. पीलिया (Jaundice)	लेप्टोस्पाइरा इक्टीरों- हीमोराइजी (Leptospira ictero-hoemorrhigae)
10. मेनिनजाइटिस (meningites)	नीस्मेरिआ मेनिनजाइटिडीस (Neisseria meningitidis)
11. प्लेग (Plague)	पास्चूरैला पेस्टिस (Pasteurella pestis)
12. कुष्ठ रोग (Leprosy)	माइकोबेक्टीरियम लेप्री (Mycobacterium laprae)
13. अतिसार (Diarrhoea)	बैसीलस कोलाई (Bacillus coli)

14. जठरान्त्र (Gastroenteries)	शोथ	एस्केरीशिया कोलाइ (Escherichia coli)

चौपायों एवं अन्य प्राणियों में भी जीवाणु अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं । ये जीवाणु शरीर के अंदर सीधे प्रवेश कर विषैले पदार्थ या **जैवविष (toxins)** पैदा करते हैं । यद्‌यपि परपोषी जानवर में विष के प्रतिकार हेतु **प्रतिविष (antitoxins)** उत्पन्न होते हैं, परन्तु यदि यह **प्रतिजैवविष** कम मात्रा में होता है तो रोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

अनेक पौधों में भी जीवाणुओं द्‌वारा गम्भीर रोगों का संक्रमण होता है । आर्थिक रूप से उपयोगी कुछ पौधों पर उत्पन्न जीवाणु रोग निम्न प्रकार से हैं :

जीवाणु : जनन एवं आर्थिक महत्व

पौधों के प्रमुख जीवाण्विक रोग

(Some Important Bacterial Diseases of Plants)

रोग (Disease)	**रोगाणु (Pathogen)**
1. ब्लाइट ऑफ पैडी (Blight of paddy)	जैन्थोमोनास ओराईजी (Xanthomonas oryzae)
2. सिट्रस कैंकर (Citrus canker)	जैन्थोमोनास सिट्राई (Xanthomonas citri)
3. गेहूं का टुण्डू रोग (Tundu disease of Wheat)	कोनीर्बिक्टीरियम ट्रिटिसाई (Corynebacterium tritici)
4. चुकन्दर व सेब की क्राउन गाल (crown gall of sugar beet and apple)	एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेसिएन्स (Agrobacterium tumefaciens)
5. रिंग रॉट ऑफ पोटेटो (ring rot of potato)	जैन्थोमोनास सोलेनेसिएरम (Xanthomonas solanacearum)
6. एंगुलर लीफ स्पॉट ऑफ काटन (angular leaf sopt of cotton)	जेन्थोमोनास माल्वेसिएरम (Xanthomonas malvacaerum)

इनके अतिरिक्त बहुत से महत्वपूर्ण पौधों में जीवाणुओं द्‌वारा **म्लानिरोग (wilt disease), गलन (Rot), अंगमारी (Blight)**, आदि रोग होते हैं ।

2. जीवाणु एवं भोजनविषालुता (Bacteria and Food poisoning) : अनेक जीवाणु प्रजातियाँ **भोज्य पदार्थों** की बहुत बड़ी मात्रा को **नष्ट** कर देती हैं, इनमें मृतोपजीवी जीवाणु प्रमुख हैं । ये विभिन्न भोज्य पदार्थो पर एन्साइम्स द्‌वारा क्रिया करके इनको सड़ा-गला देते हैं । इन मृतोपजीवी जीवाणुओं की सक्रियता के प्रमुख उदाहरणों में, **दूध का खट्टा हो जाना, मक्खन का सड़ना, फल एवं सब्जियों का सड़ना** एवं मांस का सड़ना इत्यादि उल्लेखनीय हैं । अत: भोज्य पदार्थों को अनुपयोगी एवं नष्ट होने से बचाने के लिए, इन जीवाणुओं की वृद्धि को रोकने के

अनेक उपाय, जैसे : **पास्चूराइजेशन, प्रशीतन एवं अचार, मुरब्बे** व जैली को परिरक्षित रखने के लिए नमक, तेल व चीनी का उपयोग आदि अपनाये जाते हैं। इनके द्वारा भोज्य पदार्थों को पर्याप्त समय तक के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है । कुद अन्य जीवाणु, जैसे क्लास्ट्रीडियम बाट्यूलिनम (Clostridium botulinum) एवं माइक्रोकोकस आरियस (Micrococcus aureus) आदि भोज्य पदार्थों मे जैव विषया **टाक्सिन्स (toxins)** उत्पन्न कर देते हैं । ये जैवविष **प्राणघातक** भी हो सकते हैं । यहाँ तक कि कुछ जीवाणुओं की सक्रियता से तो गैस भी बनती है, जो डिब्बाबन्द खाद्य सामग्री का विषालू कर देते हैं ।

3. भूमि की उर्वरता कम करना या विनाइट्रीकरण (Reduction of Soil fertility or Denitrification) : अनेक हानिकारक जीवाणु, जैसे : बैसीलस डिनाइट्रीफिकेन्स(Bacillus denitrifications) एवं थायोबेसीलस डिनाइट्रीफिकेन्स (Thiobacillus denitrificans) तथा माइक्रोकोकस डीनाइट्रीफिकेन्स (Micrococcus denitrificans) इत्यादि कृषि के लिये अत्यंत हानिकारक हैं क्योंकि ये मिट्टी में उपस्थित नाइट्रेट्स, नाइट्राइट, अमोनिया एवं नाइट्रोजन के अन्य यौगिकों को विघटित कर नाइट्रोजन को मुक्त कर देते हैं । इससे जमीन की उर्वरता (fertility) में कमी आती है । ऐसे जीवाणुओं को **विनाइट्रीकारी (Denitrifying Bacteria)** कहते हैं । परन्तु कृषि योग्य भूमि में ऐसे जीवाणु कम पाये जाते हैं ।

4. जल प्रदूषण (Water Pollution) : अनेक जलीय जीवाणु कारखानों से निकलने वाले पारे (Mercury) तथा मरकरी लवणों को मिथाइल मरकरी में बदलते हैं, यह मनुष्यों के लिए घातक रूप से विषालु (toxic) होता है, जो हमारे तंत्रिकातंत्र (nervous system) को प्रभावित करते हैं । अनेक **गंभी रोगजनक जीवाणु** जैसे विब्रियो कोलेरी (Vibrio cholariae), शाइजैला डिसेन्टरी (Schizella dystenterial) एवं साल्मोनैला टाइफी (Salmonella typhiae) आदि पेय जल को प्रदूषित करके गंभीर रोग, जैसे : हैजा, अतिसार, पेचिस एवं टाइफाइड उत्पन्न करते हैं ।

जीवाणुओं के उपरोक्त वर्णित लाभदायक एवं हानिकारक कार्यों के कारण यह सच ही कहा गया है कि **जीवाणु हमारे मित्र एवं शत्रु दोनों** हैं ।

बोध प्रश्न - 2

(a) वायु मण्डल में कितने प्रतिशत नाइट्रोजन गैस है ?

....

(b) सहजीविता द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु का नाम लिखिये ?

....

(c) दूध को दही में परवर्तित करने वाले जीवाणुओं के नाम लिखिये ?

....

(d) स्ट्रेप्टोमाइसिन क्या है व किससे प्राप्त होती है ?

....

(e) निम्न के रोगजनक जीवाणुओं के नाम लिखे :

निमोनिया
तपेदिक
प्लेग
कुष्ठ रोग
सिंट्रस केंकर
क्राउन गाल

(f) क्लास्ट्रीडियम बाटयूलिनम क्यों महत्त्वपूर्ण है ?

....

3.6 सारांश (Summary)

1. जीवाणुओं में कायिक जनन द्विखण्डन व मुकुलन आदि विधियों द्वारा होता है ।
2. अन्त: बीजाणु जीवाणुओं में अलैंगिक जनन या चिरकालिता विधि द्वारा बनने वाली एक अतिविशिष्ट रचना है ।
3. जीवाणुओं में वास्तविक लैंगिक जनन नहीं पाया जाता है ।
4. लैंगिग जनन के स्थान पर आनुवांशिक पुनर्योजन पाया जाता है जो मुख्यतया तीन प्रकार का होता है

   (a) रुपान्तरण (b) संयुग्मन (c) पराक्रमण
5. रुपान्तरण की प्रक्रिया में DNA का अंश जीवाणु में बाह्य माध्यम से प्रविष्ट होकर आनुवांशिक पुनर्योजन करता है ।
6. संयुग्मन की प्रक्रिया में दो जीवाणु कोशिकायें संयुग्मन नाल द्वारा जुड़ जाती है । उसके बाद दाता कोशिका से ग्राही कोशिका में DNA की प्रतिकृति का कुछ अंश आकर पुनर्योजन करता है ।
7. पराक्रमण में जीवाणुभोजी के माध्यम से आनुवांशिक पदार्थ का स्थानान्तरण होता है ।
8. आर्थिक दृष्टि से जीवाणु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है
9. भूमि की उर्वरता को बढ़ाने में विशेषकर नाइट्रोजन स्थिरीकरण में जीवाणु अति उपयोगी है ।
10. जीवाणुओं का डेयरी उद्योग व प्रतिजैविक उत्पादन में विशेष महत्त्व है ।
11. जीवाणुओं द्वारा मनुष्यों में बहुत से रोग होते हैं - हैजा, टाइफाइड, डिफ्थीरिया, न्यूमोनिया, तपेदिक, पेचिस, प्लेग और कुष्ठ आदि ।
12. पौधों में जीवाणुओं द्वारा होने वाले प्रमुख रोग हैं - ब्लाइन्ट ऑफ पैडी (धानका का झुलसा रोग), सिट्रस केन्कर, गेहूं का टुन्डू रोग, क्राउन गाल व कपास में एन्गुलर लीफ स्पाट आदि ।

3.7 शब्दावली (Glossary)

1. **द्विविखण्डन :** जीवाणुओं में होने वाली कायिक जनन की एक आम विधि

2. **प्रभेद :** जाति से छोटी इकाई जिसमें विभेदन प्राय: कार्यिकी या रोग की उग्रता आदि द्वारा किया जाता है ।
3. **सुषुप्त :** जिसमें उपापचय की मात्रा नगण्य होती है व इस कारण प्रतिरोधकता बहुत अधिक पायी जाती है ।
4. **रोगकारी :** रोग उत्पन्न करने में सक्षम ।
5. **प्रतिजैविक :** सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न जटिल यौगिक जो अन्य सूक्ष्मजीवों की वृद्धि पर ऋणात्मक प्रभाव डालते हैं।
6. **क्राउन गाल :** एग्रोबेक्टीरियम टयूमिफेसिएन्स जीवाणु द्वारा पौधे के क्राउन भाग (जड़ के उपर तने का आधारीय भाग) में बनने वाली बीमारी जो गांठ के रूप में दिखती है ।

3.8 संदर्भ ग्रन्थ (Further reading)

1. पेल्क्जार, चान व क्रीग - माइक्रोबाइलोजी, टाटा, मैक्ग्राहिल पब्लिशिंग क., नई दिल्ली
2. पोकर एवं दागिनावाला - जनरल माइक्रोबाइलोजी, **हिमालय पब्लिशिंग हाउस-** मुम्बई, दिल्ली, नागपुर ।
3. **रोनाल्ड एटलस** - प्रिंसिपल ऑफ माइक्रोबाइलोजी, **मोस्वी - ईयर बुक इंक, यू.एस.ए. ।**
4. **टोराटोरा, फंक एवं केस** - माइक्रोबाइलोजी एन इन्ट्रोडक्शन - दी बेन्जामिन/कम्मिन्गस पब्लिशिंग कं., इन्क. केलिफोर्निया, यू.एस.ए ।
5. सिन्हा एवं श्रीवास्तव- एन इन्ट्रोडक्शन टू बेक्टीरिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।
6. **त्रिवेदी, शर्मा एवं धनखड़ (2006),** सूक्ष्मजैवीय विविधतायें, रमेश बुक डिपो, जयपुर

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

(a) 18 से 20 मिनट

(b) द्विगुणन -समय या पीढ़ी अवधि

(c) अत्यन्त प्रतिरोधी, कार्यिकी रूप से सुषुप्त

(d) रुपान्तरण, संयुग्मन, पराक्रमण

(e) फ्रेडरिक ग्रिफिथ, 1928

(f) डिप्लोकोकस निमोनी या स्ट्रेप्टोकोकस निमोनी
प्रभेद S III, प्रभेद RII

(g) लेंडरबर्ग एवं टाटम, 1946

(h) एस्केरिशिया कोलाई, प्रभेद K12

(i) जिंडर एवं लेडरबर्ग, 1952

बोध प्रश्न - 2

(a) 78 प्रतिशत

(b) राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम

(c) लेक्टोबेसिलस, स्ट्रेप्टोकोकस लेक्टिस

(d) प्रतिजैविक औषधि है, स्ट्रेप्टोमाइसीज ग्रेसियस से प्राप्त होती है ।

(i) स्ट्रेप्टोकोकस न्यूमोनी

(ii) माइकोबेक्टीरियम टयूबरकुलोसिस

(iii) पास्चूरैला पेस्टिस

(iv) माइकोबेक्टीरियम लेप्री

(v) जैन्थोमोनास सिट्राई

(vi) एग्रोबैक्टीरियम टयूमीफेसिएन्स

(f) यह भोजन विषालुता पैदा करता है ।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Exercise questions)

1. जीवाणुओं में कायिक जनन का सचित्र वर्णन करें ।
2. जीवाणु अन्तः बीजाणु पर विस्तृत टिप्पणी लिखिये ।
3. जीवाणु रूपान्तरण को सचित्र समझाइये ।
4. जीवाणु संयुग्मन का सचित्र विस्तृत विवरण दें ।
5. जीवाणुओं का नाइट्रोजन स्थिरीकरण में क्या महत्व है ?
6. जीवाणुओं के आर्थिक महत्त्व बतायें ।

इकाई 4 : सायनोजीवाणु (ऑसीलिटोरिया एवं नॉस्टॉक) [Cyanobacteria (Oscillatoria and Nostoc)]

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 ओसिलिटोरिया

4.2.1 वर्गीकृत स्थिति

4.2.2 गण नॉस्टॉकेल्स के विभेदित लक्षण

4.2.3 कुल ऑसिलिटोरियेसी के विभेदित लक्षण

4.2.4 प्राप्ति स्थान या आवास

4.2.5 शरीर संरचना

4.2.6 कोशिका संरचना

4.2.7 वृद्धि

4.2.8 पोषण

4.2.9 गति

4.2.10 गति की क्रिया विधि

4.2.11 जनन

4.2.12 आर्थिक महत्व

4.3 नॉस्टॉक

4.3.1 वर्गीकृत स्थिति

4.3.2 कुल नॉस्टॉकेशी के विभेदित लक्षण

4.3.3 प्राप्तिस्थान या आवास

4.3.4 शरीर संरचना

4.3.5 कोशिका संरचना

4.3.6 जनन

4.3.7 जीवन चक्र

4.3.8 आर्थिक महत्व

4.4 इकाई सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 संदर्भ ग्रंथ

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस अध्याय से आपको सायनो जीवाणु या नील-हरित शैवाल जो एक प्रकार के प्राकेरयोटिक जीव' हैं, के बारे में ज्ञात होगा । ये सूक्ष्म जीवी विभिन्न प्रकार के आवासों में पाये जाते हैं । आपको इनकी संरचना, सामान्य लक्षण, जनन एवं इनके आर्थिक महत्व, प्रकृति एव हमारे लिये इनकी उपयोगिता का बोध होगा ।

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तावना सायनो जीवाणु (Cyanobacteria) या नील हरित शैवाल को शैवालों के मिक्सोफाइसी (Myxophyceae) या सायनोफाइसी (Cyanophyceae) वर्ग में रखा गया है । इनमें सायनिन वर्णक अधिकतम होता है । कोशिका संरचना प्रोकेरयोटिक प्रकार की होती है तथा जीवाणुओं से. समानता दर्शाते हैं । क्लोरोफिल a, c-फाइको साइनिन c-फाइकोइरिथ्रिन, एनोफाइको सायनिन, मिक्सोजेन्थोफिल, मिक्सोजन्थिन एवं केरोटिन प्रकाश संश्लेषी वर्णक पाये जाते हैं । इनमें सायनोफाइसिन मंड एवं प्रोटीन सायनोफाइसिन कण संचित खाद्य पदार्थ होता है । पायरेनायड का अभाव होता है । इनके कुछ सदस्य विसर्पी (gliding) गति दर्शाते हैं ।

कई सदस्य नाइट्रोजन स्थरीकरण भी करते हैं । जैसे नोस्टाक, एनाबिना, सभी सायोनी जीवाणु श्लेष्मा (Mucilage) स्त्रवित करते हैं । इनकी कोशिकाओं की कोशा भित्ति म्यूकोपेपटाइड की बनी होती है, जो जीवाणु में पाये जाने वाली भित्ति के समान होती है । कोशिका के जीव द्रव्य के रंगीन बाहरी भाग को वर्णकी द्रव्य (Chromoplasm) तथा रंगहीन केन्द्रीय भाग को सेन्ट्रोप्लाज्म (Centroplasm) कहते हैं । सेन्द्रोप्लाज्म में गैस रिक्तिकाएँ (gas vacuole) पायी जाती हैं, जो नील हरित शैवाल के पानी में तैरने में सहायक होती हैं । कुछ सायानोजीवाणु जैसे,आसीलेटोरिया नास्टॉक आदि में विशेष प्रकार की मोटी भित्ति युक्त हैटरोसिस्ट (Heterocyst) कोशिकाएँ पायी जाती हैं । इन कोशिकाओं को मृत माना जाता है तथा ये अवशेषी प्रजनन अंग की तरह कार्य करती हैं । कायिक प्रजनन के समय सायनोजीवाणु के तन्तु हेटरोसिस्ट के स्थान से टूट जाने पर हार्मोगोनियम में विभाजित हो जाती हैं । हेटरोसिस्ट तन्तु में नाइट्रोजन स्थरीकरण के स्थल भी होते हैं ।

सायनोजीवाणु वर्ग के सदस्यों में केवल कायिक जनन ही होता है । अलैंगिक एवं लैंगिक जनन का पूर्ण अभाव होता है। परन्तु एच.डी. कुमार 1962 के अनुसार कुछ सदस्यों जैसे ऐनासिस्टिस निड्यूलेन्स में अनुवांशिक पुनर्योजन (genetic recombination) होता है ।

इस अध्याय में आप इस वर्ग के दो सदस्यों आसिलेटोरिया एवं नास्टक का विस्तृत अध्ययन करेंगे ।

ये सभी प्रकार के आवासों में पाये जाते हैं जैसे, अलवणीय जल, लवणीय जल, समुद्री जल, गर्म जल चस्पे (hot springs), शीत जल सहजीवी (Symbionts) मिट्टी, शैल (rock) आदि ।

4.2 ओसिलेटोरिया (Oscillatoria)

4.2.1 वर्गीकृत स्थिति (Systematic position)

जगत (Kingdom)	:	प्रोकेरयोटा (Prokaryota)
प्रभाग (Division)	:	सायनोफाइटा (Cyanophyta)
वर्ग (Clan)	:	सायनो फाइसी (Cyanophyceae)
गण (Order)	:	नास्टोकेल्स (Nostocales)
कुल (Family)	:	ओसिलेटोरियेसी (Oscillatoriaceae)
वंश (Genus)	:	आसिलेटोरिया (Oscillatoria)

4.2.2 गण नॉस्टोकेल्स के विभेदक या प्रमुख लक्षण:

(i) इस गण के अधिकांश सदस्य स्वच्छ जल में पाये जाते हैं ।

(ii) पादप शरीर सूकाय (thallus) तान्तुक होते हैं । तान्तुक सल्य शाखित या कूट शाखित होते हैं ।

(iii) प्राय : हैटरोसिस्ट पाये जाते हैं ।

(iv) अलैंगिक जनन हार्मोगोनिया, निश्चेष्ट बीजाणु (akinetes) तथा अन्त : बीजाणुओं द्वारा होता है ।

4.2.3 कुल ओसिलेटोरियेसी के विभेदित लक्षण :

(i) सूकाय अशाखित तन्तुकी की तरह

(ii) तन्तुक में हेटरोसिस्ट का अभाव

(iii) सभी सदस्य दोलन गति (Oscillatory movement) दर्शाते हैं ।

(iv) प्रजनन हार्मोगोनिया द्वारा

(v) बीजाणुओं का अभाव होता है ।

(vi) नम स्थानों, तालाबों एवं पानी के गड्ढों की तलों पर इसके सदस्य एक श्लष्म परत बना लेते हैं । जैसे, ओसिलेटोरिया, लिगबया (Lyngbya) आदि ।

4.2.4 प्राप्तिस्थान या आवास (Ocurrence or Habitat)

ओसिलेटोरिया एक सामान्य नील हरित शैवाल है या सायनो बैक्टिरिया का सदस्य है । इसकी विभिन्न प्रजातियाँ विविध प्रकार के आवासों में पायी जाती हैं, परन्तु प्राय : अलवणीय पोखरों, कुंडों एवं नालों के जल की सतह अथवा तलों पर पाये जाते हैं । इसकी कुछ प्रजातियाँ, जैसे - आसिलेटोरिया सेंक्टा (O.sancta) ओ. सेलिना (O.salina) समुद्री जल में, ओ. ताम्बी (O.tambi) ओ. लिमोजा (O.limosa) खारे जल में, ओ. टीरीब्रिफर्मिस (O.terebriformis) गर्म पानी के झरनों में पाये जाते हैं । ओ. फोरमोसा (O.formosa) धान (चावल) के खेतों में अधिपादप (epiphyte) के रूप में पाया जाता है तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है । ओ. प्रिन्सेप्स (O.princeps) कुछ सुमुद्री जीवों की श्वसन नाल में अन्त : जन्तु (endozooic) की तरह रहते है ।

टी. वी. देशिका चारी (1959) के अनुसार, भारत में ओसिलेटोरिया की लगभग 70 प्रजातियाँ पाई जाती हैं । ओ.एस्फीबिया (O.amphibia) ओ.क्लैक्सिप्स (O.claxicips) ओ: डेकोलेरेटा (O.decelareta) ओ. सेक्टा (O.sancta) प्रमुख हैं ।

4.2.5 शरीर संरचना (Plant body structure)

ओसिलेटोरिया का सूकाय (thallus) एक सरल अशाखित तन्तुमय (filamentous) ट्राइकोम होता है । ट्राइकोम नग्न अथवा पतले श्लेष्म आवरण से ढके होते हैं । कोशिकायें एक पंक्ति क्रम में व्यवस्थित होती हैं । ट्राइकोम एकल या कई ट्राइकोम समूह में आपस में उलझे होते हैं । शीर्ष कोशिका के अलावा सभी कोशिकायें एक समान या अविभेदित होती हैं । केवल शीर्ष कोशिका की वजह से ये ट्राइकोम ध्रुवता (polarity) प्रदर्शित करते हैं । यह शीर्ष कोशिका मृत होती है । इसका फूली, गुम्बदाकार एवं ऊपर से थोड़ी नुकीली होती है तथा इस पर एक आवरण कैलिप्ट्रा (calyptra) भी हो सकता है । ट्राइकोम की शेष सभी कोशिकायें आयताकार या बेलनाकार होती हैं । कुछ प्रजातियाँ, जैसे, ओ. अमीना (O. amoena) तथा ओ. कोरेलाइना (O. corallina) में दो कोशिकाओं के मध्य में पट के स्थान पर सकर्णिन पाया जाता है, जिससे कोशिकाओं का आकार गोलाकार दिखता है ।

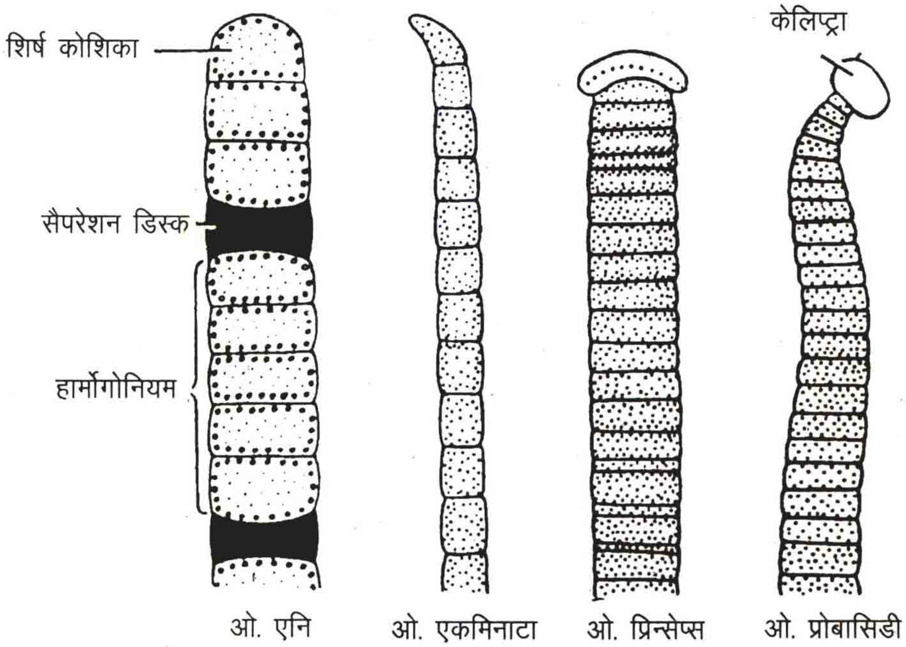

चित्र 4.1 : ऑसिलेटोरिया का तन्तु

4.2.5 कोशिका संरचना (Cell structure)

शीर्ष कोशिका के अतिरिक्त ट्राइकोम की सभी कोशिकाओं का आकार एवं संरचना समान होती है। कोशिकायें आयताकार यानी लम्बाई में कम तथा चौड़ी ज्यादा होती हैं । ओ प्रोबेसीडिया (O. proboscidia) एवं ओ एकूमिनाटा (O. acuminata) में कोशिकाओं की लम्बाई अधिक होती है। कोशिका भित्ति में तीन परत बनी होती है । बाह्य, मध्य एवं अन्तःपरत की मोटाई क्रमशः

90A, 160A तथा 2000A होती है । अन्त: परत में 700A के छिद्र पाये जाते हैं जो मध्य परत पर खुलते हैं । बाह्य भित्ति पेक्टिन आन्तरिक भित्ति म्यूकोपेपटाइड की बनी होती है ।

प्रत्येक कोशिका में काणिकामय जीवद्रव्य (granular cytoplasm) होता है, जौ एक दोहरी जीवद्रव्य कला (Plasma lemma) से घिरा रहता है । कोशिका जीवद्रव्य का बाहरी भाग रंगीन वर्णकी द्रव्य (Centroplasm or Nucleoplasm) एवं भीतरी रंगहीन भाग केन्द्रकी द्रव्य (Centroplasm) कहलाता है । कोशिकायें प्रोकेरयोटिक होती हैं अत: झिल्ली युक्त कोशिका अपागों (membrane bound cell organelles) जैसे- हरित लवक, माइटोकान्ड्रिया, सत्य केन्द्रक, अन्तःप्रद्रव्यी जालिका (endoplasmic reticulum) इत्यादि का अभाव होता है । केन्द्रकी द्रव्य वास्तव में प्रारम्भिक केन्द्रक (incipient nucleus or nucleoid) का रूप होता है । परन्तु इसमें केन्द्रक, गुणसूत्र तथा केन्द्रक कला नहीं पाई जाती । आनुवांशिक पदार्थ डी.एन.ए.(D.N.A.) तन्तुकी अथवा क्रिस्टली रूप में पाया जाता है । जीवाणु की भाँति गुणसूत्र में पाये जाने वाला हीस्टोन प्रोटीन का अभाव होता है । ओ. प्रिन्सेप्स (O. princeps) में तन्तुकी डी.एन.ए. पूरी कोशिका जीवद्रत्य में फैला रहता है । हरित लवक के स्थान पर वर्णक द्रव्य में प्रकाश संश्लेषी पट्टिकाएँ (Photosynthetic lamellae) या थायले कायड्स (thylakoids) पाये जाते हैं । थायले कायड्स दोहरी झिल्ली की पट्टिकाएँ होती हैं । इन पर फाइकोबिलिसोम्स कण व्यवस्थित होते हैं, जिनमें वर्णक जैसे, क्लोरोफिल -a, केरोटीन, जैन्थोफिल फाईकोइरिथ्रिन) पाये जाते हैं । कोशिका में संचित भोजन, सायनोफाइसिन मंड, वसा गोलक एवं सायनोफाइसिन कण (प्रोटीन) पाया जाता है । राइबोसोम 70 s- प्रकार के α-,β कण तथा संरचनात्मक कण (structure granules) पाये जाते हैं । कोशिका में अन्य कला बद्ध संरचनाओं जैसे, माइटोकान्ड्रिया, अन्त : द्रव्यी जाल, गाल्ली काय आदि का अभाव होता है ।

ओसिलेटोरिया के प्लवकयि प्रजातियों के जीवद्रव्य में कूटीरक्तिकाएँ या गैस जल धानिया (pseudo vacuoles or gas vacuole) पाई जाती है, जो उत्पलावकता प्रदान करती हैं । ये रिक्तिकाएँ मन्द प्रकाश में बनती हैं तथा तीव्र प्रकाश में फट जाती हैं, इस फलस्वरूप असिलेटोरिया का तन्तु पानी में डूब जाता है । वास्तविक रिक्तिकाएँ एवं पायरे नायड (Pyrenoid) नहीं पाये जाते ।

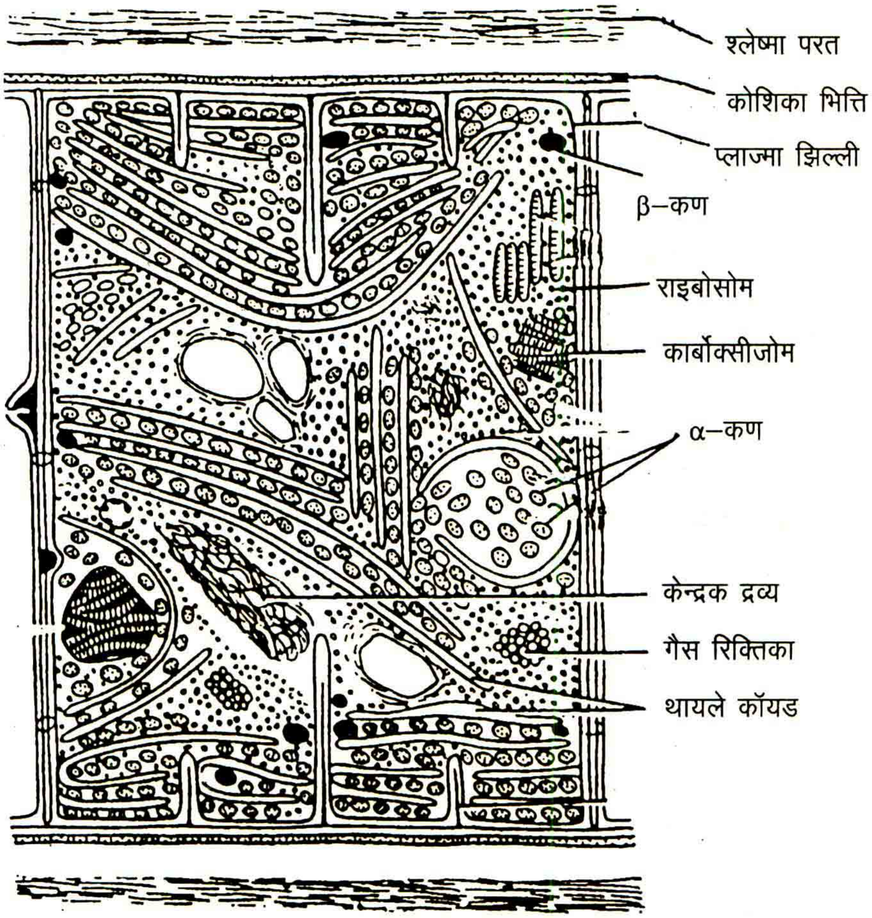

चित्र 4. 2 : कोशिका संरचना

4.2.7 वृद्धि (Growth)

इनमें वृद्धि विसरित (diffused) प्रकार की होती है । अग्रस्त कोशिका के अतिरिक्त सभी कोशिकाओं में अनुप्रस्थ विभाजन हो सकता है । कई कोशिकाओं में समकालिक (simultaneaus) विभाजन हो सकता है । केन्द्रक द्रव्य (nuclear matter) का विभाजन असम सूत्री (amitosis) या पूर्वग सम सूत्री (primitive mitosis) प्रकार का होता है ।

4.2.8 पोषण (Nutrition)

ओसिलेटोरिया स्वपोषी नील हरित शैवाल है । प्रकाश की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बो - हाइड्रेट्स का निर्माण करता है । कार्बोहाइड्रेट्स की मात्रा अधिक हो जाने पर विभित्र जैव रसायनिक क्रियाओं द्वारा सायनाफाइसियन प्रोटीन कणों तथा सायनोफाइसियन मंड का निर्माण होता है ।

4.2.9 गति (Movement)

आसिलेटोरिया का तन्तु प्राय: स्वत: (autonomous) गति दर्शाता है । ताप एवं प्रकाश की तीव्रता में परिवर्तन की वजह से प्रेरित (induced) गति भी हो सकती है । इनमें स्वत: गतियाँ निम्न प्रकार की पाई जाती हैं :

(i) **दोलन गति** (Oscillating movement) : इसके तन्तु का अग्रभाग आधार से मुक्त होता है तथा तन्तु घड़ी के लोलक (pendulum) की भाँति अपने अक्ष के दायीं एवं बायीं ओर दोलन करता है । इस प्रकार की गति की वजह से ही इसे ओसिलेटोरिया कहते हैं ।

(ii) **विसर्पी गति** (Gliding movement) : इस गति में तन्तु अपने अक्ष के आगे और पीछे की ओर सरकता है । इसे अक्षिम (axial) गति भी कहते हैं ।

(iii) **घूर्णन** (Revolution) : इसमें तन्तु या ट्राइकोम का अग्रभाग गोलाई में गति करता है ।

(iv) **उत्सर्जी गति** (Excretory movement) : इस गति में ओसिलेटोरिया के तन्तु से श्लेष्मा का उत्सर्जन है, फलस्वरूप तन्तु या ट्राइकोम का अग्रशिरा आगे एवं पीछे की ओर गतिशील होता है ।

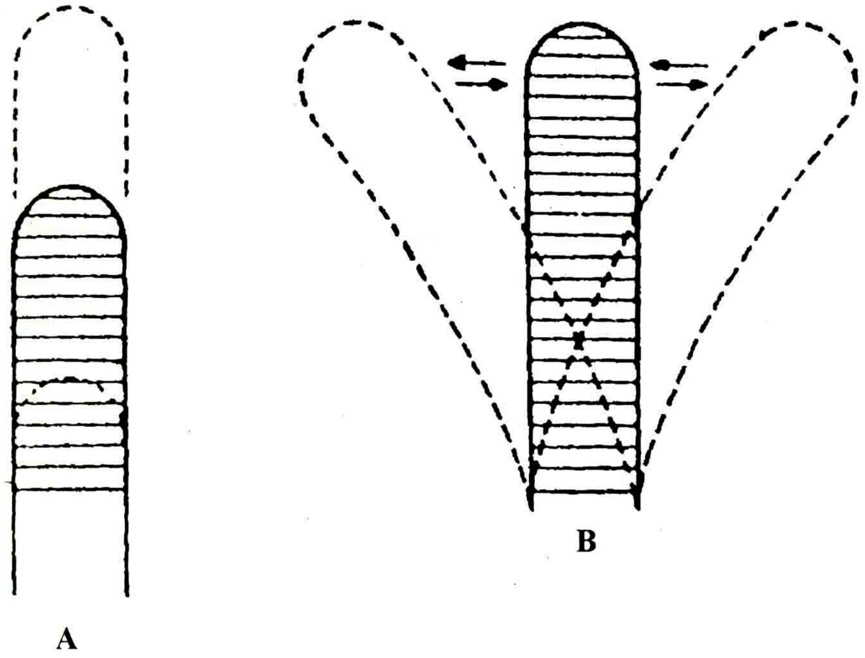

चित्र 4.3 : ऑसिलेटोरिया गतियाँ - A. विसर्पी गति एवं B. दोलन गति

4.2.10 गति की क्रिया विधि (Mechanism of movement)

(i) शैवाल वैज्ञानिकों ने गति की क्रियाविधि को समझाने के लिये विभिन्न कारण बताये हैं ।

(ii) ट्राइकोम की सतह से श्लेष्म का लवण गति का मुख्य कारण है ।

(iii) संकुचन व प्रसारण (contraction and expansion) तरंगों द्वारा जो कोशिका के जीवद्रव्य की परासरणी सान्द्रता में परिवर्तन द्वारा उत्पन्न होती है ।

(iv) श्लेष्म को घुलने एवं फूलने की वजह से ।

(v) ऊर्जा की वजह से ।

4.2.11 जनन (Reproduction)

ओसिलेटोरिया में जनन केवल कायिक विधि द्वारा होता है । अलैंगिक व लैंगिक जनन का पूर्ण अभाव होता है । कायिक जनन विखण्डन तथा हार्मोगोनिया द्वारा होता है । इनमें पीढ़ी एकान्तरण नहीं पाया जाता ।

(i) विखण्डन (Fragmentation) : यांत्रिक क्षति जैसे, जल तरंगों द्वारा, जलिय जन्तुओं के काटने पर, मृत कोशिका के टूटने पर, आसिलेटोरिया का तन्तु टूट जाता है और तन्तु का प्रत्येक खण्ड नया ओसिलोटारिया तन्तु बनाता है ।

(ii) हार्मोगोनिया (Hormogonia) : अनुकूल परिस्थिति में ट्राइकोम की कुछ कोशिकाएँ मृत हो जाती हैं और इनका जीवद्रव्य श्लेष्मा में परिवर्तन हो जाता है । श्लेष्म से मरी इन मृत कोशिकाओं को मृतोशिका (Necridium) कहते हैं । संलग्न कोशिकाओं के दाब के कारण ये उभयोवतली (biconcave) प्रतीत होती हैं । इन्हें पृथक्करण बिम्ब (separation disc) भी कहते हैं । श्लेष्म के फूलने पर तन्तु इन कमजोर स्थानों से टूट जाता है और हार्मोगोनिया का निर्माण करता है ।

कुछ परिस्थितियों में किन्हीं दो कोशिकाओं के मध्य में या अन्तरा कोशिका (inter-cellular) स्थान पर श्लेष्म के स्त्रवण से श्लेष्म बिम्ब (mucilage disc) का निर्माण होता है । ट्राइकोम श्लेष्म बिम्ब के स्थान टूटकर हार्मोगोनिया बनाता है । प्रत्येक हार्मोगोनिया आसिलेटोरियाका थैलस बनाने में सक्षम होता है ।

4.2.12 आर्थिक महत्व (Economic importance)

(i) खाद्य शृंखला में और शैवालों की भाँति प्राथमिक उत्पादक (Primary producer) होता है ।

(ii) मछलियों के आहार के रूप में

(iii) प्रकाश संश्लेषण में मुक्त ऑक्सीजन जल को स्वच्छ करता है ।

(iv) इसकी कुछ प्रजातियाँ जल प्रदूषण करती हैं ।

(v) ओ प्रिन्सेप्स (O. princeps) नाइट्रोजन स्थरीकरण करता है ।

बोध प्रश्न 1

1. नाइट्रोजन स्थरीकरण करता है :

   (अ) ओ. सेक्टा

   (ब) ओ. फोरमोसा

   (स) ओ. एक्यूमिनाडा

   (द) ओ. केरोलाइना()

2. हार्मोगोनिया बनते हैं :

   (अ) ट्राइकोम के आधार कोशिका से टूटने पर

   (ब) ट्राइकोम के शीर्ष से कोशिका से टूटने पर

   (स) ट्राइकोम की किसी भी कोशिश के टूटने पर

   (द) ट्राइकोम की मृत कोशिका के टूटने पर()

3. ओसिलेटोरिया गति करता है ।

   (अ) दोलन द्वारा

   (ब) विसर्पी द्वारा

   (स) धूर्णन द्वारा

(द) उपरोक्त सभी()

4. हेटरो सिस्ट सभी सायनोबैक्टीरिया में पाये जाते हैं ।

(सत्य /असत्य)

5. आसिलेटोरिया के मुख्य वर्णक क्या हैं?

....

....

4.3 नॉस्टॉक (Nostoc)

4.3.1 वर्गीकृत स्थिति (Systematic Position)

जगत (Kingdom)	:	प्रोकेरयोटा (Prokaryota)
प्रभाग (Division)	:	सायनोफाइटा (Cyanophyta)
वर्ग (Class)	:	सायनोफाइसी (Cyanophyceae)
गण (Order)	:	नॉस्टोकेल्स (Nostocales)
कुल (Family)	:	नॉस्टोकेसी (Nostocaceae)
वंश (Genus)	:	नॉस्टाक (Nostoc)

4.3.2 कुल नॉस्टॉकेसी के विभेदित लक्षण :

(i) ट्राइकोम अलग-अलग या एक श्लेष्मा आछ्द्ध में समूह (Colony) के रूप में पाये जाते हैं ।

(ii) ट्राइकोम मोती की माला की भाँति एक श्रृंखला के रूप में होती है ।

(iii) कोशिकाएँ एक पंक्ति श्रृंखला में तथा तन्तु अशाखित होते हैं ।

4.3.3 प्राप्ति स्थान या आवास (Occurrence or Habitat)

नॉस्टॉक जलीय, स्थलिय अथवा अंतपादपी (endophytic) होता है । प्राय: अलवणीय जल में श्लेष्मक संहति में स्वतंत्र रूप से तैरते हुए या किसी आधार पर चिपका हुआ पाया जाता है । अत: एक कॉलोनी के रूप में रहता है । कॉलोनी सूक्ष्म या मटर के दानें एवं उससे भी बड़ी (8-50 cm) हो सकती है । इस श्लेष्म कॉलोनी में नॉस्टॉक के अनेक ट्राइकोम सघन रूप से व्यवस्थित पाये जाते हैं ।

स्थलिय जातियाँ नम मिट्टी, चट्टान या जमीन में एक मीटर की गहराई तक पाई जाती है । नॉ. कामियम, (N. cameum), नॉ. पिसीनेल (N.piscinale) धान के खेतों में पाई जाती है । ये नाइट्रोजन स्थरीकरण करती है । नॉ. कम्यून (N. commune) उत्तरी ध्रुव तथा उच्च पर्वतीय शादूलो (alpine meadouss) में पाया जाता है । वर्षा के उपरान्त यह चमकदार फूले धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते हैं । इसलिए इन्हें बिखरे तारे (fallen stars) भी कहते हैं । नॉ. माइक्रोस्कोपिकम (N. microscopicum) वृक्षों की छाल पर तथा नॉ. स्फेरिकम (N. spharium) बंजर भूमि पर पाया जाता है । कुछ प्रजातियाँ जैसे नॉ. कालेमा (N. Cellema), लाइकेन (Lichen) में शैवलांश (Phycobiont) तथा नॉ. पुबंवटी फार्मी (N. punesifarmal) इ

एन्थोसिरोस (Anthoceros) के थैलस में एवं साइकस (Cycus) के कोरेलायड मूल (Coralloid root) में सहजीवी (Symbiont) के रूप में पाया जाता है ।

हमारे देश में नॉस्टॉक की 23 जातियाँ मिलती हैं, इनमें नॉ. एन्डोफिलम (N. endophyllum), नॉ. रिवूलेर (N. rivular) नॉ. स्फोरिकम (N. sphaericum), नॉ. वेरूकोशम (N. verrucosum) प्रमुख हैं ।

4.3.4 शरीर संरचना (Plant body structure)

नॉस्टॉक एक दृढ़ जिलेटीनी मेट्रीक्स (gelatinous matrix) से घिरी कॉलोनी के रूप में पाया जाता है । कॉलोनी में अनेक ट्राइकोम व्यावर्तित कुंचित या एंठन् (Contorted) अवस्था में पाये जाते हैं । प्रत्येक ट्राइकोम नॉस्टॉक का एक थैलस होता है । ट्राइकोम कई कोशिकाओं का बना होता है । यह अशाखित होता है एवं उनपर निजी श्लेष्म की परत पाई जाती है । हैटरोसिस्ट कोशिकाओं को छोड़कर सभी गोलाकार या ढोलकाकार होती हैं । ये कोशिकाएँ एक पंक्ति में माला (moneli forme) की भाँति जुड़ी रहती हैं । हेटरोसिस्ट अण्डाकार एवं थोड़ा बड़ा होता है । यह एकल व अन्तर्वेशी (intercalary) होता है । नॉ. लिंकिया (N. linekia) में हेटरोसिस्ट अन्त:स्थ (terminal) होता है । हेटरोसिस्ट हर्मोगोन निर्माण एवं विखण्डन में सहायक होते हैं । यह नाइट्रोजन स्थरीकरण का स्थान भी कहलाते हैं । हेटरोसिस्ट कोशिका के दोनों सिरों पर ध्रुवी छिद्र (Polar pores) होता है । अन्त:स्थ हेटरोसिस्ट में केवल एक ध्रुवीय छिद्र होता है । ध्रुवीय छिद्र वाले स्थान पर कोशिका भित्ति स्थूलित होकर ध्रुवीय ग्रंथी (Polar nodule) बनाती है । इस स्थान से हेटरोसिस्ट अपने समीपस्थ कोशिका से जुड़ा रहता है ।

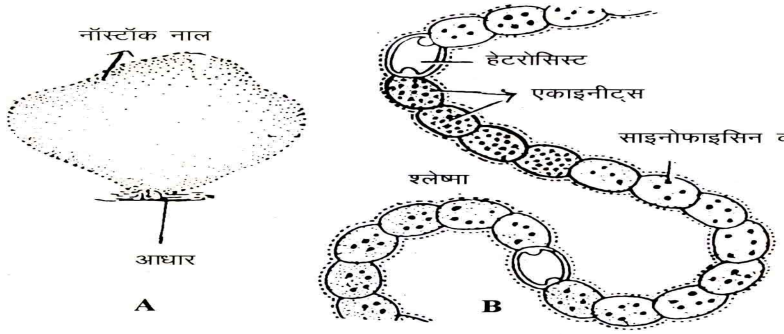

चित्र 4.4 : A. नॉस्टॉक कॉलोनी एवं B. नॉस्टॉक तन्तु

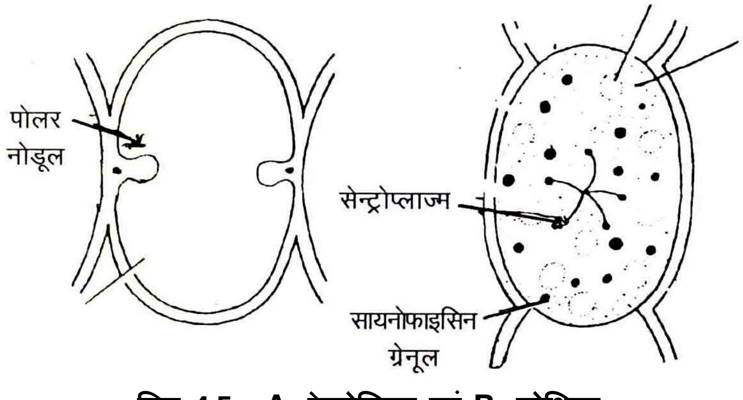

चित्र 4.5 : A. हेटरोसिस्ट एवं B. कोशिका

4.3.5 कोशिका संरचना (Cell Structure)

हेटरोसिस्ट को छोड़कर सभी कोशिकाएँ एक समान संरचना दर्शाती है । प्रत्येक कोशिका में कोशिका भित्ति तथा जीवद्रव्य होता है । ऑसिलेटोरिया की भाँति इसमें भी कोशिका प्रोकेरयोटिक होता है । कोशिका भित्ति द्विस्तरीय होती है । बाह्य भित्ति सेल्यूलोज तथा अन्त: भित्ति म्यूकोपेटाइड की बनी होती है । कोशिका भित्ति पर पेक्टोस का श्लेष्म बाह्य आवरण पाया जाता है । कोशिका का जीवद्रव्य बाहरी वर्ण की द्रव्य (Chromoplasm) तथा केन्द्रीय रंगहीन द्रव्य या तारक द्रव्य (Centroplasm) में विभेदित रहता है । सेन्ट्रोप्लाज्म में आद्य केन्द्रक (nucleoid or incipient nucleus) पाया जाता है । इसमें केन्द्रक कला, केन्द्रिक (Nucleolus) तथा गुण-सूत्रों का अभाव होता है । केवल नग्न DNA पाया जाता है। हिस्टोन प्रोटीन का भी अभाव होता है ।

वर्ण की द्रव्य (Centroplasm) में अनेक थायलेकॉमड पाई जाती है । थायले कॉयड पर वर्णक पाये जाते हैं । क्लोरोफिल-a, β-केरोटीन, जैन्थोफिल्स, C- फायकोइनिन, C- फोइकोइरिथ्रिन प्रमुख वर्णक हैं । * संचित भोजन सायनोफासिन स्टार्च तथा सायनोफाइसिन कण है । α-कण, β-कण तथा स्ट्रकचर्ड कण भी पाये जाते हैं । कभी-कभी कोशिकाओं में गैस वेकूओल या कूट

* फाइकोसाइनिन तथा फाइकोइरिथ्रिन एक प्रकार के फाइकोबिलिन होते हैं ।

रिक्तिएँ (Pseudo vacuoles) भी पाये जाते हैं । माइटोकॉन्ड्रिया, गाल्जीकाय, अन्त:द्रव्यीजाल का पूर्णत: अभाव होता है । राइबोसोम्स 70-s प्रकार के पाये जाते हैं ।

बोध प्रश्न 2

1. फालन स्टार या स्टार जैली कहते हैं :
   (अ) नॉस्टॉक के ट्राइकोम को
   (ब) नॉस्टॉक के कॉलोनी को
   (स) नॉस्टॉक के तन्तु को
   (द) हेटरोसिस्ट कोशिका को ( )
2. नॉस्टॉक में पोलर नाड्यूल पाये जाते हैं :
   (अ) सभी कोशिका में
   (ब) केवल अग्र कोशिका में
   (स) केवल धरातल कोशिका में
   (द) हेटरोसिस्ट कोशिका में ( )
3. नॉस्टॉक का केन्द्रक कैसा होता है?

....

....

4. नॉस्टॉक कोशिका की बाह्य एवं आन्तरिक भित्ति किसकी बनी होती है?

....

....

5. नॉस्टॉक की कोशिका में पाये जाने वाले अनुवांशिकी पदार्थ क्या है?

....

....

4.3.6 जनन (Reproduction)

नॉस्टॉक में जनन कायिक एवं अलैंगिक विधी द्वारा होता है । इसमें लैंगिक जनन का अभाव होता है ।

1. कायिक जनन (Vegetative Reproduction) : कायिक जनन विखण्डन एवं हार्मोगोनिया द्वारा होता है :

(अ) विखण्डन (Fragmentation) : नॉस्टॉक की कॉलोनी किसी यांत्रिक क्षति द्वारा दो या दो से ज्यादा टुकड़ों में टूट जाती है । प्रत्येक खण्ड एक नई नॉस्टॉक कॉलोनी बनाने में सक्षम होती हैं ।

(ब) हार्मोगोनिया (Hormogonia): कायिक जनन मुख्यत: हार्मोगोनिया द्वारा होता है । इसमें नॉस्टॉक का ट्राइकोम कमजोर बन्ध स्थालों जैसे- हैटरोसिस्ट के स्थान से या तन्तु की किसी कोशिका के मृत होने पर मृत कोशिका के स्थान से टूटने पर दो या उससे ज्यादा ट्राइकोम के टुकड़े बनाता है । ट्राइकोम के प्रत्येक खण्ड को हार्मोगोनिया कहते हैं, जो वृद्धि करके नॉस्टॉक की नये ट्राइकोम बनाते हैं । इसी जनन के कारण नॉस्टॉक की कॉलोनी में असंख्य ट्राइकोम पाये जाते हैं । कभी-कभी ये ट्राइकोम जनक कॉलोनी से बाहर भी निकल जाते हैं तथा एक नये कॉलोनी का निर्माण करते हैं ।

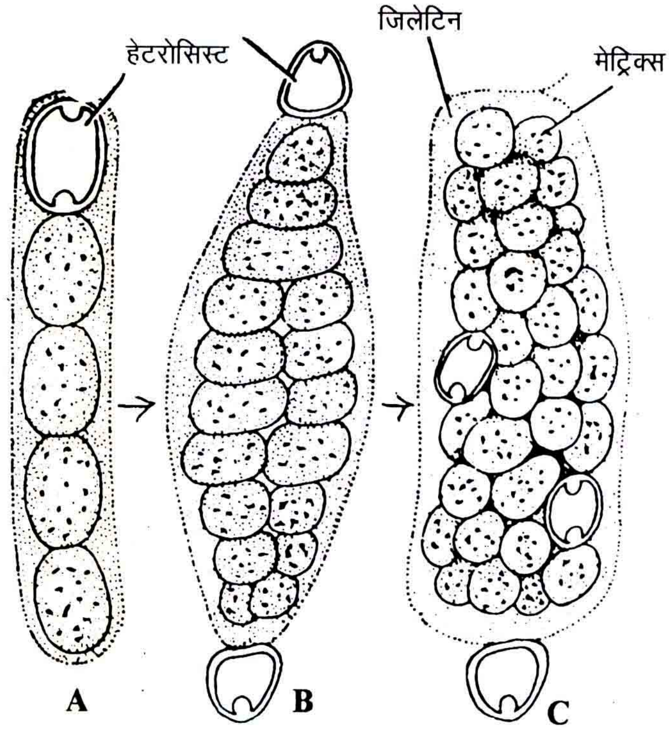

चित्र 4.6 : हार्मोगोनिया द्वारा जनन

2. अलैंगिक जनन (Asexual Reproduction) : यह तीन प्रकार के बीजाणुओं द्वारा सम्पत्र होता है, जो निम्नलिखित हैं :

(अ) निश्चेष्ट बीजाणु (Akinetes): एकाइनीट्स का निर्माण अधिकांश जातियों में प्रतिकूल परिस्थितियों में होता है । एकाइनीट्स का निर्माण हैटरोसिस्ट की समीपस्थ कोशिका में पाया जाता है । हैटरोसिस्ट द्वारा कुछ पदार्थ स्त्रवित होते हैं, जो एकाइनीट्स के निर्माण को प्रेरित करते हैं । कभी-कभी दो हैटरोसिस्ट के बीच सभी कोशिकाओं में एकाइनीट्स का निर्माण होता है ।

एकाइनीट्स गोलाकार एवं मोटी भित्ति युक्त होता है । इसमें साइनोफाइसियन कण प्रचुर मात्रा में खाद्य के रूप में पाया जाता है । इन्हें संधि बीजाणु (arthrospores) या विश्रामी बीजाणु (resting spores) भी कहा जाता है । ये एक प्रकार के चिरकालिक (perennating) संरचनाएँ हैं, जो शीत, ताप एवं शुष्कता सहिष्णु (cold, heat and drought resistant) होते हैं तथा अनुकूल परिस्थिति आने पर इनका अनुकरण होता है । अंकुरण के समय एकाइनीट्स की जीवद्रव्य अनुप्रस्थ विभाजन कर कुछ कोशिकीय हार्मोगोन बनाते हैं । बाद में बीजाणु भित्ति के गलन होने से ये हार्मोन मुक्त हो जाते हैं और नये नॉस्टॉक के कॉलोनी का निर्माण करते हैं ।

(ब) अन्तःबीजाणु (Endospores): नो. कोम्यून एवं नो. माइक्रोस्कोपिकम में एन्डोस्पोर हैटरोसिस्ट में बनता है । हैटरोसिस्ट कोशिका की अन्तर्वस्तुएँ (contents) विभाजित होकर पतली भित्ति युक्त या भित्ति रहित अन्तःबीजाणु बनाती हैं । ये बीजाणु हेटरोसिस्ट की भित्ति के टूटने पर मुक्त हो जाती है तथा नये नॉस्टॉक की कॉलोनी बनाती है ।

(स) हेटरोसिस्ट के अंकुरण द्वारा (By germinating heterocyst) : नॉस्टॉक की कुछ जातियों जैसे- नो. कोम्यून तथा नो. एलिपसोस्पोरम (N. conumune, N. ellipsosporum) में हेटारोसिस्ट द्वारा जनन देखा गया है । हैटरोसिस्ट का जीवद्रव्य अनुप्रस्थ विभाजन करके 2-4 कोशकीय नूतनोदभिद् (germling) बनाता है, जो हैटरोसिस्ट की भित्ति के फटने पर बाहर आ जाता है तथा नॉस्टॉक का एक नया ट्राइकोम बनाता हे ।

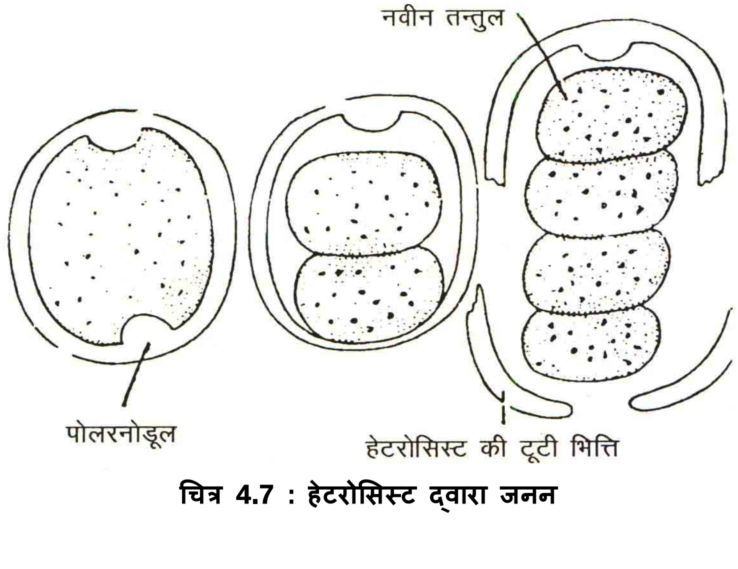

चित्र 4.7 : हेटरोसिस्ट द्वारा जनन

4.3.7 जीवन चक्र (Life cycle)

लेजराफ एवं विशानिक (Lazaroff and vishanic, 1972) ने नॉस्टॉक जीवन चक्र का अध्ययन किया । इनके अनुसार नॉस्टॉक में एक हैटरोसिस्टीय तथा एक बीजाणुयी चक्र का एकान्तरण पाया जाता है । यह पीढ़ी एकान्तरण (alternation of generation) दर्शाता है ।

प्रकाश में ट्राइकोम हैटरोसिस्ट के स्थान से टूटकर हार्मोगोन बनाते हैं, जो पुन: वृद्धि करके हैटरोसिस्ट युक्त ट्राइकोम बनाते हैं । अन्धकार में संवर्धन माध्यम (culture medium) में ट्राइकोम की सभी कोशिकाएँ प्रथक हो जाती हैं, तत्पश्चात कुछ कोशिकाएँ पुन: जुड़कर छोटे तन्तुल बनाती हैं । प्रकाश की उपस्थिति में ये छोटे तन्तुल आपस में जुड़ जाते हैं तथा इनमें हैटरोसिस्ट का निर्माण भी हो जाता है । लेजेरॉफ (1972) के अनुसार यह क्रिया कवक (fungi) में का युग्मन (somatogamy) के समान है ।

4.3.8 आर्थिक महत्व (Economic importance)

(i) चीन में, इसकी विशाल जातियों को आहार के रूप में काम में लेते हैं।

(ii) नाइट्रोजन स्थिरीकरण की वजह से भूमि की उर्वरकता में योगदान । बंजर तथा ऊसर (alkaline) मृदा को उपजाऊ बनाते हैं ।

(iii) जिस पादप में अन्त:जीवी होते हैं, उसे नाइट्रोजन प्रदान करते हैं ।

बोध प्रश्न 3

1. नॉस्टॉक में पाये जाने वाले बीजाणुओं का नाम लिखिए :

....

....

2. नॉस्टॉक का मुख्य आर्थिक महत्व क्या है?

....

....

3. एकाइनीट्स क्या है?

....

....

4.4 इकाई सारांश

सायनोवैक्टीरिया नील हरित शैवाल हैं, जो प्रोकेरयोटिक होते हैं । ऑसिलेटोरिया तथा नॉस्टॉक इसके मुख्य उदाहरण हैं। ऑसिलेटोरिया अलवणीय जलीय आवासें में पाया जाता है । ट्राइकोम के बाहर श्लेष्मा की परत होती है । शीर्ष कोशिका को छोड़कर सभी कोशिकाएँ समान होती हैं । क्लोरोफिल -α, केरोटीन, c- फाइकोसाइनिन, c- फाइकोइरिथ्रिन प्रमुख वर्णक हैं ।

इसमें जनन केवल कायिक खण्डन द्वारा होता है । नॉस्टॉक भी प्राय: अलवणीय जल में या चट्टानों से चिपका कॉलोनी के रूप में पाया जाता है । कॉलोनी में नॉस्टॉक के अनेक ट्राइकोम होते हैं । हैटरोसिस्ट पाया जाता है । इसका तन्तु माला के समान प्रतीत होता है । जनन कायिक तथा अलैंगिक प्रकार का पाया जाता है । अलैंगिक जनन, एकाइनीट्स, अन्त:बीजाणु एवं हैटरोसिस्ट

द्वारा होता है । यह पीढ़ी एकान्तरण भी दर्शाता है । इसकी जातियाँ नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती है तथा भूमि की उर्वरकता को बढ़ाती है । दोनों सायनोबैक्टीरिया में लैंगिक जनन एवं चल बीजाणुओं का अभाव होता है ।

4.5 शब्दावली

(i) **थैलस (सूकाय)** : पादप संरचना, जिसमें मूल, तना एवं पर्ण में विभेदित न हो ।

(ii) **प्रोकेरयोटिक** : केन्द्रक, जो पूर्ण विकसित न हो, जिसमें केन्द्रक कला, केन्द्रिका तथा गुण सूत्रों का अभाव हो ।

(iii) **थायलेकॉयड** : दोहरी भित्ति युक्त पट्टिकाएँ, जिनपर प्रकाश संश्लेषी वर्णक पाये जाते हैं ।

(iv) **ओसिलेटिंग गति** : लोलक या पेन्डुलम की भाँति गति दर्शाना ।

(v) **हार्मोगोनिया** : ट्राइकोम के टूटने पर तन्तु के दो या दो से ज्यादा खण्ड बनते हैं । प्रत्येक खण्ड हार्मोगोनिया कहलाता है ।

(vi) **अन्त:पादपी** : वह पादप जो अपना जीवन किसी दूसरे पादप में पूर्ण करता हो ।

(vii) **कॉलेनियल शैवाल** : समूह में रहने वाले शैवाल ।

(viii) **एकाइनीट्स** : मोटी भित्ति युक्त बीजाणु, जो विपरीप परिस्थितियों को सह सकें ।

4.6 संदर्भ ग्रन्थ

त्रिवेदी, शर्मा, धनकड़ - 2006 सूक्ष्म जैविय एवं अपुष्पोद्भिद् विविधताएँ, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

बी.आर.वशिष्ठ - 2004, एल्गी, एस.चाँद एण्ड क. नई दिल्ली ।

सिंह, पाण्डे, जैन - 2000, डाइवर्सिटी ऑफ माइक्रोब एण्ड क्रिप्टोगेम्स, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ ।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. (ब) 2. (द) 3. (द) 4. असत्य

5. क्लोरोफिल-α, केरोटीन, C- फाइकोसाइनिन, C- फाइकोइरिथ्रिन

बोध प्रश्न 2

1. (ब) 2. (द) (3) अविकसित आद्दय केन्द्रक

4. बाह्य भित्ति सेलूलोज की एवं आन्तरिक भित्ति म्यूकोपेपटाइड की

5. डी.एन.ए. या क्रोमेटिन तन्तु

बोध प्रश्न 3

1. एकाइनीट्स, अन्त:बीजाणु
2. नाइट्रोजन स्थिरीकरण
3. गोलाकार मोटी भित्ति युक्त बीजाणु हैं, जिसमें भोजन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है । उच्च ताप, शीत सहिष्णु होते हैं तथा अनुकूल अवस्था में अंकुरित होकर नया नॉस्टॉक बनाते हैं ।

4.8 अभ्यास प्रश्न

1. सायनो बैक्टीरिया के लक्षण लिखिये ।
2. सायनो बैक्टीरिया में कौन से वर्णक पाये जाते हैं?
3. सायनो बीजाणुओं का आर्थिक महत्त्व क्या है?
4. थोसिलेटोरिया की कोशिका संरचना का वर्णन लिखिए ।
5. आसिलेटोरिया में जनन विधी का वर्णन कीजिए ।
6. नॉस्टॉक के आवास एवं संरचना का वर्णन कीजिए ।
7. नॉस्टॉक में जनन किस प्रकार होता है? वर्णन कीजिए ।
8. आसिलेटोरिया की विभिन्न गतियों का वर्णन कीजिए ।

इकाई 5 : माइकोप्लाज्या एवं विषाणु (Mycoplasma and Viruses) - स्वभाव, प्राप्ति स्थान, संरचना, गुणन एवं महत्त्व (Nature, Occurrence, Structure, Multiplication and Importance)

इकाई संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 माइकोप्लाज्मा

- 5.3.1 वर्गीकरण (Classification)
- 5.2.2 माइकोप्लाज्मा की प्रकृति एवं सामान्य लक्षण
- 5.2.3 संरचना
- 5.2.4 प्रजनन
- 5.2.5 संचरण (Transmission)
- 5.2.6 माइकोप्लाज्मा का आर्थिक महत्व
- 5.2.7 माइकोप्लाज्मा की कुछ अन्य विशेषताएँ

5.3 विषाणु

- 5.3.1 सामान्य गुण
- 5.3.2 विषाणु की संरचना
- 5.3.3 विषाणु के घटक (Composition of Viruses)
- 5.3.4 विषाणुओं का वर्गीकरण एवं नामकरण
- 5.3.5 तम्बाकू का मोजेक विषाणु की संरचना
- 5.3.6 जीवाणुभोजी (Bacteriophage)

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई अध्याय से आपको माइकोप्लाज्मा एवं विषाणुओं, जो अति सूक्ष्म जीव है के बारे में ज्ञात होगा । दोनों एक सरल संरचना के जीव है । इस अध्याय द्‌वारा आपको इन दोनों जीवों की प्राप्ति स्थान एवं संरचना की विस्तृत जानकारी होगी, साथ ही आपको इनकी संरचना की भिन्नताओं तथा यह किस प्रकार गुणन या जनन करते हैं के बारे में ज्ञान होगा। इन सरल सूक्ष्म

जीवों का हमारे लिए क्या महत्व है? इनके हानिकारक एवं लाभदायक महत्व क्या है? का बोध होगा।

5.1 प्रस्तावना

माइक्रोप्लाज्मा एक बहुआकृतिक वाला सूक्ष्म जीव (microbe) है । लुई पाश्चर (Louis Pasteur) ने सर्वप्रथम पशुओं के प्लूरोन्यूमोनिया (bovine pleuropneumonia) का कारक माइकोप्लाज्मा बताया। लेकिन इसकी खोज का श्रेय नौकार्ड एवं रौक्स (E. Nocard and E.R. Roux, 1898) को जाता है। इन्होंने इस जीव को संवर्धन माध्यम (culture medium) में विमुक्त (isolate) किया । माइकोप्लाज्मा माइकोइडिस (Mycoplasma mycoides) गो-पन्लूरोनिमोनिया रोग फैलता है, इसलिये इसे प्लूरोनिमोनिया के सदृश्य जीव (Pleuropneumonia like organism) या PPLO भी कहते हैं । ये जीव बहुआकृति के (pleomorphic) होते हैं एवं मनुष्यों, जानवरों, पक्षियों में विभिन्न रोगों के कारक हैं। माइकोप्लाज्मा नाम नोवाक (Nowak, 1929) ने दिया । पादपों में माइकोप्लाज्मा की खोज डोए (Doi, 1967) ने की और इसे MLO या माइकोप्लामा सदृश्य जीव (Mycoplasma like organism) कहा । इन्हें फाइटोप्लाज्मा (Phytoplasma) या मालीक्यूल लाइक ऑरगेनिज्म भी कहते हैं। ये एक कोशिकीय जीव हैं, इनमें कोशिका भित्ती नहीं पाई जाती।

विषाणु जीवों में सबसे सूक्ष्म अकोशिकिय जीव हैं। लेटिन भाषा में वायरस का अर्थ विष से है । इसलिए इन्हे विषाणु या वायरस कहा गया । रुसी वैज्ञानिक डीजे. इवेनोवस्की (D.J. Ivenovsky,1892) ने तम्बाकू मोजेक रोग से ग्रसित पादप के रस को (bacterial filter) जीवाणु फिल्टर से छानने पर स्वपस्थ पौधों पर लेप या रगड़ने पर इस रोग के लक्षण को देखा । अत: रस में कोई रोग कारक उपस्थित या जो जीवाणुओं से भी छोटा है। बेजेरिंक (Beijerinke, 1898) ने इस फिल्टेट को कन्टेजियम वाइवम प्लूइडम (Contagium vivum fluidum) कहा । लोफलर एवं फ्रोस (Lofeler and frosch,1898) ने जीवाणु रहित फिल्हेट से पशुओं में खुरपका, मुंहपका रोग उत्पन्न होना पाया । ये विषाणु पादपों (Plant Viruses) एवं जन्तुओं (animal viruses) में प्राय: पाये जाते हैं। इनके अलावा डी. हेरिल (d’ Herelle, 1917) ने जीवाणुभोजी (bacteriophage) का वर्णन किया । एम. श्लेन्जिर (M. Schliesinger, 1933) ने WLL जीवाणुभोजी को विमुक्त (isolate) किया ।

विषाणु की रसायनिक संरचना का श्रेय स्टेन ले (Stanley,1935) को जाता है। इन्होंने टोबेको मोजेक विषाणु (TMV) के प्रोटीन का क्रिस्टलीकरण किया । स्टेनले को इस कार्य के लिए 1946 में नोबेल पुरस्कार मिला । बाडेन एवं पियरी (Bowden and Pirie, 1938) ने विषाणु में RNA (रोइबोस न्यूक्लिइक अम्ल) की उपस्थिति बताया । ये विषाणु अविकल्पी परजीवी (obligate parasite) होते हैं तथा केवल सजीव कोशिका में ही जीवन व्यापन करते हैं। विषाणु विज्ञान को वायरोलोजी (Virology) एवं इसके वैज्ञानिकों को वायरोलोजिस्ट कहते हैं ।

लूरिया एवं डार्नल (Luria Darnell, 1968) के अनुसार "विषाणु ऐसे एकक (entities) हैं जिसमें जिनोम न्यूक्लिइक अम्ल होता है, जो परपोषी को सजीव कोशिकाओं के अन्तर्वस्तुओं का उपयोग कर अपनी पुनर्रावृत्ति करते हैं और विशिष्ट कणों वायरस (Viraus) का निर्माण करते हैं।"

5.2 माइकोप्लाज्मा (Mycoplasma)

5.2.1. वर्गीकरण

माइकोप्लाज्मा एवं MLO को जीवाणु से भिन्न वर्ग मालिक्यूटस में रखा जाता है जिसमें एवं गण माइकोप्लाज्माटेलीज (Mycoplasmatelis) तथा इसमें तीन निम्नलिखित कुल है:-

(i) **कुल माइकोप्लाज्योटेसी** (Mycoplasmataceae) : इस कुल में वंश माइकोप्लाज्मा है जो प्राय: परजीवी होते हैं । पादपों एवं जन्तुओं में रोगों के कारक भी होते हैं । इनकी कॉलोनी तले हुए अण्डे (Friedegg) के समान होती है । इनकी वृद्धि के लिए स्टीरोल आवश्यक है ।

(ii) **कुल एकोलेप्लाज्मेटेसी** (Acholeplasmataceae). इस कुल के सदस्य एकोलेप्लाज्मा है जो प्राय: मृतोपजीवी या स्वतंत्र जीवी होते हैं । कशेरुकी जन्तुओं , दूषित जल एवं पादपों में भी पाये जाते हैं । वृद्धि के लिए स्टीशेल आवश्यक नहीं होता।

(iii) **कुल स्पायरोप्लाज्मेटेसी** (spiroplasmataceae) : स्पायरोप्लाज्मा इस कुल का सदस्य है जो कींटों द्वारा संचारित होते हैं । यह पादपों के रोगाणु हैं । इनका आकार कुलित (helicoid) होता है । एवं गतिशील (motile) होते हैं पर कोई कशाभिका नहीं होती ।

5.2.2. माइकोप्लाज्मा की प्रकृति एवं सामान्य लक्षण

(i) ये प्रोकेयोटिक सूक्ष्मतम जीव है । मा. लेडलेवी (M. Laidlawy) का व्यास 0.1-0.3 nm, होता है । कोशिकाओं का व्यास 30-50 nm, तक होता है ।

(ii) ये प्राय: दूषित जल, मृदा, सड़े-गले पदार्थों में मृतोपजीवी एवं मनुष्यों, जन्तुओं और पादपों में परजीवी थे । के रूप में पाये जाते हैं । पादपों में प्लोएम (phloem) के चालनी नलिकाओं (Sieve tube) में पाये जाते हैं ।

(iii) माइकोप्लाज्मा बहुआकृति वाले जीव है कोशिका द्रव्य पर प्लाजा झिल्ली होती है । कोशिका भित्ति इसी वजह से गोलाकार, तन्तुमय, ताराकर, शाखित या अन्य आकार की होती है ।

(iv) ये जीवाणुओं से छोटे होने की वजह से जीवाणु फिल्टर से छन सकती है ।

(v) ग्राम अभिरंजक (Gram stain) नहीं लेती अत: ग्राम अग्राही (Gram negative) है ।

(vi) कोशिका रहित संवर्धन माध्यम (cell free culture medium) में उनका' संवर्धन किया जाता है । वृद्धि के लिए स्टीरोल आवश्यक है ।

(vii) इनकी कोशिका में DNA रोइबोसोम, प्रोटीन, कोलेस्टीरोल एवं रिक्तकाएं पाई जाती हैं ।

(viii) ये टेटासाइक्लिन और क्लोरेम फैनिकल प्रतिजैवी से नष्ट हो जाती है । परन्तु कोशिका भित्ति के अभाव की वजह से वे प्रतिजैवी जैसे पैनिसिलिन, वैनकोमाइसिन, सिफेलोरिडिन आदि जो भित्ति निर्माण को रोकते हैं, का इन पर कोई प्रभाव नहीं होता ।

5.2.3 संरचना (Structure)

माइकोप्लाज्मा एक कोशिकिय प्रोकेरयोटिक सूक्ष्मजीव है । कोशिका भित्ति का अभाव होता है । जीव द्रव्य त्रिस्तरीय लाइपोप्रोटीन की बनी प्लाज्मा झिल्ली से घिरा रहता है । प्लाज्मा झिल्ली के लचीले स्वभाव की वजह से ये बहुरापी होते हैं । प्लाज्मा झिल्ली या इकाई झिल्ली (Unit membrane) 80-100 A मोटी होती है । इसके लाइपोप्रोटीन के फास्फोलिपिड परत में कोलेस्टेरोल पाया जाता है । जीव द्रव्य में नग्न, वृत्ताकार द्विकुण्डलितू, 3nm मोटा DNA होता है । इसके अतिरिक्त, RNA 705 प्रकार के राइबोसोम रिक्तियाँ, प्रोटीन 50-80 प्रतिशत विकर वसा पाये जाते हैं ।

DNA की मात्रा 4 से 5% है जिसका अणुभार 440 - 12000 डाल्टन मापा गया है । RNA लगभग 8-15%० होता है। 40 प्रकार के वीकर पाये जाते हैं । DNA में जीवाणुओं की अपेक्षाकृत गुएनिन और साइटोसिन की मात्रा कम होती है। मिसोसोम्स माइटोकान्डिया, केन्द्रक, गाल्जीकाय एवं एन्डोप्लाज्मिक रेटीकुलम का अभाव होता है ।

माइकोप्लाज्मा को आवरण रहित जीवाणु पादप जगत के जोकर, सूक्ष्मजीवी जोकर, मॉलिक्यूटस आदि नामों से भी जाना

बोध प्रश्न - 1

(i) माइकोप्लाज्मा.. आकृति वाले जीव है ।

(ii) माइकोप्लाज्मा का जीव द्रव्य............................. झिल्ली से घिरा रहता है ?

(iii) माइकोप्लाज्या कोशिका में पाये जाने वाला क्या पदार्थ है ?

....

....

(iv) कौन से प्रतिजैवी से माइकोप्लाज्मा का संक्रमण नष्ट किया जा सकता है ।

....

....

5.2.4 जनन (Reproduction)

मोरोविटस एवं टॉरिटिलोटी (Morowitz) ने माइकोप्लाज्मा में जनन का अ ध्ययन किया । लैगिक एवं अलैगिक जनन का अभाव होता है । जनन विखण्डन (Fragmentation), दिविभाजन (binary fission) मुकुलन (budding) एवं प्रारम्भिक संरचनाओं (elementary bodies) द्वारा होता है । जनन क्रिया तीव्र गति होती है, 1-3 घंटे में यह पूर्ण हो जाती है ।

(i) **प्रारम्भिक संरचनाएँ** : प्राय : इसी विधि द्वारा जनन होता है । इसमें माइकोप्लाज्मा की मातृ कोशिका फूलकर बड़ी हो जाती है । इसका जीव द्रव्य कई छोटी इकाईयों में विभक्त होकर प्रारम्भिक संरचनाएँ बनाता है इनका व्यास 330 -550 nm होता है । मातृ कोशिका की झिल्ली फटने पर ये संरचनाएँ पृथक हो जाती है तथा नई माइक्रोप्लाज्मा की कोशिका का निर्माण करती है ।

(ii) **विखण्डन** : इसमें मातृ कोशिका या तन्तु के टूटने पर छोटे टुकड़े पुन : वृद्धि करते हैं ।

(iii) **द्रिविभाजन** : मातृकोशिका दो समान या असमान कोशिकाओं में विमुक्त होती है ।

(iv) **मुकुलन** : मातृ कोशिका के मुकुलन से कई छोटी कोशिकाएं शृंखला में उत्पत्र होती है ।

5.2.5 संचरण (Transmission)

रोगाणु के रूप में माइकोप्लाज्मा का संचरण मनुष्यों, पादपों एवं जन्तुओं में होता है । संचरण निम्न प्रकार से होता है-

(i) मनुष्यों एवं जन्तुओं में वायु द्वारा

(ii) पादपों में कीटों द्वारा एवं कलम (grafting) तैयार करते समय कीट के रोगित पौधे से रसग्रहण करते समय रस के साथ माइकोप्लाज्मा उसके मुख गुहा में चले जाते हैं । उसी कीट के स्वस्थ पौधे से रस ग्रहण करने पर पौधा माइकोप्लाज्या से संक्रमित हो जाता है ।

(iii) अमरबेल द्वारा माइकोप्लाज्या रोगित पौधे में स्वस्थ पर संचरित होता है ।

संचरण के कुछ उदाहरण -

(i) तिलपर्णामता (Sesame Phyllody) एकिड (aphid) द्वारा

(ii) चंदनस्पाइक रोग (Sandal Spike) जेसस इन्डिकस (Jassus indicus) द्वारा

(iii) बैंगन का लघु पत्र रोग (Little leaf of brinjal) हिशिमोनस फाइसिटिस (Hishimonous phycitis) द्वारा

(iv) नींबू हरित रोग (Citrus greening) डायफोराइना सिट्री (Diphorina citri) द्वारा

5.2.6 माइकोप्लाज्मा का आर्थिक महत्व

I. मनुष्यों में रोग (Human diseases)

(i) माइकोप्लाज्या निमोनी (M.pneumonae) द्वारा अप्रारुपिक निमेनिया (atypical pneumonia)

(ii) मा. होमिनिस (M. hominus) द्वारा जननांग शोध (genital inflamation)

(iii) मा. फरमेन्टेस (M.fermenters) द्वारा बन्ध्यता (infertiltity)

(iv) मा. ओरल, मा. सेलिवेरियम (M. orale, M. salivarium) द्वारा श्वसन नाल का संक्रमण

II. जन्तुओं में रोग

(i) मा. माइकोयडिस (M.mycodies) द्वारा गो-प्लूरानिमोनिया

(ii) मा. बोविजेनाइटेलियम (M. bovigenitalium) द्वारा जननांग शोध

(iii) मा. हाइपोनिमोनी (M. hyopneumoniae) द्वारा निमोनिया

(iv) मा. एगेलेक्टी (M. ogaloetiae) द्वारा भेड़-बकरियों में अस्तन्यता (agaloetia)

(v) मा. मेलिग्रिडिस (M. melegrides) द्वारा मुर्गियों में शिरानालशोध

III. पादपों में रोग

(i) चन्दन का स्पाइक रोग (Spike of sandal)

(ii) बैंगन का लघुपर्णरोग (Little leaf of brinjal)

(iii) पपीते का गुच्छित शीर्ष रोग (Bunchytop of papaya)

(iv) तिलपर्णा मिता (phyllody of sesame)

(v) आलू का कुर्चीसम (witch is bromm of patato)

(vi) टमाटर वृहत कलिका रोग (Bigobud blight of tomato)

(vii) नींबू का हरित रोग (Citrus greening)

(viii) गन्ने का धारी रोग (Stripe disease of sugarcane)

(ix) लेम्यूम का कूर्चीसम (Witche's broom of legume)

(x) तम्बाकू का पीत वामन (Tobacco yellow dwarf)

(xi) क्लोवर पर्णाभिता (Phyllody of clover)

(xii) कपास हरितिमागम (Cotton virescence)

(xiii) मक्का का बौना रोग (Corn stunt)

(xiv) विन्का का पीत रोग (Yellow diesease of Vinca)

5.2.7 माइकोप्लाज्मा की कुछ अन्य विशेषताएं -

(i) यह ट्रेटासाइक्लिन प्रतिजैवी उष्मा उपचार आंखों के आंसुओं नाक से निकले द्रव तथा मुर्गी के अंडे के सफेद भाग से, परासरणिय परिवर्तन के कारण इनकी कोशिका फट जाती है और नष्ट हो जाते हैं ।

(ii) माइकोप्लाज्मा L-form जीवाणु एवं स्फीरोप्लास्ट से भिन्न होते हैं । L फॉर्म जीवाणु कृत्रिम रूप से उत्पन्न किए जाते हैं तथा प्रति जैवी मुक्त माध्यम में मातृ जीवाणु में बदल जाते हैं । इनकी खोज क्लिबरर्जर नोबेल (1935) ने जर्मनी के लीस्टर इंस्टीट्यूट में किया । अत : L फॉर्म नाम दिया गया ।

स्फीरोप्लास्ट (Spheroplast) जीवाणु की कोशिका भित्ती के कुछ भाग के नष्ट होने पर बनता है । स्फीरोप्लास्ट कारक मुक्त माध्यम में पुन: मातृ जीवाणु का रूप ले लेते हैं ।

बोध प्रश्न-2

(i) मनुष्यों में बांझपन का कारक क्या है ?

....

(ii) माइकोप्लाज्मा का पौधों में संचरण .... द्वारा होता है ।

(iii) माइकोप्लाज्मा में प्राय: जनन .... द्वारा होता है ।

(iv) माइकोप्लाज्मा की कॉलोनी ....के समान दिखती है ।

5.3 विषाणु (Viruses)

5.3.1 सामान्य गुण

(i) ये अविकल्पी अन्तराकोशिकीय जीव है, स्वतंत्र अवस्था में नहीं पाये जाते ।

(ii) विषाणु अतिसूक्ष्म कणिकाओं रूपी संरचनाएं हैं जो इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से देखे जा सकते हैं ।

(iii) जीवाणु फिल्टर द्वारा छन जाते हैं तथा निर्जीव एवं सजीव दोनों के लक्षण दर्शाते हैं ।

(iv) परिपक्व विषाणु कण वायरोन (Virion) कहलाता है । इसमें द्विकुण्डलित डी.एन.ए. या एकल तन्तु आर.एन.ए, पाया जाता है । न्यूक्लिक अम्ल के चारों ओर प्रोटीन या लाइपोप्रोटीन की आवरण होता है ।

(v) इनमें स्वयं के एंजाइम नहीं होते, अत: परपोषी की कोशिका के एंजाइम को नियंत्रित करके अपना प्रोटीन निर्माण, बहु गुणन एवं पुनरावृत्ति (replication) करते हैं । कोशिका या कृतिम मुक्त माध्यम में बहु गुणन नहीं करते ।

(vi) विषाणु में परपोषी विशिष्टता (host specific) पाई जाती है । ये अत्यन्त संक्राम (infectious) एवं रोग कारक (pathogenic) होते हैं ।

(vii) इनमें प्रतिजनिक (antigenic) गुण होता है और प्रतिजैविकों (antibiotics) का इन पर कोई प्रभाव नहीं होता ।

(viii) पाइरिडीन (Pyridine), यूरिया, हाइडोजन पर आक्साइड तथा पैराबेंगनी द्वारा निष्क्रिय हो जाते हैं ।

(ix) एसीटोन, इथाइल एल्कोहॉल आदि में अवक्षेपित (precipitate) हो जाते हैं । इन पर पुन: जल में घुल जाते हैं ।

(x) विषाणु बहु गुणन एवं अपना जीवन चक्र परपोषी की सजीव कोशिकाओं में करते हैं । कोशिका के फटने पर ये बाहर आ जाते हैं । तथा पुन: किसी कोशिका में प्रवेश करते हैं । इनमें केवल न्यूक्लिइक अम्ल (DNA or RNA) तथा प्रोटीन पाया जाता है । प्लाज्मा झिल्ली एवं कोशिकागों का सदैव अभाव होता है ।

(xi) विषाणु सजीव एवं निर्जीव दोनों के लक्षण दर्शाते हैं।

सजीव लक्षण- आनुवांशिक पदार्थ DNA या RNA का पाया जाना, इनकी पुनरावृति होना, DNA या RNA में उत्परिवर्तन का होना, परपोषी विशिष्टता दर्शाना, जीवित कोशिका में अपना जीवन चक्र पूर्ण करना, निश्चित आकार का होना, प्रतिजनी गुण तथा संक्रमण की क्षमता रखना आदि इसके सजीव लक्षण है ।

निर्जीव लक्षण- इनका क्रिस्टलीकरण किया जाना, कोशिका कला, कोशिका भित्ती कोशिकागो तथा श्वसन क्रिया अभाव होना, आदि इसके निर्जीव लक्षण है ।

5.3.2 विषाणु की संरचना

विषाणु या वायरिओन का माप 10 nm (नेनो माइक्रोन) से 300 तक हो सकते हैं - उदाहरणार्थ-

तम्बाकू मोजे विषाणु	15 × 300 nm
एल्फा मोजेक विषाणु	50 × 240 nm
पिक्रोन विषाणु	20 × 30 nm
स्माल पॉक्स विषाणु	200 - 300 nm
पोलियो विषाणु	20 × 27 nm
जीवाणु भोजी विषाणु	54 - 22 × 55 nm

विषाणु कई प्रकार के होते हैं जैसे- दण्डाकार TMV, घनाभ (मम्पस हर्पीज विषाणु), टेडपोल आकृति के आकार के टी-सम जीवाणुभोजी । आकृतियों के आधार पर विषाणुओं को तीन ससमिति समूह (symmetrical groups) में रखा गया है-

(a) **कुण्डलीदार ससमिति (Helical symmetry)** : इसमें विषाणुओं की प्रोटीन पेटीका (Protein capsid) के केपसोमर्स (capsomers) अक्ष के चारों ओर कुण्डलीदार रूप मे विन्यासित होते हैं । कुण्डलीदार पेटिका आवरण रहित जैसे (TMV) या आवरणयुक्त (रेबीज विषाणु) होते हैं । बहुफलिय (Polyhedral) विषाणुओं में कई केपसोमर्स होते हैं । इन केपसोमर्स के एक भाग या मोनोमर्स पंच कोणिया या छह कोणिय होते हैं ।

(b) **गोलाकार घन सममिति (Cubic symmetry)** : ये विषाणु आवरण युक्त (हर्पीज विषाणु) अथवा पेटिका रहित (Ø × 174) होते हैं तथा गोलाकार या बहुफलिय घन दर्शाते हैं । इनमें 4-20 कोष एवं 20 सतह होती है । सतहो का निर्माण 12 प्रतिच्छेदी बिन्दुओं (inter secting point) एवं समभुजी त्रिभुजों के कारण होता है ।

(c) **जटिल सममिति (Complex symmetry)** : ये विषाणु अतिसूक्ष्म एवं पेटिका रहित (TC T-even) अथवा पेटिका मुक्त (वैक्सीनिया विषाणु) होते हैं । T- 4 जीवाणुभोजी की आकृति टेड के समान दिखती है । इसमें प्रोटीन कपर्सक्सस बना बहुकोणियसिर एवं प्रोटीन की बनी पूंछ होती है ।

5.3.3 विषाणु के घटक (Composition of Virus)

विषाणु प्राय: न्यूक्लिइक अम्ल एवं प्रोटीन के बने होते हैं । न्यूक्लिक अम्ल में DNA अथवा RNA ही होता है । DNA या RNA प्रोटीन के आवरण से आच्छेदित होती है । प्रोटीन के आवरण से आच्छेदित होती है । प्रोटीन आवरण को पेटिका (capsid) कहते हैं । पेटीका कई मोनोमर्स इकाइयों की बनी होती है । जिसे केप्सोमर्स कहते हैं । विषाणुओं में केप्सोमर्स की संख्या भिन्न होती है । न्यूक्लिक अम्ल जो केपसिड के मध्य में होता है को न्यूक्लोइड भी कहते हैं । दोनों एक साथ न्यूक्लियो केपसिड कहलाते हैं । विषाणुओं में केपसिड के बाहर प्रोटीन या वसा सीमाकारी परत (envelope) भी होती है । इन्हें एनवलप्ड विषाणु कहते हैं- जैसे- लाइपोविषाणु (हर्पीज विषाणु) । कुछ विषाणुओं में कार्बोहाइड्रेट, वसा एवं विकार (Enzyme) भी पाये जाते हैं ।

जन्तु विषाणु एवं जीवाणुभोजी में प्राय: DNA तथा पादप विषाणुओं में RNA होता है । DNA द्विरज्जू की (double standed) एवं RNA एकल रज्जूकी होते हैं । कुछ Ø × 174 हैं जैसे - DNA मेज स्ट्रीक विषाणु में एक रज्जुकी SSDNF होता है एवं वूण्ड ट्यूमर तथा रियो विषाणु में द्विरज्जूकी RNA होता है । कोलियो x का DNA वृत्ताकार होता है ।

विषाणुओं में आनुवांशिक पदार्थ DNA या RNA होता है । यह विषाणु का संक्रामक भाग है तथा विषाणु के प्रोटीन का संश्लेषण कर पुनरावृत्ति के लिए उत्तरदायी होता है ।

विषाणुओं में न्यूक्लिआइड को घेरे एक पेटिका होती है जो निश्चित पेटीकांशक (capsomers) की बनी होती है । TMV में 2130, टरनिप यलो मोजेक में 33 एवं Ø × 174 में 12 पेटिकांशक होते हैं । पेटिका न्यूक्लिक अम्ल को सुरक्षा प्रदान करती है । संक्रमण में सहायक होती है एवं प्रतिजनी (antigenic) होती है ।

आवरण (Envelope) : यह कुछ विषाणु जैसे हर्पीज, पोक्स विषाणुओं में पाया जाता है । यह लाइपोप्रोटीन या कार्बोहाइड्रेड द्वारा निर्मित्त होती है । इसमें ग्लाइकोप्रोटीन एवं मैट्रिक्स प्रोटीन भी पाये जाते हैं । इनके बाहय सतह पर कुछ स्पाइक्स बने होते हैं ।

5.3.4 विषाणुओं का वर्गीकरण एवं नामांकरण

वर्गीकरण :

अत्यन्त सूक्ष्म आमाप, अविकल्पी परजीविता, जैविक तथा निर्जीव लक्षणों तथा जीवाश्म प्रमाणों के अभाव के कारण विषाणुओं का वर्गीकरण कठिन है । अत: आरम्भ में विषाणुओं को निम्नलिखित वर्गों में बांटा गया है :-

(i) **पादप विषाणु** : ये केवल पौधों को संक्रमित करते हैं । इन्हें जीवाण्विक विषाणु, शैवाली विषाणु, कंवकी विषाणु आदि उपवर्गों में विभक्त किया गया ।

(ii) **अकशेरुकी विषाणु** : ये विषाणु अकशेरूकी जीवों में पाये जाते हैं ।

(iii) **कशेरूकी विषाणु** : इस वर्ग के विषाणु कशेरुकी जन्तुओं को संक्रमित करते हैं ।

(iv) **द्वैत-परपोषी विषाणु** : इस वर्ग के विषाणु दो विभिन्न परपोषियों पर आधारित होते हैं ।

होल्म्स (Holmes,1948) ने विषाणुओं को तीन वर्गों में विभक्त किया है :-

(A) **फाज़िनी (Phagineae)** : जीवाणुभोजी bacteriophage) विषाणु रखे गये हैं ।

(B) **फाइटोफाज़िनी (Phytophagineae)** : पादप भोजी विषाणु रखे गये हैं ।

(C) **जूफाज़िनी (Zoophagineae)** : जन्तु भोजी विषाणुओं को सम्मिलित किया गया है ।

इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी तथा द्रूत अपकेन्द्रित (ultra-centrifuge) आदि उपकरणों के आविष्कार से विषाणुओं के आकारिकीय तथा रासायनिक लक्षणों के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है । आधुनिक प्रणाली निम्नलिखित गुणों पर आधारित है :-

(i) न्यूक्लिक अम्ल का प्रकार

(ii) विषाणु का अणुभार

(iii) विषाणु का आकार तथा आमाप

(iv) विषाणुओं की सममिति

(v) पेटिका में प्रोटीन उपइकाइयों की संख्या

(vi) न्यूक्लिक अम्ल कुण्डलिनी का व्यास

(vii) बाहय आवरण की उपस्थिति

(viii) अन्तरकोशिक प्रवर्धन की स्थिति

(ix) विषाणु की ताप निष्क्रियता

(x) विषाणु की संचरण विधि

(xi) विषाणु द्वारा परपोधी में उत्पन्न लक्षण

लोफ्र, होर्नि तथा टरनिअर (1962) द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण को विषाजुओं के नामपद्धति की अंतराष्टीय समिति ने 1965 में मान्यता दी । वर्गीकरण की संक्षिप्त रूप रेखा :-

फाइलम वाइरा (Vira)

उप-फाइलम

- डी-ऑक्सीवाइरा (Deoxyvira - DNA युक्त विषाणु)
- राइबोवाइरा (Ribovira) (RNA युक्त विषाणु)

डी-ऑक्सी हेलिका
डी.एन.ए. युक्त कुंडलित विषाणु
↓
आर्डर-कीटोवाइरेल्स
आवरणयुक्त विषाणु

डी-ऑक्सी-क्यूबिकी
RNA युक्त घनाभ विषाणु
↓
आर्डर-1 हेप्लोवारेल्स
2. पेप्लोवाइरेल्स

डी-ऑक्सीबाइनाला
DNA युक्त छड़ाकार विषाणु
↓
आर्डर-यूरोवाइरेल्स
आवरण रहित विषाणु

राइबोवाइरा (Ribovira)
↓ **(RNA युक्त विषाणु)**

सुपरऑर्डर पेप्लोवाइरेल्स (Peplovirales)
(आवरणयुक्त या आवरण रहित विषाणु)

राइबोहेलीका (Ribohelica)
(RNA युक्त कुंडलीय विषाणु)

ऑर्डर-1. रेब्डोवाइरेल्स (Rhabdovirales)
(छड़ाकार आवरण रहित विषाणु)
v
उपगण-1. रिजिडोवाइरेल्स
(Rigidovirales)
(दृढ़ संरचना)

उप ऑर्डर-2. फ्लेक्सीवाइरेल्स
(Flexivirales)
(प्रत्यास्थ संरचना)

ऑर्डर-2. सैगोवाइरेल्स (Sagovirales)
(आवरण रहित विषाणु)

राइबोक्यूबिका (Ribocubica)
(घनाभ RNA विषाणु)

ऑर्डर-1. जिम्नोवाइरेल्स (Gymnovirales)
(अनावरित विषाणु)

ऑर्डर-2. टोगोवाइरेल्स (Togovirales)
(आवरण युक्त विषाणु)

नामकरण

विषाणुओं के लिये द्विपद नाम पद्धति उपर्युक्त नहीं है । विषाणुओं के नामपद्धति की अंतराष्ट्रीय समिति (International Committee for Virus Nomenclature) ने 1968 में एक नयी प्रणाली प्रस्तुत की है । इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक विषाणु के नाम के दो भाग हैं, जिनमें से प्रथम भाग विषाणु का प्रचलित नाम (common name) है तथा दूसरे भाग में विषाणु के विषय में सांकेतिक सूचना (coded information) निहित होती है । दूसरे भाग को बीजलेख (cryptogram) कहते हैं । विषाणु का प्रचलित नाम कभी नहीं बदला जा सकता है परन्तु बीजलेख बदला जा सकता है ।

प्रत्येक बीजलेख में सांकेतिक सूचना के निम्नलिखित चार युग्म (pairs) होते हैं -

पहला युग्म : न्यक्लिक अम्ल के प्रकार / न्यूक्लिक अम्ल में रज्जुकों की संख्या

दूसरा ग्रुप : न्यूक्लिक अम्ल का आणुविक भार / विषाणु में न्यूक्लिक अम्ल की प्रतिशत मात्रा

तीसरा ग्रुप : विषाणु का आकार / न्यूक्लियो प्रोटीन का आकार

चौथा ग्रुप : परपोषी की किस्म / संचरण में प्रयुक्त वाहक

उदाहरणार्थ : तम्बाकू मोजैक विषाणु (Tobacco mosaic virus-TMV) : R/1: 2/5: E/E: S/A

स्पष्टीकरण

पहला युग्म : न्यूक्लिक अम्ल RNA (R)/ एक रज्जुकी (Single stranded = 1)

दूसरा युग्म : न्यूक्लिक अम्ल का अणुभार = 2 (लाखों में) / न्यूक्लिक अम्ल की मात्रा = 5%

तीसरा युग्म : विषाणु का आकार दीर्घित=E(elongated) /न्यूक्लियो प्रोटीन का आकार दीर्घित=E

चौथा युग्म : परपोषी बीज युक्त पौधे= S (spermatophytes)/ विषाणु का संचरण संदूषित वायु = A (air)

5.3.5 तम्बाकू का मौजैक विषाणु की संरचना

अब तक लगभग 350 से भी अधिक ऐसे विषाणुओं का पता लगाया जा चुका है, जो पौधों में रोग उत्पन्न करते हैं । तम्बाकु का मौजैक विषाणु (Tobacco mosaic virus) का आविष्कार इवैनोविस्की (Ivanowisky) द्वारा 1982 में किया गया ।

TMV के संक्रमण पर प्रथम दृश्य लक्षण (First visible symptoms) शीर्षस्थ तरूण पत्तियों में अधोमुखी कुंचन (downward curling) तथा विरूपण (distortion) के रूप में प्रकट होते हैं । पौधों की वृद्धि स्तंभित stunted) हो जाती है । पत्तों की ऊपरी सतह पर गहरे हरे रंग के बृहत् व असामान्य धब्बे दिखायी देते है जो बाद में अनियमित फफोलेदार क्षेत्रों (irregular blistered areas) में विकसित हो जाते हैं । शेष भाग में पत्ती के ऊतक हरिमाहीन (chlorotic) हो जाते हैं इस कारण पत्ती में मोजैक लक्षण उत्पन्न होते हैं ।

TMV विषाणु का स्रोत मिट्टी में उपस्थित संक्रमित पौधों का मलुवा (debris) तथा बीज है । संक्रमित तम्बाकू से निर्मित उत्पाद, श्रमिकों के हाथों की संदूषित (contaminate) कर विषाणु

के संचरण (transmission) में सहायक होते हैं । इस विषाणु का संचरण रस (sap) द्वारा होता है । कृषि यंत्र, मनुष्य तथा जन्तु भी इस रोग के संचरण में सहायक होते हैं । कुछ कटि जैसे - माइजर्स पर्सिका

(Myzers persica), मा. स्थूडोसोलेनाई (M. pseudosolani), माइक्रोसाइफोन सोलेनीफोलाई (Microsiphon solanifolii), आदि भी इस विषाणु के वाहक (vector) का कार्य करते हैं।

संरचना

TMV दीर्घ, पतली तथा बेलनाकार संरचनाएँ हैं । इनका आमप 3000 A◦ x 170 A◦ तथा आण्विक भार 40 लाख है। इसमें दो घटक, प्रोटीन आवरण तथा न्यूक्लिक अम्ल होते हैं । प्रोटीन आवरण लगभग 2130 उप-इकाइयों (sub-units) का बना होता है । इन सभी उप-इकाइयों की संरचना समान होती है प्रत्येक का अणुभार 18000 होता है । प्रत्येक उप-इकाई 158 ऐमीनों अम्लों की एक श्रृंखला है जिसमें ऐमीनो अम्ल एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित होते हैं । प्रोटीन उप-इकाइयाँ संनिबद्ध कुंडलिनी क्रम में व्यवस्थित होकर एक खोखली बेलनाकार नलिका बनाते हैं । वसा, कार्बोहाइड्रेट अथवा अन्य कोई पदार्थ नहीं पाये जाते हैं । प्रोटीन नलिका के केन्द्र में लगभग 6500 न्यूक्लियोटाइडों (nucleotides) का एक रज्जुक RNA होता है जिसका अणुभार 2.4 लाख होता है । प्रोटीन तथा न्यूक्लिक अन्त 94.4:5.8 के अनुपात में होते हैं ।

न्यूक्लिक अम्ल (RNA) विषाणु कण के निर्माण के लिए आवश्यक समस्त आनुवांशिक संकेत (genetic code) निहित रहते हैं । यह संकेत RNA की पुनरावृत्ति तथा आवरण की प्रोटीन उप- इकाइयों में एमीनों अम्लों के क्रम का निर्धारण करते हैं । सभी 2130 प्रोटीन उप-इकाइयों में ऐमीनों अम्लों का समान क्रम होता है । अत: उपइकाइयों के निर्माण के लिए केवल एक ही सांकेतक जीन (code gene) आवश्यक है । पृथक RNA परपोषक्ष को संक्रमित करने में सक्षम होता है तथा परपोषी कोशिका में प्रवेश करने के पश्चात् RNA रज्जुक प्रोटीन आवरण संश्लेषित करने में सक्षम होता है । अत: TMV आनुवंशिक स्तर पर पराश्रयी है, तथा इनमें अपना प्रोटीन आवरण स्वतन्त्रतापूर्वक बनाने की क्षमता नहीं होती है, इसके लिए इनका जीवित परपोषी कोशिका में संक्रमण करना जरूरी है ।

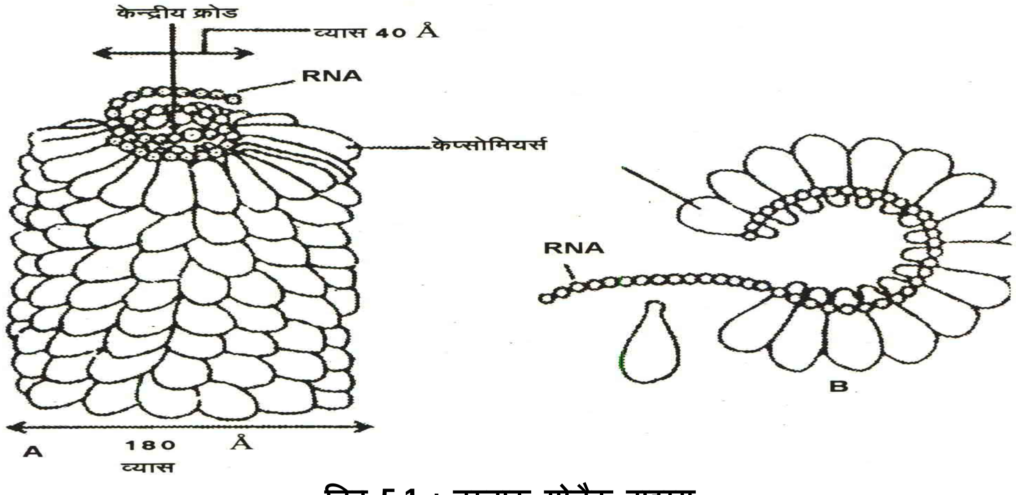

चित्र 5.1 : तम्बाकू मोजैक वाइरस

TMV विषाणु का RNA स्वयं अपनी पुनरावृती करता है तथा विषाणु विशिष्ट प्रोटीन का निर्माण भी करता है ।

TMV स्वयं पौधों को संक्रमित करते समय विषाणु का सम्पूर्ण काय (प्रोटीन आवरण व न्यूक्लिक अम्ल) परपोषी कोशिका में प्रवेश करता है । परपोषी कोशिका में प्रवेश के तुरन्त बाद विषाणु का प्रोटीन आवरण नष्ट हो जाता है जबकि RNA तुरन्त ही प्रोटीन व दूत RNA (messanger RNA) का निर्माण करता है । प्रोटीन उपइकाइयों का केपसोमर्म के निर्माण के बाद में प्रोटीन आवरण बनता है ।

बोध-प्रश्न- 3

1. विषाणु में रसायनिक घटक क्या है?
   .... और.......................................
2. TMV में न्यूक्लिइक .... होता है ।
3. विषाणु का क्रिष्टलीकरण किया जा सकता है । सत्य/असत्य
4. विषाणु परपोषी विशिष्टता रखते हैं । सत्य/असत्य

5.3.6 जीवाणुभोजी (बैक्टीरियोफाज Bacteriophage)

वे विषाणु जो जीवाणु कोशिका में परजीवी होते हैं जीवाणुभोजी अथवा बैक्टीरियोफाज कहलाते हैं । इनका आविष्कार द्वार्ट (Twort, 1915) तथा डी. हैरेल (d' herelle, 1917) द्वारा किया गया। उन्होंने देखा कि स्टैफाइलोकोकस ऐल्बस (Staphylococcus albus) नामक जीवाणुओं के निलम्बन (Suspension) में विभोजी अथवा फाज कारक (Phage factor) मिलाने पर निलम्न में उपस्थित सभी जीवाणु विलीन हो जाते हैं । इस द्रव में जीवाणुओं को पुन: विलीन करने की क्षमता होती है । इस क्रिया को द्वार्ट-डी हैरेल परिघटना (Twart-d’ Herelle phenomenon) कहते हैं । जीवाणुओं को विलीन करने वाले कारक (Factor) को विषाणुभोजी (bacteriophage) कहा । इसका अर्थ जीवाणुओं को खाने वाले जीव (Phage - eater) है ।

जीवाणुभोजी अविकल्पी परजीवी है तथा उन सभी आवासों में, जहाँ जीवाणु उपस्थित हों, पाये जा सकते हैं जैसे मिट्टी, गन्दे जल, नालियों, जन्तुओं व मनुष्यों की आंतों, लेग्यूमस (Legumes) की ग्रंथियों (nodules), दूध, सब्जियों, फल, आदि में प्राय: पाये जाते हैं ।

कुछ विषाणु ऐक्टिनोमाइसिटीज़ (ऐक्टिनोफाज़,Actinophage), यीस्ट कोशिकाओं, (जाइमोफाज़, Zymophage) तथा नील - हरित शैवालों (सायनोफाज़, Cyanophage), कवक (माइकोफाज, Mycophage) में भी परजीवों के रूप में पाये जाते हैं ।

जीवाणुभोजियों को अनेक वर्गों में रखा गया है । जैसे T1,T2 ..... T7, P, F2, M12 तथा α आदि है । T2, T4 तथा T6 विभोजिया (Phages) का अध्ययन किया जा चुका है । जीवाणु तथा विभोजी के पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर इन्हें उग्र (virulent जैसे T2, T4,), संयत (temperate, जैसे α) तथा मध्यक (intermediate, जैसे F2 व M12) वर्गों में रखा जाता है।

संरचना

जीवाणुभोजी अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं तथा इन्हें जीवाणु फिल्टर (bacterial filter) से पृथक नहीं किया जा सकता है । इनकी संरचना का अध्ययन केवल इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से ही सम्भव है । प्रारुपिक जीवाणुभोजी टैडपोल (Tadpole) के समान सिर (head) तथा पूँछ (tail) में विभेदित होता है, इनका सिर प्रिज्याभ (prismoid) होता है । T1 व T7 जीवाणुभोजियों में सिर गोलाकार होता है । कुछ जीवाणुभोजी तन्तुमय (Filamentous) होते हैं । T2 फाज़ के सिर का आमाप 950 A° $\times$ 650 A° होता है । सिर व पूँछ के बीच का भाग कालर (Collar) कहलाता है । पूँछ की लम्बाई 950 A° तथा 80A° होती है । पूँछ प्रोटीन की एक परत से ढका होता है । पूँछ के समीपस्थ छोर पर एक षट्कोणीय (hexagonal) प्लेट होती है जिसे पुच्छ प्लेट (tail plate) अथवा आधार प्लेट (basal plate) कहते हैं । इसकी मोटाई लगभग 200 A° होती है । इस प्लेट की निचली सतह पर छः पुच्छ तन्तु (tail fibres) होते हैं । पुच्छ तंतु की लम्बाई 1500 A° होती है । पुच्छ तन्तु के दो मुख्य कार्य है - (1) इनकी सहायता से विभोजी जीवाणु की सतह से चिपका रहता है, तथा (2) इनसे स्रावित एन्जाइम जीवाणु की भित्ति के लयन (lysis) में सहायक होते हैं ।

जीवाणुभोजी सिर न्यूक्लियों कैपसिड (nucleo-capsid) से बना होता है । प्रोटीन कवच के सभी जीवाणु एक समान होते हैं । सिर के केन्द्र में DNA का एक केन्द्रीय क्रो (central core) होता है जो प्रोटीन के एक अलग आवरण से ढका होता है । आंतरिक कवच का निर्माण करने वाली प्रोटीन उपइकाइयाँ केपसोमार्स कहलाती है । विभिन्न प्रकार के विषाणुओं में केपसोमार्स की संख्या 8 से 812 होती है ।

अधिकांश विभोजियों में DNA द्विरज्जुकी (double stranded) होता है । प्रत्येक विभोजी में इसकी मात्रा लगभग 6 $\times$ 10-3 माइक्रोग्राम होती है । DNA विभोजी का आनुवांशिक पदार्थ DNA में विभोजी के आनुवांशिक लक्षण निहित होते हैं ये संक्रमण (infection) के मुख्य कारक है ।

जीवाणुभोजी की पुनरावृत्ति

जीवाणुभोजी की पुनरावृत्ति चार चरणों में होती है : -

(i) संक्रमण (Infection);

(ii) संक्रमित कोशिका में विभोजी के घटकों का संश्लेषण (Synthesis of phage components in the infected cell).

(iii) नये विभोजी कण का समायोजन (Assembly of new phage particle).

(iv) विभोजी का परपोषी कोशिका से विमोचन (Liberation of phage particle from the host cell).

(i) **संक्रमण** : सर्वप्रथम विभोजी की परपोषी की सतह पर अधिशोषण (adsorption) होता है, तथा इसके बाद न्यूक्लिक अम्लों का परपोषी (host) कोशिका में प्रवेश होता है । विभोजी का परपोषी की सतह पर अधिशोषण परपोषी तथा विषाणु की पारस्परिक बंधुता पर निर्भर करता है । केवल एक विशिष्ट विभोजी ही एक निश्चित प्रकार की परपोषी

कोशिकाओं को संक्रमित कर सकते हैं । कुछ कोलीफाज़ो (coliphages) में बंधुता इस सीमा तक होती है कि इनका अधिशोषण जीवाणु कोशिका भित्ति में केवल एक निश्चित क्षेत्र में होता है जिसे ग्राही क्षेत्र (receptor site) कहते हैं । विभोजी का परपोषी को सतह पर अधिशोषण का कार्य पुच्छ तन्तुओं (Tail fibres) द्वारा किया जाता है ।

जीवाणुभोजी का परपोषी की सतह पर अधिशोषण के पश्चात् जीवाणुभोजी द्वारा एक विशेष प्रकार एन्जाइम विपाणु - का एन्जाइम स्रावित होता है जो लाइसोजाइम के समान जीवाणु की कोशिका भित्ति में उपस्थित'

म्यूरेमिक अम्ल-पैप्टाइड सम्मिश्र का जलीय अपघटन करता है । इस एन्जाइम से जीवाणु की कोशिका भिति में सूक्ष्म छिद्र बन जाता है जिसके द्वारा न्यूक्लिक । अम्ल जीवाणु में प्रवेश करते हैं । जीवाणुभोजी संक्रमण निम्न प्रकार से होता है: -

(i) परपोषी की सतह पर पहुँचने के बाद विभोजी के पुच्छ तन्तुओं के मुड़ जाने से पुच्छ प्लेट (tail plate) परपोषी की कोशिका भित्ति के सम्पर्क में आ जाती है ।

(ii) पुच्छ आच्छद (tail sheath) आकुचन (contraction) होता है तथा पुच्छ का केन्द्रीय नलिकाकार भाग परपोषी के प्रोटीन आवरण में सुई के समान प्रवेश करता है ।

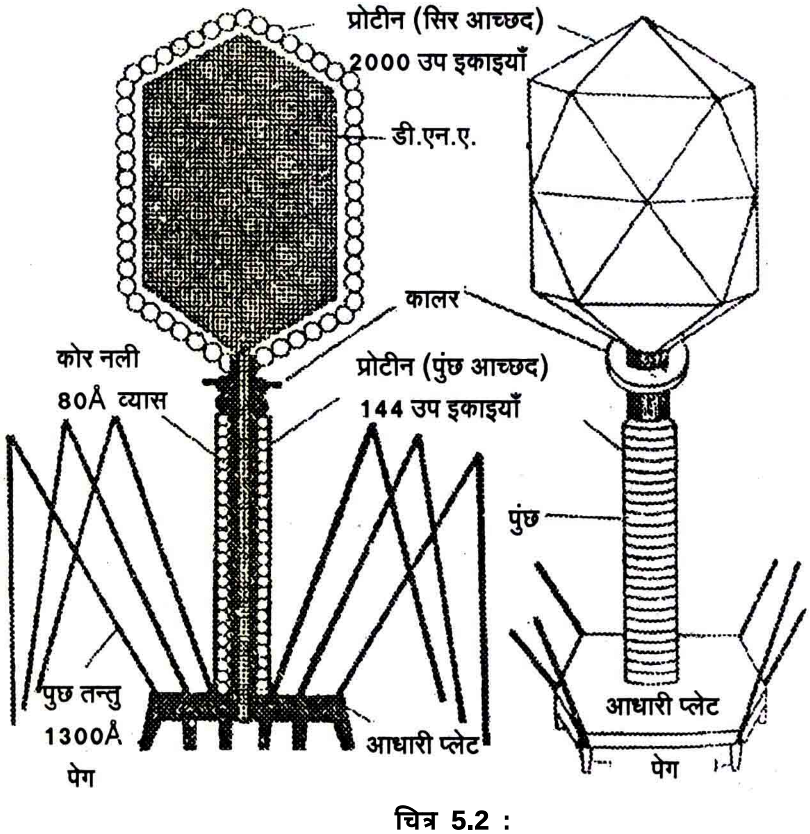

चित्र 5.2 :

(iii) इस सुई, द्रारा विषाणु का सम्पूर्ण न्यूक्लिक अम्ल परपोषी कोशिका में स्थानान्तरित हो जाता है ।

(iv) न्यूक्लिक अस्त के स्थानान्तरण के पश्चात् भी विभोजी का प्रोटीन आवरण अथवा परपोषी कोशिका से चिपका रहता है। न्यूक्लिक अम्ल रहित प्रोटीन कवच गोस्ट कहलाता है ।

(v) प्रत्येक परपोषी कोशिका में संक्रमण केवल एक ही विभोजी द्‌वारा होता है ।

(vi) विभोजी से न्यूक्लिक अम्ल निकल जाने के पश्चात् इसकी संक्रमण क्षमता नष्ट हो जाती है।

संक्रमित कोशिका में विभोजी के घटकों का संश्लेषण

विभोजी द्‌वारा परपोषी कोशिका में जीवाणुभोजी का स्थानान्तरित न्यूक्लिक अम्ल जीवाणुभोजी के उपापचय (metabolism) को परिवर्तित कर देता है । ये न्यूक्लिक अम्ल परपोषी जीवाणु कोशिका के उपापचय को नये विभोजी के घटकों का निर्माण करते हैं । विभोजी के न्यूक्लिक अम्ल अपनी पुनरावृत्ति के टेम्पलेट का कार्य करते हैं, तथा विषाणु विशिष्ट दूत RNA (viral specific m-RNA) का संश्लेषण करते हैं । जिसके फलस्वरूप विभोजी के प्रोटीन का निर्माण होता है ।

विभोजी के नये DNA' का संश्लेषण दोनों रज्जुकाओं के विकुंडन से प्रारम्भ होता है । अर्धसंरक्षी पुनरावृत्ति semi-conservative replication) द्‌वारा DNA की एक पीढ़ी के खण्डों का विनिमय दूसरी पीढ़ी के खण्डों से होता है जिसके फलस्वरूप संकर DNA अणु (hybrid DNA molecules) बनते हैं । DNA के संश्लेषण के पश्चात् परपोषी कोशिका में नये प्रकार के प्रोटीन (समयोत्तर प्रोटीन late protein) बनते हैं । समयोत्तर प्रोटीन विभोजी के कवच (आवरण) में पाये जाने वाले प्रोटीन होते हैं । इनका संश्लेषण पार्लिपेप्टाइड शृंखला के निर्माण से प्रारम्भ होता है । ये प्रोटीन आवरण की उप -इकाइयाँ अथवा भाजनांशक बनाते हैं । पुनरावृत्ति में ही प्रोटीन-लाइसोजाइम का संश्लेषण भी होता है ।

नये विभोजी कणों का समायोजन

न्यूक्लिक अम्ल तथा प्रोटीन घटकों का विभोजी कण में समायोजन को परिपक्वन (maturation) कहते हैं । यह प्रक्रिया जीनोम (genome) द्‌वारा नियंत्रित होती है । सर्वप्रथम विभोजी के सिर के निर्माण के लिए DNA अणु का क्रिस्टलीय रूप में संघनन (condensation) होता है । इसके बाद DNA के चारों और प्रोटीन उपइकाइयाँ एकत्रित होकर सिर का प्रोटीन आवरण बनाती है तथा पूँछ का समायोजन भी प्रारम्भ हो जाता है । इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम पूँछ का केन्द्रीय भाग पुच्छ प्लेट से संलग्न होता है तथा केन्द्रीय भाग के चारों ओर आच्छद (sheath) का निर्माण हो जाता है । इसके उपरान्त पूँछ सिर के आधार पर संलग्न हो जाती है । पुच्छ तन्तु (tail fibres) पुच्छ प्लेट से जुड़ जाते हैं ।

विभोजी कणों का परपोषी कोशिका से विमोचन

समयोत्तर प्रोटीन्स में एक लयनकारी विकर एन्डोलाइसिन भी होता है इस विकार द्‌वारा जीवाणु की कोशिका भित्ति फट जाती है । इस प्रक्रिया को लयन या लाइसिस कहते है । इसके फलस्वरूप जीवाणु कोशिका से जीवाणुभोजी के कण विमुक्त हो जाते हैं ।

तन्तुमय विभोजी में विषाणु लयन द्वारा 'नहीं होते । ये कोशिका भित्ति के बाह्य वलय (outfolding) बनाने से लगातार विमुक्त होते हैं । विषाणु DNA जैसे ही कोशिका कला से बाहर निकलता है । ये नये निर्मित या पुराने प्रोटीन अणुओं को बांध लेता है । जिससे प्रोटीन आवरण बन जाता है । इस प्रकार लम्बे समय तक विषाणु बनते रहते हैं तथा कोशिका फटती नहीं है ।

विभोजी कणों का आर्थिक महत्व

1. विभोजी अनेक प्रकार के रोगजनक जीवाणुओं के उपचार में काम लिया जाता है ।
2. यह प्रदूषित जल में उपस्थित रोगजनक जीवाणुओं के लयन में सहायक होते हैं अत: इन्हें अपमार्जक के रूप में उपयोग लिया जाता है ।
3. अंतरिक्ष सूक्ष्मजैविकी (space microbiology) में लयजनक संवर्धनों (lysogenic cultures) का उपयोग विकिरण संसूचक (radiation detector) के रूप में किया जाता है । इनका प्रयोग रूस द्वारा वासटाक- 2 (Vostok) नामक अंतरिक्ष यान में किया गया ।
4. विभोज कण प्रतिजैविक (antibiotic) में उत्पादन में बाधक होते हैं ।
5. संयत विभोजी (temperate phage) एक जीवाणु कोशिका से दूसरी जीवाणु कोशिका तक आनुवांशिक पदार्थ के स्थानान्तरण (transduction) में सहायक होते हैं ।

जीवाणुभोजी का जीवन चक्र (Life cycle of Bacteriophage)

- जीवाणुभोजी दो प्रकार के होता हैं - (1) उग्र (virulent) अथवा लयनकारी (lytic) तथा (2) संयत (Temperate) अथवा लयजनक (lysogenous) । उपभोजी नये विभोजीकण बनाने के बाद संक्रमित जीवाणु कोशिका को नष्ट कर देते हैं । इसे लयनकारी चक्र (lytic cycle) कहते हैं । उदाहरण T4 विभोजी ।
- संयत भोजी जीवाणु कोशिका को लयन नहीं करते । भोजी का DNA जीवाणु के DNA से जुड़ जाता है । जीवाणु DNA की पुनरावृति के साथ भोजी DNA का पुनरावर्तन कई संततियों तक होता रहता है इसे लयजनकता (Lysogeny) कहते हैं । उदाहरण - Phage

उग्रभोजी का जीवन चक्र

- इस प्रक्रिया में निम्न चरणों में समस्तन होती है: -
  - (i) **अधिशोषण** : भोजी पुच्छ तन्तुओं की सहायता से जीवाणु की कोशिका भित्ति पर विशिष्ट ग्राही क्षेत्र (specific receptor site) पर जुड़ जाते हैं । इनके पुच्छ तन्तुओं के मुड़ने (bend) से पुच्छ प्लेट की पुच्छ शंकुओं जीवाणु सतह से जुड़ जाती है ।
  - (ii) **विषाणु DNA का जीवाणु कोशिका में प्रवेश** : विभोजी की पूँछ आच्छद (Sheath) सिकुड़ने से पूँछ कोड (core) भित्ति एव कला से होती हुई अंदर धंस जाती है । इस छोड द्वारा DNA कोशिका में पहुँच जाता है तथा प्रोटीन आवरण कोशिका के बाहर रह जाता है ।

भोजी एक विशेष प्रकार के विकर से जीवाणु भित्ति के म्यूरेमिक अम्ल पेप्टाइड का जलीय अपघटन से सूक्ष्म छिद्र बनाते हैं जिनके द्वारा भोजी का DNA जीवाणु कोशिका में प्रवेश करता है । जीवाणु DNA खंडित हो जाता है तथा भोजी DNA जीवाणु कोशिका का उपयोग करके भोजी पर है का प्रतिगुणन एवं भोजी की प्रोटीन्स का निर्माण करता है । भोजी DNA एवं प्रोटीन का समयोजन होने पर नये भोजी बनते हैं । समयोत्तर प्रोटीन्स (late proteins) में एक लायसोजाइम (lysozyme) भी होता है जिसे पात endolysin) कहते हैं । इसकी क्रिया से जीवाणु की कोशिका भित्ति फट जाती है व भोजी मुक्त हो जाते हैं । इस क्रिया को लयन (lysis) कहते हैं । एक जीवाणु से लगभग 200 भोजी विमुक्त होते हैं ।

जीवाणु के संक्रमण के प्रारम्भ से जीवाणु नष्ट होकर भोजी के विमुक्त होने तक के बीच का समय गुप्त काल (latent period) कहलाता है ।

संयतभोजी का जीवन- चक्र

λ भोजी का DNA जीवाणु की कोशिका में प्रवेश करने पर भोजी DNA का जीवाणु के DNA में समाकलन (integration) हो जाता है । इस भोजी DNA को प्रोफेज (Prophage) अथवा प्रोवायरस (provirus) कहते हैं । जीवाणु DNA के प्रतिगुणन के साथ भोजी DNA का भी प्रतिगुणन होता है तथा संक्रमित जीवाणु कोशिका जीवित रहती है । इसे लयजात अवस्था कहते हैं । एक दमनकारी प्रोटीन (repressor protein) जीवाणु कोशिका को लयन से रोकती है । दमनकारी प्रोटीन की निवक्रियता भोजी का DNA जीवाणु DNA से पृथक हो जाता है । इसे (induction) कहते है । इससे भोजी DNA लयनकारी हो जाता है । तथा फिर से लयनकरी जीवन चक्र होता है ।

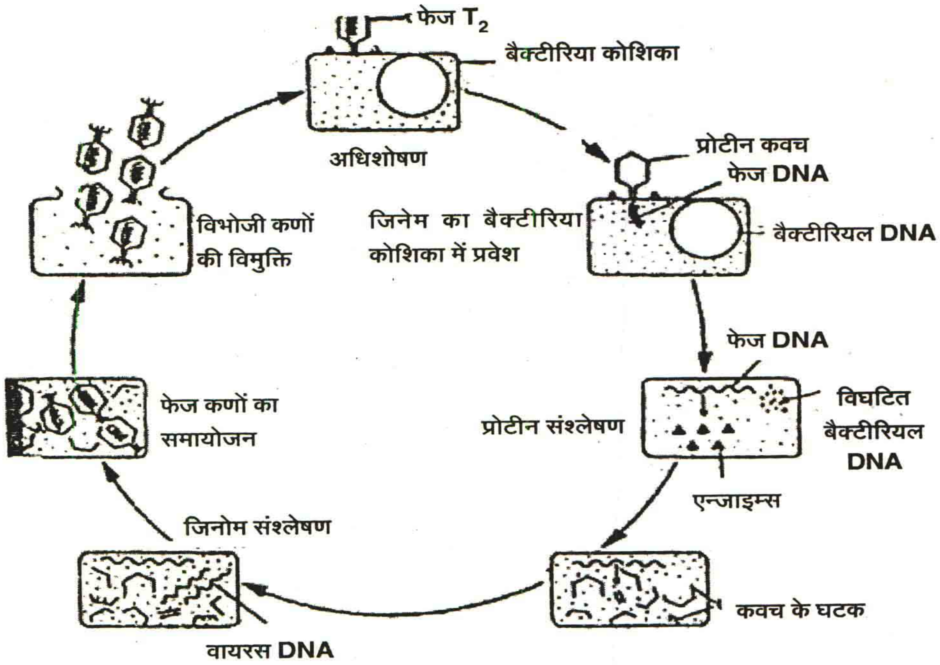

चित्र 5.3 : लययनकारी चक्र

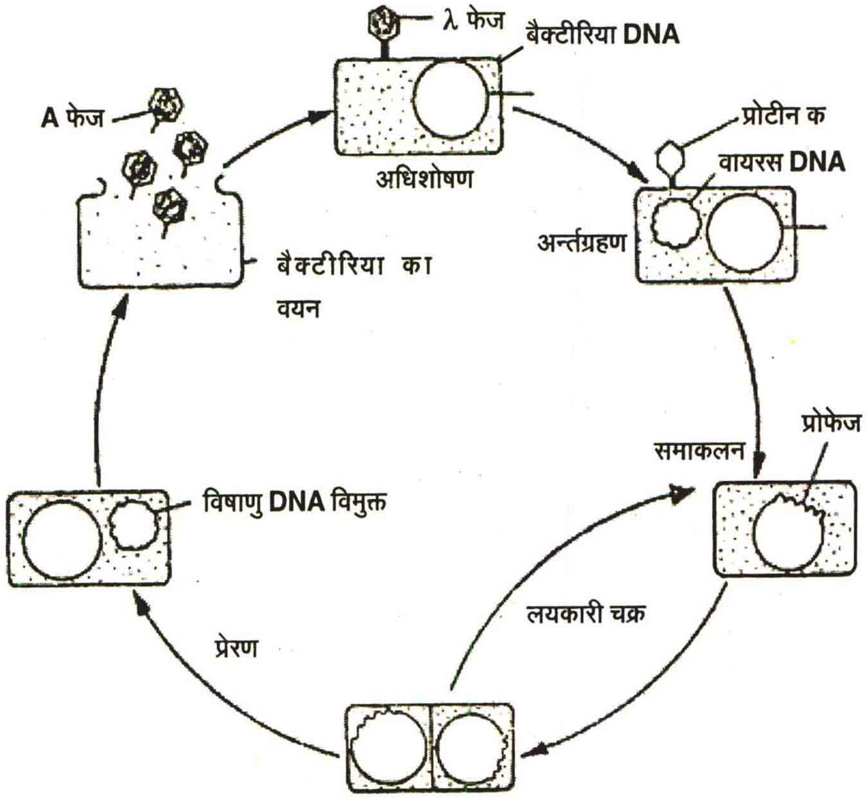

चित्र 5.4 : लयकारी चक्र

बोध प्रश्न - 4

1. जीवाणुभोजी से न्यूक्लिक अम्ल प्राय .... पाया जाता है ।
2. जीवाणुभोजी का सिर......... व......... का बना होता है ।
3. जीवाणुभोजी में............ एवं........... जीवन चक्र होता है ।

5.8 सारांश

माइकोप्लाज्मा (mycoplasma) यह एक कोशिकीय प्रोकेरियोटिक सूक्ष्म जीव है । इनमें कोशिका भित्ति का अभाव होता है । ये ग्राम अग्राही (Gram negative) है । इनके कोशिका में DNA, राइबोसोम, प्रोटीन कोलेस्टीरोल एव रिक्ति एवं रिक्तियाँ पाई जाती है । इसमें जनन विखण्डन (Fragmentation), द्विभाजन (binary fission) मुकुलन (budding) एवं प्रारम्भिक संरचनाओं (elementary) द्वारा होता है । माइकोप्लाज्मा मनुष्यों, जन्तुओं एवं पादपों में विभिन्न रोग उत्पन्न करते हैं ।

विषाणु (Viruses) : ये अविकल्पी अन्तराकोशिकीय जीव है । विषाणु सजीव एवं निर्जीव दोनों के लक्षण दर्शाते हैं । इनमें आनुवांशिक पदार्थ DNA या RNA पाया जाता है, जो कि प्रोटीन के आवरण से आच्छेदित होता है । परिपक्व विषाणुकण वायरोन (virion) कहलाता है । विषाणु पापपों, जन्तुओं एवं जीवाणुओं को संक्रकित करते हैं ।

5.7 शब्दावली

रोगकारक (Pathogenic) : रोग उत्पन्न करने वाला ।

वायरोन (Virion) परिपक्व विषाणु कण ।

लयनकारी चक्र (Lytic cycle) : उपभोजी नये विभोजीकण बनाने के बाद संक्रकित जीवाणु कोशिका को नष्ट कर देते हैं।

गुप्त काल (Latent period) : जीवाणु के संक्रमण के प्रारम्भ से जीवाणु नष्ट होकर भोजी के विमुक्त होने तक के बीच का समय गुप्त काल कहलाता है ।

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

त्रिवेदी, शर्मा, धनकड - 2006 सूक्ष्म जैविय एवं अपुष्पोद्बिद विविधताएँ, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

बी. आर. वशिष्ठ - 2004, एल्गी, एस. चाँद एण्ड क. नई दिल्ली ।

सिंह, पाण्डे, जैन - 2000, डाइवर्सिटी ऑफ माइक्रोब एण्ड क्रिप्टोगेम्स, रस्तोगी पुब्लिकेशन्स, मेरठ ।

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. बहुरुपी
2. प्लाज्मा झिल्ली
3. DNA, RNA, जीवद्रव्य, राइबोजोम, प्रोटीन,
4. टेट्रासाक्लिन एवं क्लोरेमफेनिकोल

बोध प्रश्न - 2

1. मोइकोप्लाज्मा फटमेन्टेन्स
2. कीटों द्वारा एवं कलम (grafting) द्वारा
3. प्रारम्भिक संरचनाओं द्वारा
4. फ्राइड एग (Freidegg)

बोध प्रश्न - 3

1. प्रोटीन एवं न्यक्लिइक अम्ल
2. RNA
3. सत्य
4. सत्य

बोध प्रश्न - 4

1. DNA
2. प्रोटीन एवं DNA (न्यूक्लिइक अम्ल)
3. लयनकारी एवं लयजनक

5.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. माइकोप्लाज्मा की संरचना एवं जनन का वर्णन कीजिए ।
2. माइकोप्लाज्मा के आर्थिक महत्व क्या है?
3. विषाणुओं की संरचना एवं जीवन चक्र या मल्टीप्लिकेशन का वर्णन कीजिए ।
4. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये ।

   (अ) माइकोप्लाज्मा की संरचना

   (ब) TMX

   (स) बैक्टिरिया फाज

   (द) बैक्टिरिया फाज का जीवन चक्र

इकाई 6 : कवको के सामान्य लक्षण - प्राप्ति स्थान,सूकाय संरचना एवं प्रजनन (General characters of fungi-Occurrence, Thallus organization and reproduction)

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.2.1 कवकों के सामान्य लक्षण

6.3 सूकाय संरचना

6.4 पोषण (nutrition)

6.5 प्रजनन

6.5.1 कायिक प्रजनन

6.5.2 अलैंगिक प्रजनन

6.5.3 लैंगिक प्रजनन

6.6 इकाई सारांश

6.7 संदर्भ ग्रन्थ

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.9 अभ्यास कार्य

6.1 उद्देश्य

इस इकाई में हम एक रोचक पादप समूह का अध्ययन करेगें । ये रोचक पादप समूह कवक हैं जो सूक्ष्म होते है । इन पादपों को इनकी संरचना के आधार पर अलग जगत माइकोटा में भी रखा गया है । इनके शरीर पतले धागे के समान तन्तुओं का बना होता है । तथा जड़, तना, पत्ति आदि भाग नहीं होते है । पादप शरीर की संरचना बहुत ही सरल प्रकार की होती है । ये अपना भोजन भी निर्माण करने में असक्षम होते है । इस अध्याय से हम इनके सामान्य गुण, संरचना, पोषण एवं जनन् के बारे में जान सकेंगे ।

6.2 प्रस्तावना

लैटिन शब्द (Fungus) का अर्थ छत्रक (mushroom) से है । लिनियस ने इस शब्द का प्रयोग पादपों के एक समूह के लिये किया । इकलर (Eichler) ने एक संवर्ग (Class) की मान्यता दी । बाद में संवर्ग फंजाई को तीन समूहों (i) जीवाणुओं, (ii) श्लेष्म फफूँदियों तथा (iii) सत्य कवकों में विभक्त किया गया ।

बैसे (Bessey 1950) के अनुसार कवक पर्णहरित असंवहनी पादप हैं जिन्हें प्रजनन तथा कायिक संरचनाओं के आधार पर, जीवाणुओं व माइसेटोजुआ के अतिरिक्त, शैवालों या उच्च पादपों के साथ में नहीं रखा जा सकता । **एलेक्सोपोलस** (Alexopoulos) के अनुसार, ये यूकेरियोटी, बीजाणुधारी, पर्णहीरतरहित सजीव है जो लैंगिक तथा अलैंगिक प्रजनन करते हैं तथा जिनकी कोशाभित्ति काइटिन या सेलूलोज अथवा दोनों ही पदार्थों की बनी होती हैं ।

इनका अध्ययन वनस्पतिशास्त्र की एक महत्वपूर्ण शाखा है जिसे **कवक विज्ञान** या **माइकोलॉजी** (Mycology) कहते हैं (Gr. Mykes-mushroom; logo-study)

6.2.1 कवकों के सामान्य लक्षण

1. **सूकाय संरचना** (Thallus structure) : कवक सूकाय पादप हैं । कुछ सदस्यों में सूकाय नग्न जीवद्रव्यक (Plasmodium) के रूप में होता है तो कुछ अन्य में एककोशिकीय । अधिकांश कवकों में पादप तन्तुमय होता है । तन्तु को **कवकसूत्र** (hyphae) कहते हैं, तथा सामूहिक रूप से यह एक जाल सदृश्य संरचना बनाती हैं जो कवक जाल (mycelium) कही जाती है । कवकसूत्र **पटहीन** या **पटयुक्त** होते हैं । पट के केन्द्र में एक सरल छिद्र होता है । कुछ कवकों में पट छिद्र के चारों ओर ढोलाकाकार स्थूलन होता है, ऐसे पट, को **डोल छिद्री पट** (dolipore septa) कहते हैं ।

2. **कोशिका भित्ति** (Cell wall) : श्लेष्म फफुंदी (slime molds) को छोड्कर शेष सभी कवकों में सुस्पष्ट कोशिका भित्ति पाई जाती है । अधिकांश कवकों में यह काइटिन की बनी होती है पर कुछ में सेलुलोज भी होता है ।

3. **कोशिका द्रव्य** (Cytoplasm) : साइटोप्लाज्म धानीयुक्त (vacuolated) होता है जिसके बाहर जीवद्रव्य कला (plasma -membrane) होती है । साइटोप्लाज्म में अन्त: प्रद्रव्यी जालिका (endoplasmic reticulum), माइटोकॉन्ड्रिया (mitochondria) राइबोसोम्स (ribosomes), गोल्जीकाय (golgibodies) इत्यादि कोशिकांग पाई जाती हैं । लवकों (plastids) का अभाव होता है ।

4. **केन्द्रक** (nucleus) : केन्द्रक यूकेरियोटीक (eukaryotic) होता है इनकी संख्या एक, दो या अधिक हो सकती है । कवकसूत्र में उपस्थित केन्द्रक **सम** या **विषम केन्द्रकी** (homo-or heterokaryotic) हो सकते हैं । कवकसूत्र में कोशिकायें अगुणित (haploid), केन्द्रक युग्मी (dikaryotic) या द्विगुणित (diploid) होती है ।

5. **संचित खाद्य** (Reserve food) ग्लाइकोजन या वसा संचित खाद्य पदार्थ के रूप में मिलता है, माँड (starch) नहीं पाया जाता ।

6. **कवक सूत्र की वृद्धि** (Growth of hyphae) शीर्षस्थ भाग के वृद्धि से होती है । **चलनशीलता** (motility) कवक अचल होते हैं । निम्न श्रेणी के कवकों में चल जनन कोशिकायें पाई जाती हैं जो एक-या द्विकशाभिक होती है । कशाभिकाएँ दो प्रकार की होती हैं (i) **प्रतोद कशाभिका** (whiplash flagella) व (ii) **कर्च कशाभिका** (tinsel flagella) । प्रतोद कशाभिका

की सतह चिकनी होती है, कर्च कशाभिका की सतह पर अनेक सूक्ष्म रोम पाये जाते हैं जिन्हें मास्टीगोनीम्स (mastigonemes) कहते हैं ।

7. **पोषण** (Nutrition) पर्णहरित (chlorophyll) का अभाव होता है । अत: प्रकाश संश्लेषण नहीं होता । कवक **परपोषित** (heterotrophic) होते हैं और परजीवी (parasitic), मृतोपजीवी (saprophytic) या सहजीवी (symbiotic) के रूप में जीवन निर्वाह करते हैं ।

8. **प्रजनन** (Reproduction) : यह तीन प्रकार का होता है कायिक (vegetative) (ii) अलैंगिक (asexual) तथा (iii) लैंगिक (sexual) ।

एक कोशिकीय कवकों में पूरा सूकाय ही जनन इकाई के रूप में परिवर्तित हो जाता है । इसे **पूर्णकायफलिक** (holocarpic) कहते हैं । जिन कवकों में सूकाय का कुछ भाग ही जनन संरचना बनाती है, उसे **अंशकाय - फलिक** (eucarpic) कहते हैं ।

9. **कायिक प्रजनन** : यह निम्न विधियों से होता है । (i) विखण्डन (fragmentation), (ii)द्विविभाजन (binary fission) व (iii) मुकुलन (budding) ।

अलैंगिक प्रजनन : यह प्राय : अनुकूल परिस्थितियों में **बीजाणुओं** (spores) द्वारा होता है । अलैंगिक बीजाणु **चलबीजाणु** (zoospore), **अचलबीजाणु** (aplanospore), या कोनीडियम (conidium), आदि होते हैं।

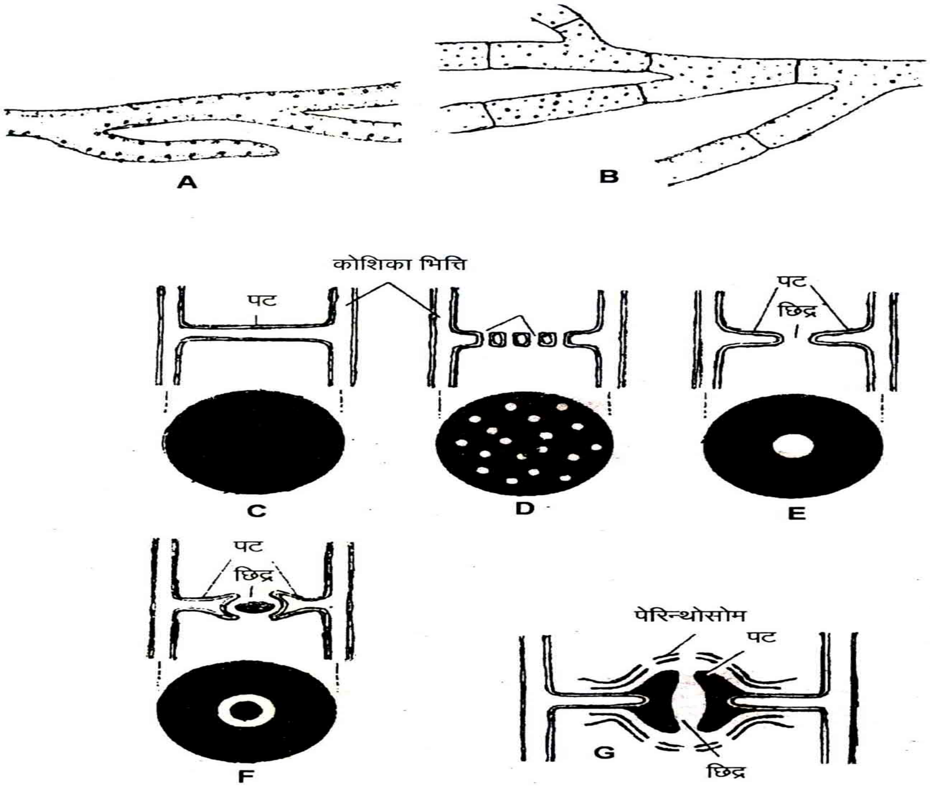

चित्र 6.1 : कवक तन्तु एवं विभिन्न प्रकार के पट - A. संकोशिक कवकजाल ; B. पटयुक्त कवकजाल ; C. ठोस पट ; D. छिद्रित पट ; E. सरल छिद्रयुक्त पट ; F. बार्डर पीट युक्त छिद्रित पट; G. डोलीपोर पट

10. **लैंगिक प्रजनन** : कवकों के एक संवर्ग ड्यूटेरोमाइसिटीज को छोडकर शेष सभी सदस्यों में लैंगिक प्रजनन पाया जाता है । लैगिक जनन तीन अवस्थाओं में पूर्ण होता है ।

(i) **कोशिकाद्रव्य लयन** (Plasmogamy) इसमें अगुणित केन्द्रक वाले दो समर्थ तथा निषेच्य जीवद्रव्यको का संलयन होता है । इसे कोशिकाद्रव्य लवन कहते हैं । दोनों युग्मको को केन्द्रक एक-दूसरे के समीप आ जाते हैं ।

(ii) **केन्द्रकलयन** (Karyogamy) : कोशिकाद्रव्य लयन में समीप आये निषेच्य केन्द्रक सायुज्जित होकर एक द्विगुणित (diploid) केन्द्रक का निर्माण करते हैं इस क्रिया को केन्द्रकलयन कहते हैं । निम्न श्रेणी के कवकों में कोशिकाद्रव्य लयन के तुरन्त बाद केन्द्रकों का सायुञ्जन हो जाता है परन्तु संवर्ग एस्कोमाइसिटीज व बेसीडियोमाइसिटीज के सदस्यों में निषेच्य केन्द्रक युग्मों (pairs) के रूप में विद्यमान रहते हैं । इन युग्मों को केन्द्रक युग्म (dikaryon) कहते हैं । जीवन चक्र की इस अवस्था को द्विकेन्द्रक प्रावस्था (dikaryotic phase) कहते हैं । कुछ समय पश्चात् केन्द्रक लयन द्वारा द्विगुणित (diploid) केन्द्रक बनता है ।

(iii) **अर्धसूत्रण** (Meiosis) : जीवन चक्र के अन्त में द्विगुणित केन्द्रक में अर्द्धसूत्री विभाजन होता है और अगुणित अवस्था पुनःस्थापित हो जाती है ।

बोध प्रश्न 1

1. कवकों में पर्णहरित का ....होता है
2. कवकों की कोशिका भित्ति ....की होती है ।
3. दोलकाकार स्थूलन युक्त पट्ट छिद्र वाले पट्ट का क्या नाम है?
   ....
   ....
4. कवक सूत्रों में वृद्धि किस भाग में होती है?
   ....
   ....

6.3 सूकाय संरचना (Thallus Structure)

कवकों के सूकाय में काफी भिन्नता पाई जाती है । श्लेष्म फफूंदियों में पादपकाय जीवद्रव्यक (plasmodium) या कूट **जीवद्रव्यक** (pseudoplasmodium) के रूप में पाया जाता है । **कूट-जीवद्रव्यक प्ररस** (protoplasm) की एक अनावृत (naked), बहुकेन्द्रकी संहति (mass) है जो अमीबीय गति से दर्शाती है ।

सत्य कवक एककोशिकीय जैसे यीस्ट **सिनकाइटियम** (Synchytrium) । या बहुकोशिकीय होते हैं । यह तन्तुमय होते हैं । तन्तु को **कवक-सूत्र** (hyphae) कहते हैं । कवकों में कवक-सूत्र समूह में होते हैं । इस समूह को **कवकजाल** (mycelium) कहते हैं ।

निम्न श्रेणी के कवकों जैसे **म्यूकर** (Mucor), **एल्बूगो** (Albugo) में कवकसूत्र पटहीन व **संकोशिक** (Coenocytic) होते हैं । पट का निर्माण प्रजनन अंगों के परिवर्धन के समय होता है । पट अनुप्रस्थ पट्टिका के रूप में होती हैं व कोई छिद्र नहीं होता । उच्च श्रेणी के कवकों में कवक सूत्र पटयुक्त होते हैं तथा पट के केन्द्र में एक छिद्र होता है । पटो के कारण कवक सूत्र कई खण्डों में बंट जाता है । प्रत्येक खण्ड में एक, दो या अनेक केन्द्रक उपस्थित होते हैं । पट में उपस्थित छिद्र के द्वारा कोशिकाद्रव्य, केन्द्रक इत्यादि एक खण्ड से दूसरे में जा सकते हैं, एसकोमाइसिटीज वर्ग के कवकों में यह छिद्र सरल होते हैं । **बेसीडियोमाइसिटीज** (Basidiomycetes) के कवकों में छिद्र के चारों ओर ढोलकाकार स्थूलन उपस्थित होता है । इसे डोलछिद्री पट कहते हैं ।

कवक सूत्र कुछ रुपान्तरित संरचनाऐं बनाती है । जैसे

1. **आसंगांग** (Appressorium) यह संक्रमण के समय बनता है । यह कवक को परपोषी से चिपकने में सहायता प्रदान करता है, इसकी संरचना गोल पुटिका (vesicle) के समान होती है । उदाहरण **एरीसाइफी** (Erysiphe), **पक्सीनिया** (puccinia) । **पक्सीनिया** में बीजाणु के अंकुरण के समय आसंगांग बनते हैं ।

2. **चूषकांग** (Haustorium) : परजीवी कवक में पोषक (host) कोशिकाओं से भोजन प्राप्त करने हेतु विशेष प्रकार की संरचनाओं का निर्माण करती है । जिन्हें चूषकांग कहते है, यह परजीवी कवकसूत्र से अतिवृद्धियों के रूप में निकलती हैं तथा परपोषी की कोशाभित्ति को भेदकर उसकी कोशिका में प्रवेश कर जाती हैं । इनके दारा स्त्रावित एन्जाइमों से पोषक कोशिका के प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट्स का अपघटन होता हैं । चूषकांग कई आकार के होते हैं । उदाहरण **एरीसाइफी** (Erysiphe) व स्कलेरोस्पोरा (Sclerospora) ।

3. **स्क्लेरोशियम** (Sclerotium) : स्कलेरोशिया प्राय: छोटी, गोलाकार या अण्डाकार दृढ़ु संरचनायें होती है जो कवक सूत्रों की बनी होता हैं । कवकसूत्रों की भित्ति काफी मोटी होती है । बाहर की तरफ के कवक सूत्र अधिक सघन होती है । तथा एक आवरण का निर्माण करती है । इसे रिन्ण (Rind) कहते है । यह स्क्लेरोशियम की शुष्कन एवं वातावरणीय प्रभावों से रक्षा करता है । स्वलेरोशियम में सघन जाल कूट उत्तक उपस्थित होते हैं । इन कूट उत्तकों को प्लेक्टेन्हाइमा (plectenchyma) कहते है । यह दो प्रकार के होते है ।

- **A.** **दीर्घ ऊत्तक** (Prosenchyma). इस कवक ऊत्तक में कवक सूत्र न्यूनाधिक समानान्तर क्रम में व्यवस्थित, तथा आपस में एक-दूसरे से शिथिल रूप में अंतर्वलित होते हैं । यह लम्बी कोशिकाओं के रूप में होती है ।
- **B.** **कूट मृदुत्क या आभासी मृदुत्तक** (Pseudoparenchyma) इस ऊत्तक में कवकसूत्रों का व्यक्तित्व समाप्त हो चुका होता है यह गोलाकार या अण्डाकार कोशिकाओं की तरह होती हैं । स्कलेरोशियम एक कायिक विश्रान्ति अवस्था है । अनुकूल परिस्थितियों में इसका अंकुरण होता है और नया कवकजाल बनता है ।

4. **तन्तुजटा** (Rhizomorph) कुछ कवकों में कवकसूत्र के मूल के समान संरचना बनाते है । तन्तु जटा में शीर्षस्थ विभाज्यों तक उपस्थित होता है । इनके केन्द्र में पतली भित्तियों युक्त

लम्बी कोशिकायें होती हैं तथा बाहर की ओर मोटी भित्तियों वाली कोशिकाओं का बना छिलका (rind) होता है । बाहर की तरफ श्लेष्म का एक आवरण होता है । तन्तुजटा के माध्यम से कवक एक मूलतन्त्र से दूसरे मूलतन्त्र में फैल जाता है । तन्तुजटा में शुष्कन तथा अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता होती है । उदाहरण **आर्मिलेरिया मेलिया** (Armillaria mellea) है ।

6.4 पोषण (Nutrition)

कवकों में क्लोरोफिल एवं प्रकाश संश्लेषी वर्णकों का अभाव होता है । यह पोषण के लिये बाहरी कार्बनिक पदार्थो के स्त्रोत पर निर्भर करते है । अत: यह परपोषित (heterotrophic) होते हैं ।

पोषण के आधार पर कवक तीन प्रकार के होते हैं ।

1. **परजीवी** (Parasites) : यह अपना पोषण जन्तुओं तथा पादपों की जीवित कोशिकाओं से प्राप्त करते हैं । परजीवी से संक्रमित सजीव को परपोषी (host) कहते है । **परजीवी** कवकों में भोजन ग्रहण करने के लिये चूषकांगा होते हैं ।

परजीवी दो प्रकार के होते हैं :

(A) **अविकल्पी परजीवी** (Obligate parasites) : ये पोषण के लिये जीवित परपोषी पर निर्भर रहते है एवं परपोषी के अभाव में जीवन चक्र पूरा नहीं होता । उदाहरण **एल्बूगो, स्केलेस्पोरा, ऐरीसाइफी, क्लैवीसेप्स, पक्सीनिया हैं ।**

(B) **विकल्पी मृतोपजीवी** (Facultative saprophytes) : यह मुख्यत: परजीवी हैं पर जीवित परपोषी की अनुपस्थिति में मृत कार्बनिक पदार्थों से भी अपना पोषण प्राप्त कर सकते हैं जैसे **आस्टिलेगो, पीथियम, राइजोक्टोनिया, फ्यूजेरियम।**

2. **मृतोपजीवी** (Saprophytes) : अधिकांश कवक मृत कार्बनिक पदार्थ से अपना भोजन प्राप्त करते है । कवकजाल, पोषक पदार्थो का अवशोषण विलयन के रूप में करता है । कवक कुछ एन्जाइम स्रावित करते हैं, जो जटिल पदार्थो को सरल विलेय अणुओं में तोड़ देते हैं । जिससे इनका अवशोषण कवक द्वारा होता है ।

कवकों में दो प्रकार के मृतोपजीवी पहिचाने जा सकते हैं :

(A) **अविकल्पी मृतोपजीवी** (Obligate saprophytes) : यह केवल मृत पदार्थ पर ही जीवित रहते हैं उदाहरण : **म्यूकर म्यूसीडो** (Mucor mucedo), **मोर्केला** (Morchella), **पेजाइजा** (Peziza), **एगेरिकस** (Agaricus) आदि ।

(B) **विकल्पी परजीवी** (Faculative parasites) : ये कवक मुख्यता मृतोपजीवी होते हैं पर परजीवी के रूप में भी अपना जीवन व्यतित करते हैं उदाहरणार्थ **राइजोपस स्टोलोनिफर** (Rhizopus stolonifer), **पेनीसीलियम** (Penicillium), **ऐसपर्जिलस** (Aspergillus) इत्यादि ।

3. **सहजीवी** (Symbionts) : ये कवक दूसरे पादपों के साथ एक सम्बन्ध स्थापित करते हैं जो दोनों के लिये लाभकारी होता है । इस प्रकार के पारस्परिक लाभकारी सम्बन्ध को सहजीवन

(symbiosis) कहते हैं । उदाहरण : लाइकेन (Lichen) तथा कवक मूल (Mycorrhiza) में सह जीवता पाई जाती है ।

लाइकेन में कवक (Mycobiont) तथा शैवाल (Phycobiont) प्राय: नील हरित शैवाल में सहजीवता पायी जाती है । माइकोराज़ा या कवक मूल कवक पाइनस (Pinus) की मूल से सम्बन्ध रखते हैं तथा पाइनस वृक्ष को फोस्फोरस लवण अवशोषित करने में सहायक होते है । कवक मूल जड़ो के बाहर या जड़ो के भितरी उत्तको में पाये जाते है । जिन्हें क्रमश: बाह्य कवक मूल (ectomycorrhiza) और अन्त: कवक मूल (endomycorrhiza) कहते हैं ।

6.5.1 कायिक प्रजनन (Vegetative Reproduction)

कवकों में कायिक प्रजनन निम्न प्रकार के हैं :

1. **विखण्डन** (Fragmentation) : इन विधियों में कवक सूकाय अनेक खण्डों में विभक्त हो जाता है तथा प्रत्येक खण्ड नये पादप को जन्म देने में समर्थ होता है । कवक का विखण्डन बाह्य कारणों से होता है । कवक जाल के टुकड़े नये सूकाय बनाते हैं । कुछ **म्यूकर, ऐस्कोबोलस** में विखण्डन द्वारा प्रजनन सामान्य है । इनमें कवक सूत्र संघटक कोशिकाओं में टूट जाता है तथा प्रत्येक खण्ड एक बीजाणु का कार्य करता है । इस बीजाणु को **आर्थोबीजाणु** (arthrospores) या **ऑइडिया** (oidia) कहते हैं । ये शृंखलाबद्ध या स्वतंत्र होते है । इनके अंकुरण से नया कवक जाल बनता है । कुछ कवकों में कवकसूत्र के अंतस्थ या अन्तर्वेशी भागों में अतिरिक्त भोजन संचित होने एवं एक मोटी भित्ति के बनने से **क्लैमाइडोबीजाणु** (Chlamydospores) का निर्माण होता है। ये प्रतिरोधी होने के कारण विपरीत परिस्थितियों में कवक को जीवित रखती हैं । अनुकूल परिस्थितियों में इनके अंकुरण से नया कवकजाल बनता है । उदाहरण : **कोपराइनस** (Coprinus) ।

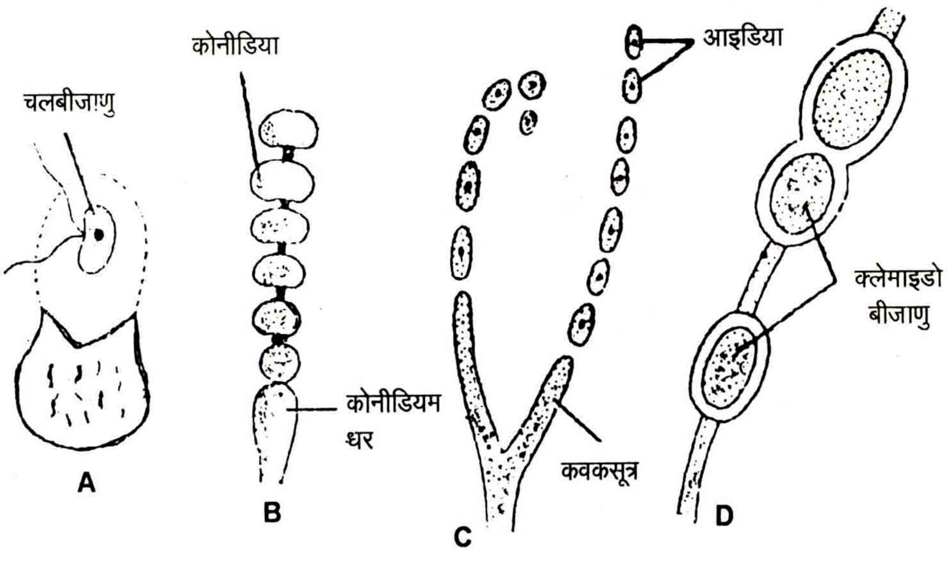

चित्र 6.2 : कवकों में अलैंगिक बीजाणु A. चलबीजाणु; B. कोनीडिया ; C. आइडिया; D. क्लेमाइडोबीजाणु

2. **द्विविभाजन** (Binary fission) : यह प्रजनन एक कोशिकीय कवकों (यीस्ट) में पाया जाता है । पादप कोशिका अनुप्रस्थ संकीर्णनन एवं भित्ति निर्माण द्वारा दो बराबर पुत्री कोशिकाओं (daughter cells) में विभक्त हो जाती हैं । प्रत्येक पुत्री कोशिका अलग हो कर एक नया सूकाय बनाती है ।

3. **मुकुलन** (Budding) : यह प्रजनन प्राय: यीस्ट में होता है । इस विधि में मातृ कोशिका से एक अतिवृद्धि (outgrowth) निकलती है जो आकार में बढ़ती जाती है । मातृ कोशिका का केन्द्रक विभाजित होकर दो केन्द्रक बनाता है । एक केन्द्रक इस अतिवृद्धि में कोशिकाओं के साथ गमन करता है । तद्पश्चात भित्ति पदार्थो की परत बन जाने से अतिवृद्धि का अपनी मातृ कोशिका से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है । बाद में यह अतिवृद्धि अपनी मातृ कोशिका से अलग हो जाती है ।

6.5.2 अलैंगिक जनन (Asexual Reproduction)

यह प्राय: बीजाणुओं (Spores) के द्वारा होता है । ये बीजाणु एक विशिष्ट कवक तन्तु पर बनते हैं । बीजाणु रंगहीन या काला, भूरा, पीला, हरा आदि रंगों के होते हैं । कवकों में मुख्य रूप से पाये जाने वाले बीजाणु निम्नलिखित प्रकार के हैं :

1. **चलबीजाणु** (Zoospores) चलबीजाणुओं का निर्माण अधिकांशत: जलीय कवकों में होता हैं । निर्माण थैली जैसी संरचनाओं, चलबीजाणुधणानीयाँ (zoosporangia), में कोशिका द्रव्य के विदलन (cleavage) द्वारा होता है । ये चलबीजाणु अनावृत, एक कोशिकीय, एक केन्द्रकी व चलनशील होती हैं । तीन प्रकार के चलबीजाणु होते हैं :

(A) **एक कशाभिकी चलबीजाणु** (Uniflagellated zoospores) : इनमें एक कशाभिकी पश्च भाग में होती है, यह कशाभिकी प्रतोद (whiplash) प्रकार की होती है, उदाहरण सिन्काइट्रियम (Synchytrium) । संवर्ग काइट्रीडिमोमाइसिटीज़ में इसी प्रकार के चल बीजाणु पाये जाते हैं ।

(B) संवर्ग हाइफो-काइट्रीडियोमाइसिटीज में एक कशाभिकी बीजाणु के अग्रभाग पर स्थित होती है।

(C) **द्विकशाभिकी चलबीजाणु** (biflagellate zoospores) : कशाभिकायें अग्रभाग या पार्श्व में लगी होती हैं, इनमें एक प्रतोद व दूसरी कूर्च कशाभिका होती है । संवर्ग ऊमाइसिटीज में इसी प्रकार के चल बीजाणु पाये जाते हैं । उदाहरण - **फाइटोप्थोरा** (Phytophthora), **एल्ब्यूगो** (Albugo) ।

2. **अचलबीजाणु या बीजाणुधानीय बीजाणु** (Aplanospores or Sporangiospores) : संवर्ग **जाइगोमाइसिटीज** के सदस्यों में इस प्रकार के बीजाणु बनते हैं । ये बीजाणुधानियों में बनते हैं । बीजाणुधानी के कवकसूत्र को बीजाणुधानीधर (sporangiophores) कहते हैं । ये बीजाणु अचल, एककोशिकीय, एक या बहुकेन्द्रकी गोल या दीर्घवृताकार होती है । बीजाणुओं का प्रकीर्णन जलया वायु द्वारा होता है । कभी-कभी सम्पूर्ण बीजाणुधानी ही अचल बीजाणु में परिवर्तित हो जाती है ।

3. **कोनीडिया या कोनीडियोबीजाणु** (Conidia or Condiospores) : कोनिडिया का निर्माण कवक सूत्रों पर ही होता है। कोनीडियाधारी कवकसूत्र को **कोनीडियमधर** (conidiophore)

कहते हैं । यह शाखित या अशाखित पटयुक्त या पटहीन हो सकता है । कोनीडिया एकल या श्रृंखलाबद्ध हो सकते हैं । कोनीडिया विभिन्न आमाप और आकृति के होते हैं ।

कुछ कवकों में कोनिडिया समूह के रूप में एकत्रित होकर फलन (frutification) बनाते हैं । कवकों में अलैंगिक फलन निम्न प्रकार हैं ।

(A) **एसरवुलस** (Acervulus) : परजीवी कवक जैसे कोलेटोट्राइकम परपोषी की बाह्यत्वचा या उपचर्म (cuticle) के नीचे कवकसूत्रों की सघन चटाई के रूप में एसरवुलस बनाते हैं । इनकी आकृति तश्तरी के समान होती है । कवकसूत्र चटाई से कोनीडियाधर निकलते हैं जिनके शीर्ष से कोनीडिया बनते हैं ।

(B) **स्पोरोडोकियम** (Sporodochium) : ये परजीवी कवकों द्वारा परपोषियों पर बनते हैं । इसमें कवकसूत्रों बिम्बाकार स्ट्रोमा (stroma) बनाते हैं । ये स्ट्रोमा परपोषी के ऊत्तकों को नष्ट कर बाहर निकल आते है । इनकी कवक तन्तुओं से छोटे शाखित कोनिडियाधर निकलते हैं जिसके शीर्ष पर कोनिडिया बनते हैं । उदाहरण फ्यूजेरियम (Fusarium) ।

(C) **कोरेमियम या सिन्नेमा** (Coremium or synnema) : इसमें कोनीडियाधर परस्पर एकत्रित होकर एक लम्बी स्तम्भ के समान संरचना बनाते हैं । जिसके निचले भाग में कोनीडियाधर परस्पर जुड़े हुये होते हैं तथा ऊपरी भाग में अलग-अलग रहते हैं । ऊपरी सतह पर कोनिडियम बनती है । उदाहरण **ग्रेफियम** (Graphium) **आर्थोबोट्रायम** (Arthobotryum) ।

(D) **पिक्नीडियम** (Pycnidium) : यह फ्लास्क की आकृति का अलैंगिक फलन है । इसकी भित्ति कूट मृदूत्तंक से निर्मित होती है । जिसे पेरिडियम (Peridium) कहते हैं । आन्तरिक सतह पर अनेक छोटे कोनीडियोधर लगे होते हैं जिनके शीर्ष पर कोनीडिया बनते हैं । यह बीजाणु **पिक्नीयोबीजाणु** (pycniospores) भी कहे जाते हैं । पिक्मीडियम एक छोटे से छिद्र द्वारा बाहर खुलती है । जैसे- **सेप्टोरिया** (Septoria) व **पक्सीनिया** (Puccinia) ।

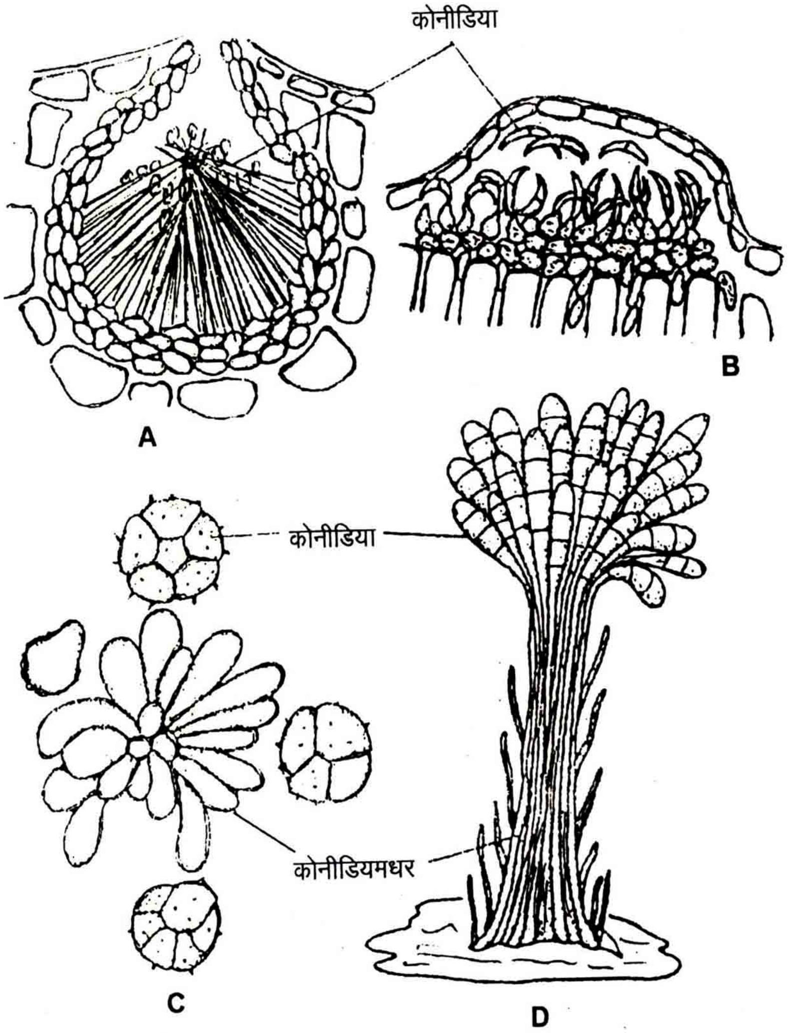

चित्र 6.3 : अलैंगिक फलनकाय :

A. पिक्चीडियम; B. एसरवुलस; C. स्पोरोडोकियम; D. सिन्नेमा

बोध प्रश्न 2

1. परजीवी कवक में पोषक कोशिकाओं से भोजन ग्रहण करने हेतु विशेष संरचना क्या है ?

   ....

   ....

2. कवक सूत्र द्वारा मूलरूपी संरचना क्या है?

   ....

   ....

3. म्यूकर एवं एगेरिकस अविकल्पी.......................... कवक हैं ।
4. फ्लास्क की आकृति वाला अलैंगिक फलन..................... है ।

6.5.3 लैंगिक प्रजनन (Sexual Reproduction)

लैंगिक प्रजनन तीन चरणों में पूरा होता है । पहले चरण में जीवद्रव्यको (protoplasts) का सायुज्यन होता है । फलस्वरूप अगुणित निषेच्य केन्द्रक एक दूसरे के समीप आ जाते हैं । यह चरण **कोशिकाद्रव्यलयन** (plasmogamy) कहलाता है। दूसरे चरण में केन्द्रकलयन (karyogamy) होता है जिनमें दो निषच्य केन्द्रकों का सायुज्यन होता है व एक द्विगुणित केन्द्रक (diploid nucleus) बन जाता है । तीसरे चरण में **अर्धसूत्री विभाजन** (meiosis) द्वारा कवक की अगुणित (haploid) अवस्था पुन: स्थापित हो जाती है ।

कवकों के जीवन चक्र में अगुणित अवस्था दीर्घ कालिक होती है । द्विगुणित अवस्था केवल युग्मनज (zygote) तक ही सीमित रहती है । इसमें अर्धसूत्री विभाजन, युग्मनज में ही होता है । सवंर्ग एस्को माइसिटीज एवं बेसिडियोमाइसिटीज के सदस्यों में केन्द्र युग्मकी अवस्था (dikaryotic phase) भी पाई जाती है ।

निषेच्यता के आधार पर कवक समजालिक (homothallic) या विषमजालिक (heterothallic) होते हैं । समजालिक कवक स्वजननक्षम (selffertile) होते हैं । जबकि विषमजालिक कवक स्वबन्ध्य (self sterile) होते हैं ।

लैंगिक जनन् के प्रकार

(1) **समयुग्मन** (Isogamy) : संलयित होने वाले युग्मक आकारिकी दृष्टि से समान होते हैं । ऐसे युग्मकों को समयुग्मक (isogametes) कहते हैं । समयुग्मक चलनशील (motile) उदाहरण सिन्काइट्रियम Synchytrium) या अचल (उदाहरण पाइलोबोलस Pilobolus) हो सकते हैं । समयुग्मन से बने युग्मनज को युग्माणु (zygospore) कहते हैं ।

(2) **दो असमयुग्मन** (Anisogamy) : इसमें दो आकारिकीय दृष्टि से असमान युग्मकों का संलयन होता है बड़े को गुरुयुग्मक (macrogamete) तथा छोटे युग्मक को लघुयुग्मक कहा जाता है । ये दोनों ही चलनशील होते हैं पर लघुयुग्मक अधिक सक्रिय होता है । एलोमाइसिज (Allomyces) नामक कवक में असमयुग्मन पाया जाता है ।

(3) **विषमयुग्मन** (Oogamy) : इस लैंगिक प्रजनन में स्त्री युग्मक या अण्ड़ (egg) बड़ा, अचल व गोल होता है तथा दूसरा नरयुग्मक छोटा व सामान्यत: चलनशील होता है । इनके संलयन से बनने वाले युग्मजन को निषिक्ताण्ड (oospore) कहते हैं । विषमयुग्मन सबसे अधिक प्रगत माना जाता है उदाहरण मोनोब्लीफेरिस (Monoblepharis), **एल्ब्यूगो** (Albugo)

लैंगिक प्रजनन की विधियाँ

1. **चलयुग्मकी मैथुन** (Planogametic Copulaton) : अनावृत (naked) तथा चलनशील (motile) युग्मक को चलयुग्मक (planogamete) कहते हैं । इनके संलयन को चलयुग्मकी मैथुन कहते हैं ।

2. **युग्मकधानीय सम्पर्क** (Gametangial contact) : कुछ कवकों जैसे एल्बूगो, स्कलेरोस्पोरा में युग्मक अचल होते हैं। ऐसी स्थिति में नरयुग्मक केन्द्रक का स्थानान्तरण पुंधानी

(antheridium) से अंडधानी (oogonium) में एक नलिका (Fertilization tube) की सहायता से होता है ।

3. **युग्मकधानीय मैथुन** (gametangial copulation) : यह अचल युग्मों द्वारा होता है । इसमें युग्मक धानियाँ होती है । युग्मक धानिया समीप आती है । दोनों की उभयनिष्ठ भित्ति विलुप्त हो जाने पर सम्पूर्ण प्रोटोप्लास्ट का संयुग्मन हो जाता है । उदाहरण **म्यूकर** (Mucor) **पाइलोबकोलस** (Pilobolus) ।

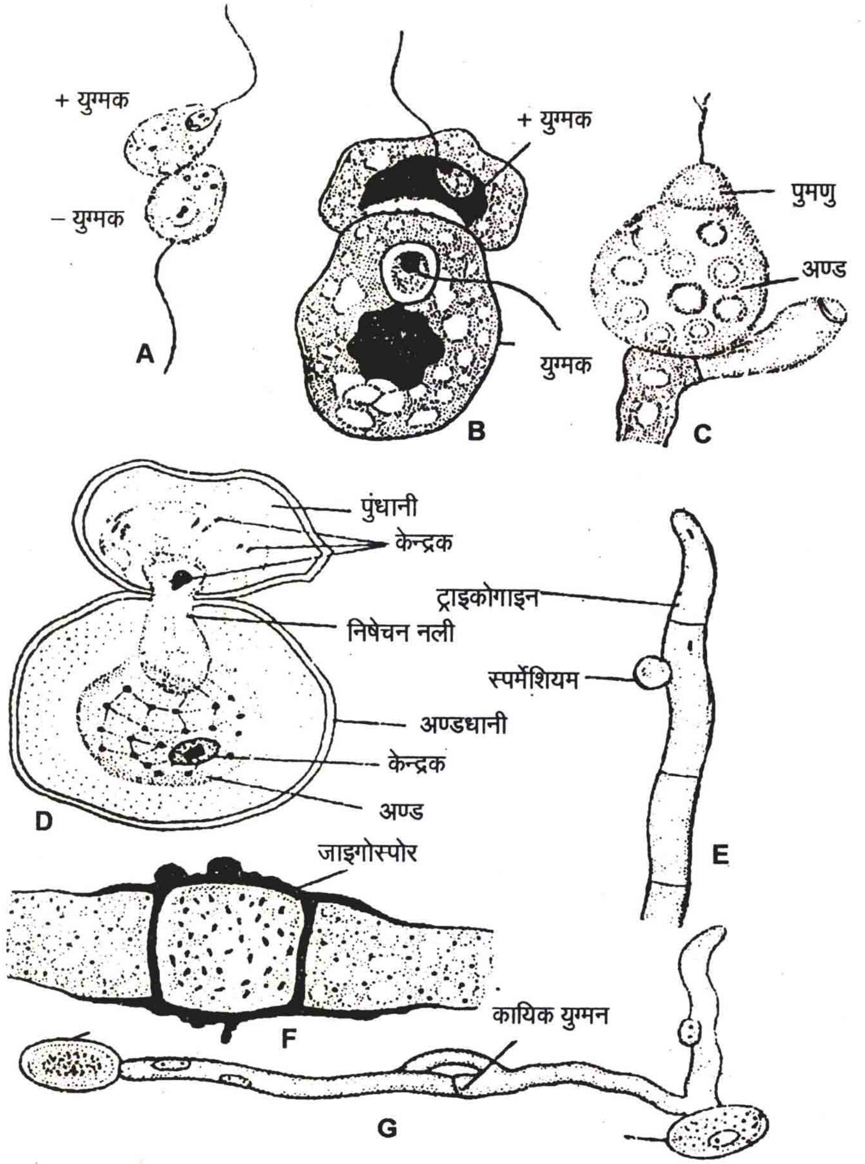

चित्र 6.4 : कवकों में लैंगिक जनन की विधियाँ : A,B,C. चलयुग्मी मैथुन; D. युग्मकधानीय संपर्क; E. अचल पुमणु युग्मन; F. युग्मकधानीय मैमुन; G. कायिक युग्मन

4. **अचल पुंमणु युग्मन** (Spermatisation) : इस प्रकार का लैगिंक प्रजनन कुछ प्रगत कवकों में पाया जाता है । इनमें नर युग्मक अचल पुमणु (spermatia) कहे जाते हैं तथा ये

छोटी, अचल, एक केन्द्र की व बीजाणु के समान संरचनायें होती हैं । ये (नर युग्मक) जल अथवा वायु, कटि द्वारा विशिष्ट ग्राही **कवक सूत्रों** (receptive hyphae) तक पहुँचते हैं सम्पर्क भित्ति के शलान में छिद्र द्वारा नर केन्द्रक ग्राही सूत्रों में प्रवेश कर जाता है ।

5. **कायिक युग्मन** (Somatogamy) : कुछ प्रगत कवकों में लैंगिक अंगों का परिवर्धन नहीं होता । इनमें निषेच्य विभेदों की दो कायिक कोशिकायें या कवकसूत्र परस्पर सायुज्यित होकर लैंगिक जनन् करते हैं । उदाहरण **मार्केला** (Morchella), **पेजाइजा** (Peziza), **अस्टीलेगो मेडिस** (Ustilago maydis) ।

6.6 इकाई सारांश

कवक एक प्रकार के पर्णहरित पादपों का समूह हैं । इन पादपों में संवहन पूल या संवहन कोशिकाओं का पूर्ण अभाव होता है । ये पादप यूकेरियोटिक होते हैं तथा इनकी भित्ति काइटिन या फंगस सेल्यूलोज की बनी होती है । ये पूर्ण रूप से परपोषी या परजीवी होते हैं । पर्णहरित का अभाव होता है । इन पादपों का शरीर संरचना बहुत साधारण होती है । पादप सूकाय कवक सूत्र के रूप में होता है तथा संचित खाद्य ग्लाइकोजन एवं वसा पाया जाता है । इन पादपों में कायिक, अलैंगिक एवं लैंगिक जनन होता है । विकसित कवकों जैसे ड्यूटेरोमाइसिटीज वर्ग में लैंगिग जनन का अभाव होता है। कवक पारिस्थितिकी तन्त्र के अभिन्न अंग है तथा ये लाभकारी एवं हानिकारक भी होते हैं । उच्च पादपों एवं कृषि फसलों में विभिन्न प्रकार के रोग कारक होते हैं । पशुओं एवं मनुष्यों में भी रोग उत्पन्न करते हैं । कवकों से हमें कई प्रकार की प्रतिजैवी प्राप्त होती है । कुछ कवक जैसे मशरुम भोजन के रुप में भी काम लिया जाता है ।

6.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. पी.सी. त्रिवेदी, निरंजन शर्मा एवं आर.एस. धनकड़ -सूक्ष्म जैवीय एवं अपुष्पोदभिदी विविधतायें, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

6.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. अभाव
2. काइटिन या फंगस सेल्यूलोज
3. डोलिपोर पट
4. कवक तन्तु के शीर्षस्थ भाग

बोध प्रश्न 2

1. चूषकांग
2. कवक मूल
3. मृतोपजीवी
4. पिक्निडियम

6.9 अभ्यास प्रश्न

1. कवक क्या है ? इनके सामान्य लक्षण लिखिये ।
2. कवकों के निम्न लक्षणों का वर्णन लिखिये ।
3. कवकों में पाये जाने वाले विभिन्न प्रजनन विधियों का वर्णन कीजिये ।
4. निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिये :
   (i) कवकों का पोषण
   (ii) पिकनीडियम
   (iii) कवकों में अलैंगिक जनन
   (iv) कवकों में लैंगिक जनन

इकाई 7 : कवकों का वर्गीकरण एवं आर्थिक महत्त्व (Classification and Economic Importance of Fungi)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 कवकों का वर्गीकरण
7.3 कवकों का आर्थिक महत्त्व
7.3.1 लाभदायक गतिविधियाँ
7.3.2 हानिकारक गतिविधियाँ
7.4 अनुभागीय इकाई सारांश व अभ्यास कार्य (बोध प्रश्न)
7.5 शब्दावली
7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न एवं उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के प्रथम भाग को पढ़ कर आप जान सकेंगे कि समय-समय पर कवकविदों (Mycologist) ने कवकों को वर्गीकृत करने के प्रयत्न किये हैं । फंजाई के वर्गीकरण के बारे में अलग-अलग मत होने के कारण इनका वर्गीकरण अभी भी अपूर्ण अवस्था में है । पौधों को व्यावहारिक योजना तथा नामावली पद्धति में **असमानता** के आधार पर कुछ वर्गों में विभाजित करने को ही वर्गीकरण कहते हैं । अधिकांश फंजाई का जीवनकाल (life cycle) व्यक्तिवृत्त (ontogeny) का अध्ययन पूर्ण रूप से न होने के कारण कवकों का प्राकृतिक वर्गीकरण करना कठिन है । जैसे-जैसे फंजाई के बारे में विस्तृत अध्ययन बढ़ता गया, वैसे-वैसे कवकविदों ने वर्गीकरण दिए जिनमें से कुछ वर्गीकरणों का अध्ययन करेंगे ।

इस इकाई के दूसरे भाग में कवकों का हमारे जीवन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव का अध्ययन भी करेंगे । इनसे होने वाले लाभ व हानियों का विस्तार से अध्ययन करेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

कवकों का प्रथम वर्गीकरण बाहिन (Bauhin, 1623) द्वारा लिखित पुस्तक पीनेक्स थिएट्री बोटानिसी (Pinax Theatri Botanici) में मिलता है । जहाँ उन्होंने कवकों की 100 प्रजातियों का वर्णन किया है । कवकों को पादपों के एक समूह के रूप में मान्यता सर्वप्रथम लिनियस (Linnaeus, 1768) ने अपनी वर्गीकरण पद्धति में दी । उन्होंने कवकों का वर्गीकरण क्रिप्टोगेमिया फंजाई के अन्तर्गत किया । परसून (Persoon, 1801) ने कवकों को गण, कुल एवं वंश में वर्गीकृत किया।

कवकों का प्रथम विस्तृत वर्गीकरण सर्वप्रथम इलियास फ्राइस (Elias Fries) 1821-32 के मध्य प्रकाशित सिस्टेमा माइकोलोजिकम Systema Mycologicum) नामक अपनी पुस्तक में किया । यह पुस्तक तीन खण्डों में प्रकाशित हुई उन्हें कवक विज्ञान का लिनियस तथा वर्गीकृत कवक विज्ञान का जनक (The Father of Systematic Mycology) कहा जाता है ।

7.2 कवकों का वर्गीकरण :

अब समय-समय पर कवकविदों द्वारा दिए गये वर्गीकरण की जानकारी उपयुक्त होगी ।

लिनियस ने कवकों को चार संवर्गों में वर्गीकृत किया :

(i) कोनियोमाइसिटीज (Coniomycetes)

(ii) हापोमाइसिटीज (Hypomycetes)

(iii) गेस्ट्रोमाइसिटीज (Gastromycetes)

(iv) हाइमिनोमाइसिटीज (Hymenomycetes)

डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त के प्रकाशित होने के पश्चात् डी बेरी (De Barry, 1866) ने सर्वप्रथम विकास के आधार पर अपनी पुस्तक कम्परेटिव मार्फोलोजी एण्ड बायोलाजी आफ फन्याई में फंजाई (Fungi) को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया।

(i) फाइकोमाइसिटीज (Phycomycetes)

(ii) हाइपोडर्मी (Hypodermii)

(iii) बसिडियोमाइसिटीज (Basidiomycetes)

(iv) एस्कोमाइसिटीज (Ascomycetes)

(v) मिक्सोमाइसिटीज (Myxomycetes)

सेकार्डो (Saccardo, 1882) ने अपनी पुस्तक साइलोज फंगोरम (Sylloge Fungorum) में कवकों का वर्णन प्रस्तुत कर उन्हें छः संवर्गों में वर्गीकृत किया :

(i) शाइजोमाइसिटीज (Schizomycetes)

(ii) मिक्सोमाइसिटीज (Myxomycetes)

(iii) फाइकोमाइसिटीज (Phycomycetes)

(iv) एस्कोमाइसिटीज (Ascomycetes)

(v) बेसिडियोमाइसिटीज (Basidiomycetes)

(vi) डयूटेरीमाइसिटीज (Deuteromycetes)

आइकलर (Eichler, 1886) ने अपने जातिवृत्तीय वर्गीकरण में कवकों को एक संवर्ग के रूप में गठित कर उसे प्रभाग थैलीफायटा (Thallophyta) में स्थान दिया डयूटेरोमाइसिटीज संवर्ग फंजाई के तीन समूहों या वर्गों में विभाजित किया- साइजोमाइसिटीज, यूमाइसिटीज एवम् लाइकन ।

आइकलर के पश्चात् कवकों में उत्पत्ति एवं उनमें बंधुत्व के विभिन्न विचारों एव शोध के आधार पर कवकों की अनेक वर्गीकरण प्रणालियाँ प्रस्तुत की गई । इनमे मुख्य निम्न हैं :

1. श्रोटर (Schroter, 1897)
2. गाविन-वहान तथा बारनेज (Gwynne-Vaughan & Barnes, 1926)

3. गामन तथा डॉज (Gaumann and Dodge, 1926)
4. टिप्पो (Tippo, 1942)
5. बैसे (Bassey, 1950)
6. गॉमन (Gaumann, 1952)
7. मार्टिन (Martin, 1955)
8. एलेक्सोपोलस (Alexopoulos, 1962,1968)
9. ऐन्सवर्थ Ainsworth, 1966,1973)
10. बोल्ड (Bold, 1967)
11. एलेक्सोपोलस एवं मिम्स (Alexopoulos and Mims, 1979)
12. एग्रीऑस (Agrios, 1988)

गाविन-वहान तथा वारनेज (1926) ने कवक जाल तथा बीजाणुओं की विशेषता के आधार पर कवकों को चार संवर्गों में विभेदित किया :

(1) संवर्ग- फाइकोमाइसिटीज (Phycomycetes)

(2) संवर्ग- एसकोमाइसिटीज (Ascomycetes)

(3) संवर्ग- बोसिडियोमाइसिटीज (Bosidiomycetes)

(4) संवर्ग- डयूटिरोमाइसिटीज (Deuteromycetes)

अधिकतर वैज्ञानिकों ने वर्गीकरणकी प्रणाली को उपर्युक्त आधार पर ही स्थिर रखा लेकिन बैसे (Bessy, 1950) ने जर्मन के कवकविज्ञ (Mycologists) डीबेरी (Debary,1887) के समान ही मिक्सोमाइसिटीज को माइसिटोजोआ (Mycetozoa) के अन्तर्गत वर्गीकृत किया ।

बैसे (Bessey) द्वारा दिया गया वर्गीकरण निम्न प्रकार है :

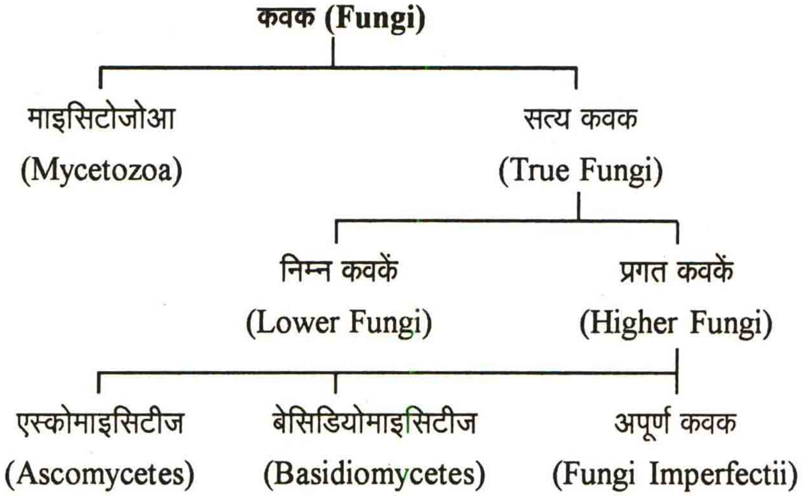

पुराने कवकविज्ञ के दिये गए वर्गीकरण में आपसी मतभेद के कारण एलेक्सोपोलस (1962) वर्गीकरण विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया तथा उन्होंने निम्न कवकों को छः वर्गों में विभक्त किया : एलेक्सोपोलस का सम्पूर्ण वर्गीकरण कवकों के कायिक व जनन लक्षणों पर आधारित है, जिसको उन्होंने अपनी पुस्तक इंट्रोडक्टरी माइकोलोजी (Introductory mycology) में वर्गीकृत किया है।

एलेक्सोपोलस ने कवकों को माइकोटा प्रभाग में रखा तथा इस प्रभाग को आगे दो उपप्रभाग में विभाजित किया :

मिक्सोनाइकोटिना Myxomycotina एवं यूमाइकोटिना (Eumycotina) वर्गीकरण की इस रूपरेखा को जो एलेक्सोपोलस द्वारा दी गयी है, समझने के लिए इसका रेखाचित्र बनाया गया है :

डीविजन – माइकोटा

- **सबडिवीजन - I**
  - ↓ **मिक्सेमाइकोटिना**
  - ↓ **संवर्ग - मिक्सोमाइसिटीज**
- **सबडिवीजन - II**
  - ↓ **यूमाइकोटिना**
  - ↓ **संवर्ग -**
    1. **काइट्रिडियोमाइसिटीज**
    2. **हाइपोकाइट्रिडियोमाइसिटींज**
    3. **ऊमाइसिटीज**
    4. **प्लाज्मोफोरोमाइसिटीज**
    5. **जायगोमाइसिटीज**
    6. **ट्राइकोमाइसिटीज**
    7. **एस्कोमाइसिटीज**
    8. **बेसिडियोमाइसिटीज**
  - **कृत्रिम संवर्ग** 9. **ड्यूटेरोमाइसिटीज**

अब हम आगे पूरे वर्गीकरण को उसकी विशेषताओं के साथ वर्णित करेंगे :

प्रभाग - माइकोटा : इसमें सभी कवकों को सम्मिलित किया गया है । थैलस एककोशिकीय या तन्तुनुमा होता है । केन्द्रिका व केन्द्रक झिल्ली उपस्थित कोशिका भित्ति सेल्यूलोज व काइटिन की बनी होती है । पर्णहरित का अभाव होता है तथा जनन लैंगिक व अलैंगिक विधियों द्वारा होता है ।

उपप्रभाग - मिक्सोमाइकोटिना : कोशिका भित्ति का अभाव तथा कायिक अवस्था नग्न प्लाज्मोडियम अमीबा के समान होती है ।

संवर्ग - मिक्सोमाइसिटीज : कायिक अवस्था, बहुकेन्द्रीय व कोशिका भित्ति रहित होती है । अर्द्धसूत्री द्वारा बीजाणु बनते हैं । **उदाहरण** : स्टेमोनाइटिस, फाइजेरम

उपप्रभाग - यूमाइकोटिना : पादपकाय भित्तियुक्त्त, एककोशिकीय अथवा तन्तुकी होता है । जनन बीजाणु या युग्मकों द्वारा होता है । कवकतन्तु पटहीन या पटयुक्त होते हैं ।

संवर्ग - काइट्रिडियोमाइसिटीज : थैलस कोशिकीय तथा चल बीजाणुओं में एकल पश्चस्थ प्रतोद कशाभिका मिलती है । **उदाहरण** : सिनकाइट्रियम

संवर्ग - हाइपोकाइट्रिडियोमाइसिटीज : चलबीजाणुओं में एक एकल, अग्रस्थ, कुर्च कशामिका मिलती है । **उदाहरण** : राइजिडिओमाइसीस

संवर्ग - ऊमाइसिटीज : चलकोशिकाएँ द्विकशाभिकी मिलती है । इनमें से एक प्रतोद तथा दूसरी कूर्च प्रकार की होती है । **उदाहरण** : सेपरोलेग्निया, एल्ब्यूगो, पिथियम आदि ।

संवर्ग - प्लाज्योडियोफोरोमाइसिटीज : चलकोशिकाएँ दो अग्रस्थ असमान लम्बाई की प्रतोद कोशिकाओं में बँटी हुई होती है । **उदाहरण** : प्लाज्मोडियोफोर (Plasmodiophora)

संवर्ग - जाइगोमाइसिटीज : चलकोशिकाएँ नहीं मिलती हैं । कवकसूत्र पटहीन संकोशिकयि या कभी-कभी आभासी पटयुक्त होते है। अलैंगिक जनन धानीबीजाणुओं द्वारा तथा लैंगिक जनन दो समरूप युग्मकधायि के संलयन द्वारा होता है । **उदाहरण** : राइजोपस, म्यूकर

संवर्ग - ट्राइकोमाइसिटीज : चलकोशिकाएँ अनुपस्थित लैंगिक जनन जायगोमाइसिटीज के समान होता है । सूकाय, शाखित संकोशिकयि कवक जाल के रूप में मिलता है । **उदाहरण** : एन्टीरोब्रायस

संवर्ग - एस्कोमाइसिटीज : कवकसूत्र पटयुक्त कोशिकाओं का पूर्ण अभाव, लैंगिक जनन के द्वारा एस्कस तथा एस्कोबीजाणु बनते हैं । **उदाहरण** : एस्पार्जिलस, क्लेवीसेप्स, मार्केला आदि ।

संवर्ग - बसिडियोमाइसिटीज : कवकसूत्र पटयुक्त, चलकोशिकाएँ अनुपस्थित 1 लैंगिक जनन के द्वारा बेसीडियम व बेसीडियो बीजाणु बनते हैं । **उदाहरण** : पाक्सिनिया व अस्टिलेगा ।

कृत्रिम संवर्ग - ड्यूटेरोमाइसिटीज : कवक सूत्र पटयुक्त तथा लैंगिक जनन अज्ञात व अनुपस्थित होता है । **उदाहरण** : अल्टरनेरिया, फ्यूजेरियम

एन्सवर्थ (Ainsworth, 1966,1973) ने अपनी पुस्तकों डिक्शनरी ऑफ फन्जाई, 1971 तथा द्विफंजाई एज एडवास टिट्राइज में कवकों के प्राकृतिक बंधुत्व पर आधारित एक वर्गीकरण पद्धति का वर्णन किया जिसमें उन्होंने नग्न जीव द्रव्यक तथा कूट नग्न जीवद्रव्यक वाली कवकों को प्रभाग- मिक्सोमाइकोटा में तथा अन्य कवकों को प्रभाग यूमाइकोटा में वर्गीकृत किया है ।

इस वर्गीकरण का आरेखी रेखाचित्र निम्न है, जिसमें यह बताया गया है की वर्गीकरण किस आधार पर आधारित है:

बोध प्रश्न 1 :

1. कवकों के वर्गिकरण में किस वर्गिकरण को सरल व सुग्राहृा माना गया है :
   (a) श्रोटर
   (b) बैसे
   (c) एलेक्सोपोलस
   (d) लिनियस ()
2. कृत्रिम संवर्ग का सादस्य है :
   (a) म्यूकर
   (b) पिथियम
   (c) सिनकाइट्रियम
   (d) आल्टर नेरिया ()

3. यूमाइकोटीना के दो संवर्गों के नाम लिखिये ।

....

....

....

4. कृत्रिम संवर्ग को संवर्ग से कैसे विभेदित करोगे?

....

....

....

5. एस्कोमाइसिटीज की दो विशेषताएँ बताइये ।

....

....

....

जगत – माइसिटी

प्रभाग – मिक्सोमाइकोटा

संवर्ग - 1. एक्रेसियोमाइसिटीज
2. हाइड्रोमिक्सोमाइसिटीज
3. मिक्सोमाइसिटीज
4. प्लाज्मोडियोफोरोमाइसिटीज

प्रभाग : मिक्सोमाइकोटा : नग्नजीवद्रव्यक

संवर्ग : 1. एक्रेसियोमाइसिटीज - कूट नग्नजीवद्रव्यक
2. हाइडोमिक्सोमाइसिटीज - नग्नजीवद्रव्यक जालिकावत
3. मिक्सोमाइसिटीज - नग्नजीवद्रव्यक मृतोपजीवी
4. प्लाज्मोडियोफोरोमाइसिटीज - परपोषी की कोशिकाओं के भीतर परजीवी

प्रभाग - यूमाइकोटा

उपप्रभाग –1 मास्टीगोमाइकोटिना

संवर्ग – 1. काइटिडियोमाइसिटीज
2. हाइफोकाट्रिडियोमाइसिटीज
3. ऊमाइसिटीज

उप प्रभाग – 2 जाइगोमाइकोटीना

संवर्ग – 1. जाइगोमाइसिटीज
2. ट्राइकोमाइसिटीज

उप प्रभाग – 3 एस्कोमाइकोटिना

संवर्ग – 1. हेमीएस्कोमाइसिटीज
2. प्लेक्टोमाइसिटीज
3. पाइरीनोमाइसिटीज
4. डिस्कोमाइसिटीज

5. लेबोल्बीनियोमाइसिटीज

6. लोक्यूलोएस्कोमाइसिटीज

उप प्रभाग – 4 बेसीडीयोमाइकोटिना

|

संवर्ग – 1. टीलीयोमाइसिटीज

2. हाइमिनोमाइसिटीज

3. गेस्टोमाइसिटीज

उप प्रभाग – 5 ड्यूटेरोमाइकोटिना

|

संवर्ग – 1. ब्लास्टोमाइसिटीज

2. हाइफ ोमाइसिटीज

3. सीलोमाइसिटीज

प्रभाग-यूमाइकोटा : नग्नजीवद्रव्यक तथा कूट नग्न जीवद्रव्यक अनुपस्थित

उपप्रभाग - मास्टीगोमाइकोटीना : चलबीजाणु उपस्थित तथा निषिक्तांड का निर्माण

संवर्ग - काट्रिडियोमाइसिटीज, चलबीजाणु, एकल कशाभिकी, पश्च एवं प्रतोद

संवर्ग - हाइफोकाट्रिसिटीज, योमाइसिटीज

संवर्ग - काट्रिडियोमाइसिटीज : चलबीजाणु एकल कशाभिकी, अग्र एवं कूर्च ।

संवर्ग - ऊमाइसिटीज : कोशिकाभित्ति सेल्यूलोज की बनी, चलबीजाणु द्विकशाभकी, पश्चकशाभिका प्रतीद व अग्रकूर्च

उपप्रभाग- 2 जाइगोमाइकोटिना : चलबीजाणु अनुपस्थित, युग्माणु का निर्माण

संवर्ग- 1 जाइगोमाइसिटीज : स्थलीय धानीबीजाणुओं का निर्माण ।

2 ट्राइकोमाइसिटीज : आर्थोपोडा के जीवों पर परजीवी ।

उपप्रभाग- 3 एस्कोमाइकोटीना : चल कोशिकाएँ अनुपस्थित, एस्कस व एस्कोबीजाणुओं का निर्माण ।

संवर्ग- 1 हेमीएस्कोमाइसिटीज : ऐसाई नग्न ।

2 प्लेक्टोमाइसिटीज : क्लिस्टोथीसीयम उपस्थित ऐसाई फलनकाय में बिखरे हुए ।

3 पाइरीनोनाइसिटीज : ऐसाई फलनकाय पेरीथीसीयम में

4 डिस्कोमाइसिटीज : फलनकाय एपोथीसीयम

5 लेबोल्बीनियोमाइसिटीज : फलनकाय परीथीसीयम

6 लोक्यूलोएस्कोमाइसिटीज : फलनकाय एस्कोस्ट्रोमा

उपप्रभाग- 4 बेसीडियोमाइकोटिना : चलकोशिकाएँ अनुपस्थित, बेसीडियम एवं बेसीडियोबीजाणुकों का निर्माण

संवर्ग- 1 टीलियोमाइसिटीज : बेसिडियोकार्प अनुपस्थित, टीलियो बीजाणु व क्लेमाइडोबीजाणु उपस्थित

2 हाइमीनोमाइसिटीज : बेसिडियोकार्प उपस्थित, फलनकाय परिपक्व होने से पूर्व खुल जाते हैं ।

3 गेस्टोमाइसिटीज : बेसिडीयोकार्प उपस्थित हाइमीनियम उपस्थित

उपप्रभाग- 5 ड्यूटेरोमाइकोटिना : लैंगिक जनन का अभाव

संवर्ग- 1 ब्लास्टोमाइसिटीज : कवकजाल अनुपस्थित या अल्पविकसित

संवर्ग- 2 हाइफोमाइसिटीज : कवक जाल सुविकसित, पिक्नीडिया तथा ऐसवुलाई अनुपस्थित

संवर्ग- 3 सीलोमाइसिटीज : बीजाणु पिक्नीडिया या ऐसनतुलाई में उपस्थित

इसी प्रकार वर्गीकरण की नई आधुनिक पद्धतियाँ भी बतायी गयी हैं जो प्राय: इतनी विस्तृत वर्गीकृत नहीं की गई हैं ।

वर्गीकरण के साथ-साथ अब हम आगे कवकों द्वारा मनुष्य व अन्य जीवित आर्गेनिज्य के शरीर पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष गतिविधियों का अध्ययन करेंगे ।

7.3 कवकों का आर्थिक महत्त्व (Economic Importance of Fungi)

मानव जीवन का कवकों से पुराना घनिष्ठ सम्बन्ध है । ये हमारे जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं । कवकों का आर्थिक महत्व द्विपक्षीय है । यहाँ पर हम कवकों द्वारा मनुष्य जीवन पर पड़ने वाले लाभदायक व हानिकारक गतिविधियों का अध्ययन करेंगे ।

7.3.1 लाभदायक गतिविधियाँ (Useful activities)

कवक हमारे दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार से तथा कई तरह से लाभदायक है, जो मनुष्य के जीवन पर सीधे प्रभाव डालती है । मनुष्य जीवन में हाने वाली कुछ लाभदायक गतिविधियाँ निम्न हैं :

1. भोजन के रूप में : कवकों का प्रयोग प्राचीन काल से ही भोजन के रूप में किया जा रहा है । भोजन के रूप में काम आने वाले कवक निम्न प्रकार हैं :

(अ) छत्रक, मोरल, ट्रफल एवं ट्यूबर : अनेक प्रकार से छत्रक, मोरल व ट्यूबर का भोजन के रूप में उपयोग होता है :

(i)	Agaricus bisporous	एगेरिकस बाइस्पोरस
(ii)	Agaricus hortensis	एगेरिकस होर्टेन्सिस
(iii)	Agaricus campestris	एगेरिकस केम्पेस्ट्रिस
(iv)	Volverilla displasia	वोलवेरिल्ला डिफ्लेसिया
(v)	Morchella esculanta	मारसेला एस्कुलेन्टा
(vi)	Tuber aestivum	ट्यूबर एस्टिवम
(vii)	Pleurotus ostreatus	प्लुरोटस ओस्ट्रीयेटस
(viii)	Sepultaria arenicola	सेपुलटेरिया ऐरिनिकोला

छत्रक में विटामिन्स तथा खनिज पदार्थ भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं । छत्रकों में उपस्थित विटामिन्स, इनको पकाने, सुखाने तथा डिब्बा बन्दी में विकृत नहीं होते हैं । यह मधुमेह व हृदय रोगियों के लिए उत्तम भोजन माना जाता है ।

(ब) **प्रोटीन** : यीस्ट से पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन प्राप्त होता है । यीष्ट में शुष्क अवस्था में 50% प्रोटीन होती है तथा इसे एक कोशिकीय प्रोटीन कहा जाता है । क्योंकि यीस्ट एक कोशिकीय कवक में शामिल की जाती है ।

कुछ तन्तुरूपी कवकों से प्रोटीन प्राप्त की जाती है, जिनके उदाहरण निम्न हैं :

एस्पर्जिलस टेरस, ट्राइकोडर्मा विरिडी स्पोरोट्राइकम थर्मोफिली इत्यादि ।

(स) **पनीर** : कुछ निम्न प्रकार के प्रोटीन कवकों से प्राप्त किये जाते हैं :

रोकफोर्ट : पेनीसिलीयम राकफोर्टी

गारगोनजोला : पेनीसिलीयम जाति से

सोया या मिसो : एस्पर्जिलस ओराइजी

चायनीज या टोफू : म्यूकर हेमेलिस

2. **कवक औषधि के रूप में** : अनेक कवकों का उपयोग भोजन के रूप के अलावा औषधियों के निर्माण में किया जाता है । कवकों के द्वारा प्राप्त औषधियाँ निम्नलिखित हैं :

(i) **प्रतिजैविक** : एक सजीव के वह उपापचयी उत्पाद, जो सूक्ष्म मात्रा में होते हुए भी दूसरे सजीवों को हानि पहुँचाते या नष्ट कर देते हैं । प्रतिजैविक कहलाते हैं । प्रथम प्रतिजैविक की खोज अलेक्जेण्डर द्वारा पेनीसिलीन के रूप में की गई थी । पेनीसिलीन नामक प्रतिरजैविक पेनीसिलीयम नोटेटम व पेनीसिलीयम क्राइसोजीनम नामक कवकों से प्राप्त किया जाता है । यह ग्राम पोजीटिव एक्टिनोमासिटीज पर विरोधी प्रभाव डालता है ।

कवकों से प्राप्त कुछ प्रतिजैविक व उनका दूसरे सजीव के विरुद्ध प्रभाव नीचे दिया जा रहा है :

प्रतिजैविक (Antibiotics)	**कवक स्रोत (Fungal source)**	**के विरुद्ध प्रभावी (Active Against)**
1. पेनीसिलीन	पेनीसिलियम नोटेटम एवं	ग्राम पोजिटिव बैक्टीरीया
2. ग्राइसीयोफुलविन	पेनीसिलीयम क्रासोजीनम	मनुष्य व प्राणियों के चर्म रोगों के लिए
3. सिफेलोस्पोरीन	एमेरीसिलोप्सीस मीनीयम	जीवाणुनाशी
4. सिट्रिनीन	पेनीसीलियम सिट्रीनम	जीवाणु
5. प्रालीफेरीन	ऐस्पराजिलस प्रोलीफेरन्स	तपेदिक जीवाणु
6. फूमेजिलिन	ऐ. फूमिगेट्स	अमीबा
7. रेमीसीन	म्यूकर रिमेनियेनस	जीवाणु
8. हेलेनीन	पनीसीलियम फ्यूनीकुलोसस	विषाणुनाशी
9. वार्टमेनीन	टेलेरोमाइसिस वोर्टमेनाइ	वोट्राइटिस,क्लडोस्पोरियम व राइजोपसनाशी
10. L-सर्सिन	एस्पर्जिलस जाइजेन्टीयस	ट्यूमर

11. फ्लेम्यूलीन	फ्लेम्यूलीन वैल्यूटिपिस	ट्यूमर
12. एन्टीअमीबीन	एमेरीसीलोप्सीस पूनेनसिस	प्रोटोजोआनाशी
13. ट्राइकोथीसीन	ट्राइकोथीसीयमरोजिम	कवकनाशी

(ii) एन्जाइम उत्पादन : कवकों द्वारा प्रपट एन्जाइम का उपयोग दवाइयों के रूप में किया जाता है। कवकों द्वारा प्रपट एन्जाइम निम्न प्रकार हैं।

	कवक	प्राप्त एन्जाईम
(a)	एस्पर्जिलस ओराइजी	एमाइलेज, एडिनिलिक अम्ल, पेक्टीनेज
(b)	एस्पर्जिलस नाइजर	एमाइलेज, प्रोटिएज, ग्ज्यूकोज़ ऑक्सीडेज
(c)	राइजोपस जाति	एमाइलोग्ल्यूकोसाइडेज
(d)	पेनीसिलियम क्राइसोजीनम	लाइपेज, रेनिट, प्राटियेज, ग्ल्यूकोज़ ऑक्सीडेज
(e)	पेनीसिलियम सिट्रीनम	प्राइसी फास्कोडाइएस्टेरेज
(f)	ट्राइकोडर्मा विरीडी	सल्यूलोज
(g)	सेकेरमाइसीज सिरीविसी	इनवर्टेज

(iii) विटामिन्स उत्पादन : कुछ विटामिन जैसे विटामिन - D तथा B कॉम्पलेक्स समूह के विटामिन एस्पर्जिलस, पेनीसिलीयम तथा यीस्ट की क्रिया से प्राप्त किये जाते हैं ।

(iv) अर्गट : क्लेविसेप्स परप्यूरीया के स्केलेरोशियम को अर्गट कहते हैं । स्केलेरोशियम से अनेक प्रकार के एल्केलॉइड निकाले जाते हैं, जो औषधि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे - अर्गेटॉक्सिन, अर्गोटामिन तथा अर्गोमेट्राइन

(v) ई-एफेड्रीन : यह यीस्ट द्वारा बेन्जालडिलाइड से संश्लेषित पदार्थ है, जिसका उपयोग दमा, खाँसी जैसी बीमारियों के उपचार में किया जाता है ।

(vi) स्टीरॉइड्स : राइजोपस स्टालोनीफर, एस्पर्जिलस ओक्रेसियस म्यूकर ग्रीसीयो-साइनस से स्टीराइड प्राप्त होते हैं, जो गठिया व एलर्जी जैसे रोगों के उपचार में उपयोगी है ।

3. कवकों का उद्योगों में उपयोग : कवकों का औद्योगिक उपयोग निम्न प्रकार होता है

(अ) कार्बनिक अम्ल के उत्पादन में: विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अम्ल कवकों द्वारा किण्वन के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं :

कवक का नाम	उत्पाद का नाम
1. एस्पर्जिलस नाइजर, पेनिसिलियम क्राइसोजिनन	ग्लूकोनिक अम्ल
2. एस्पर्जिलस इटेकोनिकम ऐस्पंर्जिलस गेलोमाइसीज	इटेकोनिक अम्ल
3. एस्पर्जिसल	गौलिक अप्ल
4. साइट्रोमाइसीज फेपोरिएनस एस्पर्जिलस नाइजर	साइट्रिक अम्ल
5. राइजोपस ओराइजी	लेस्टिक अम्ल, कोजिक अम्ल
6. एस्पर्जिलस क्यूमीगेटस	सविसनिक अम्ल
7. राइजोपस एराहीजस	फ्यूमेरिक अम्ल

(ब) मद्य निर्माण उद्योग में : मद्य निर्माण में सेक्रोमाइसीज सेरेविसी के द्वारा शर्करा का किण्वण करके इथायल एल्कोहल प्राप्त किया जाता है, जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार की शराब बनाई जाती है ।

(स) वसा उत्पादन में : कुछ कवक जैसे, पेनीसीलियम जैवानिकम एस्पर्जिल्स निडुलेन्स म्यूकर म्यूसिडो प्रचुर मात्रा में वसा उत्पन्न करती है, जो दवाइयों में उपयोगी होती है ।

(द) वर्णक उत्पादन में : कवकों के बीजाणु व कवक जाल से विभिन्न प्रकार के वर्णक प्राप्त होते हैं, जो रंगों के रूप में उपयोगी है । जैसे- केटिनेरिन नामक वर्णक लाल रंग प्रदान करता है, जो हैल्मिन्थोस्पोरियम जाति से प्राप्त होता है ।

4. कवकों के कृषि उपयोग : कवकों के कृषि में उपयोग निम्न प्रकार से किये जाते हैं ।

(अ) कार्बनिक पदार्थो का उपघटन : कवक मृतजीवों, पादपों व उनके उत्पादी का अपघटन करते है । कीटोमियम, ऐल्टरनेरिया, ऐंस्पर्जिलस, पेनिसिलियम, पोलीपोरस, फोमा तथा अनेक मृतोपजीवी कवक मृत कार्बनिक पदार्थों का अपघटन कर उन्हें ह्यूमस से बदल देती है, जिससे भूमि की उर्वरता बढ़ती है ।

(ब) जैविक नियन्त्रण : कवक द्वारा पौधों के रोग उत्पन्न करने वाले गोलकृमि कीटों तथा कवकों का जैविक नियन्त्रण किया जाता है ।

5. कवकों के अन्य उपयोग :

(क) पादप हार्मोन : वृद्धिकर पादप हार्मोन जिबरेलिन जिबरैला फ़्यूजिकूरोइ नामक कवक से प्राप्त किया जाता है ।

(ब) प्लास्टिक पदार्थ : आईडटम लेक्टिस नामक कवक का उपयोग प्लास्टिक उद्योग में किया जाता है ।

(स) कवक मूल : कवक जाल व उच्च वर्ग के पादपों की जड़ों के बीच सहजीवी सम्बन्ध को कवकमूल कहते हैं । यह कवक सहजीवी सम्बन्ध प्रस्तुत करते हुए पादपों को रक्षात्मक आवरण प्रदान करते हैं ।

(द) आनुवांशिकी में : आनुवांशिकी में कवकों का उपयोग न्यूरोस्पोरा क्रेसा नामक कवक के रूप में किया जाता है । विभिन्न शोध कार्यों में कवकों का उपयोग वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है ।

7.3.2 हानिकारक गतिविधियाँ (Harmful activities)

कवकों की कुछ ऐसी क्रियाएँ भी हैं जो लाभदायक होने के साथ-साथ हानिकारक भी होते हैं तथा मनुष्य व जीव जन्तुओं के जीवन पर उनका गलत प्रभाव पड़ता है । ऐसी क्रियाएँ हारिकारक गतिविधियाँ कहलाती हैं, ये निम्न प्रकार हैं :

(1) खाद्य पदार्थो का विनाश : अनेक कवक भोज्य पदार्थों पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर देते हैं । म्यूकरेलीज, एस्पर्जिलेजीलज, मोनिकिएलीज समूह के कवक खाद्य पदार्थों को सबरने ज्यादा खराब करते हैं । इसके कुछ उदाहरण निम्न हैं :

(अ) फल : फलों पर आक्रमण कर उन्हें अनुपयुक्त करने वाले कुछ कवकों के उदाहरण हैं: एस्पर्जिलस, पेनिसिलीयम, ग्लीओस्पोरियम ।

(ब) डबलरोटी : डबलरोटी म्यूकर म्यूसीडो, एस्पर्जिलस ग्लेडकस, सेकेरोमाइसीज, ब्यूरोस्पोरा क्रेसा इत्यादि कवकों द्वारा खराब की जाती है ।

(स) माँस : माँस को इकट्ठा कर उसे स्टोर करने पर उसे एल्टरनेरिया म्यूकर, पेनीसीलिम, एस्पर्जिलस फ्लेवस आदि आक्रमण करके खराब कर देती है ।

(द) दुग्ध उत्पाद : ओस्पोरा जातियाँ दूध को खराब कर देती हैं । इसके अलावा ओइडियम, एस्पजिरलस, म्यूकर आदि भी दूध,क्रीम,पनीर को खराब कर देती है । मक्खन में मछली की दुर्गन्ध आरेडियम लेक्टिस तथा टोसला स्फेरीका की गतिविधियों के कारण होती है ।

(य) खाद्यात्र : एस्पर्जिलस, पेनिसिलियम, फोमा, एल्टसेरिया, क्लेडोस्पोरियम, करबुलेरिया इत्यादि कवक के प्रमुख खाद्य फसलों को नष्ट कर उन्हें खराब कर मनुष्य के अनुपयुक्त बना देती है ।

(र) सब्जियाँ : राइजोपस निग्रीकेन्स, पेनीसीलियम जाति तथा यीस्ट सब्जियों को खराब कर देती हैं तथा उन्हें सड़ा देती हैं ।

(2) काष्ठ विनाश : अधिकतर बेसिडियोमाइसिटीज काष्ठ के विनाश के लिए उत्तरदायी है । कवक के कुछ उदाहरण जो काष्ठ के विनाश के लिए उत्तरदायी हैं, निम्न हैं.

आर्मीलेरिया, साइजोफिल्म, इकाइनोडोनशियम, पोलीपोरस, हाइडनम, फोलियोटा, सरपुला, फोमा इत्यादि ।

(3) संवर्धनों का संदूषण : प्रयोगशालाओं में विविध प्रकार के सूक्ष्मजीवों का संवर्धन एक सामान्य क्रिया है, जो कवकों द्वारा संदूषित कर दिये जाते हैं । जिसके कारण श्रम व सामग्री की अनावश्यक हानि होती है ।

(4) विभ्रमकारी कवक : कुछ कवक केन्द्रीय तंत्रिका तत्र को प्रभावित कर संवेदना व दृष्टि की विकृति उत्पन्न कर देती है, जिसे विभ्रमकारी प्रभाव व कवक को विभ्रमकारी कवक कहते हैं।

(5) पादप रोग : कवकों द्वारा पौधों में निम्न रोग उत्पन्न किये जाते हैं :

(1) White rust (श्वेत किट्टट) -Albugo candida

(2) Wart disease (आलूवार्ट रोग) - Synchytrium endobioticum

(3) Papaya stem rot) (पपीता स्टेम रोग) -Pythium aphenoderatum

(4) Rust disecse (किट्ट रोग) - Puccinia sP.

(5) Loose smut of wheat (गेहूँ का छिदरा कंड) - Ustilago tritici

(6) Covered smut of Barley (जौ का आवृत कंड) - Ustilago hordeai

(7) Wilt of cotten (कॉटन विल्ट म्लानी) - Fusarium sP.

(8) Paddy blast (धान का ब्लास्ट) - Piricularia oryzae

(9) Ergot of bajara (बाजरे का अरगट) - Claviceps microcephala

(10) Long smut of jowar (ज्वार का लम्बा कंड) - Tolyposporium enhrebergi

(11) Powdacy midtew of wheat (गेहूँ की चूर्णिक्त आसीता) - Erysiphae gramini

(12) Downy mildew of sarsoon (सरसों का मृदुरोमील रोग) - Perenospora

(13) Whipsmut (गन्ने का चाबुक कंड) - Ustilago scitamini

(14) Grain smut of jowar (ज्वार का ग्रेन समट) - Sphacelotheca sorghil

(15) Smut of bajara (स्मट ऑफ बाजरा) - Tolyposporium penicillari

(16) Early blight of potato (आलू का अगेती अंगमारी) - Alternaria solani

(17) Groundnut (tikka disease) (मूँगफली का टिक्कारोग) - Cercospora personta

(18) Red rot of Sugarcane (गन्ने का लाल क्लिगन) - Colletotrichum fulcaturm

(19) Black rust (गेहूँ का काला किट्ट) - Puccinia graminis

(20) Charcoal rot of maize (मक्का का चारकोल सड़न) - Macrophomina faceolii

(21) Anthracnose of cotton (कपास का कालव्रण) - Colletotrichum gassypii

(22) Rhizome rot of ginger (अदरक का प्रकन्द सड़ न) - Pythium aphanidermatum

(23) Steam gall of coriander (धनिये का तना पिटीका) - Protomyces macrosporus

(24) Blight of gram (चने की अंगमारी) - Ascochyta rabiei

(6) मनुष्य व पशुओं के कवक रोग : कुछ विशिष्ट समूह के कवक मनुष्य व पशुओं में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं । प्राणियों में कवकों द्वारा होने वाली बीमारियों को माइकोसिस कहते हैं । ये बीमारियाँ चार प्रकार की होती हैं (i) सतही (ii) क्यूटेनियम (iii) सब क्यूटेनियस (iv) सिस्टेमिक माइकोसिस । कुछ कवक रोग निम्न हैं:

(1) superficial skin disease (सतही चर्मरोग) Tinea nigra Cladosporium mansonii, Tinea versicolar, Pityrosporum arbicularae

(2) Aspergillosis (ऐस्पार्जिलोसिस) - Aspergillus flavus

(3) Dermatophytoses (डर्मटोफाइटोसेस) - Trichophyton sP.

(4) Blastomycosis (ब्लास्टोमाइकोसिस) - Cryptococcus neoformans

(5) Candidiasis (केन्डीडीएसिस) - Candido albicans

(6) Neuritis (न्यूरीटिस) - Mucor pusillus

(7) Histoplasmosis (हिस्टोप्लाज्मोसिस) - Histoplsma capsulatum

(8) Lovo mycosis (लोवोमाइकोसिस) - Loboa loboi

(7) जहरीली कवक : कुछ कदके अत्यन्त विषैले होने के कारण मनुष्य व प्राणियों की मौत का कारण बन जाती हैं ।

जैसे - एमैनिटा फलोइडिस, एमेनिटा मस्केरिया कवक

(8) एलर्जीकवक : दमा, हेफीवर तथा कुछ अन्य एलर्जिक क्रियाएँ कवकों के बीजाणुओं के हवा में प्रकीर्णन से उत्पन्न होती हैं । कुछ उदाहरण निम्न हैं

एल्टरनेरीया, एस्पर्जिलस, क्लेडोस्पोरियम, म्यूकर, कीटोमियम, फोमा, लाइकोपरडोन इत्यादि।

(9) इमारती लकड़ी का अपकर्ष : कवकों की अनेक जातियाँ इमारती लकड़ी पर वृद्धि करके उसे क्षतिग्रस्त बना देती है। इन कवकों द्वारा मूल्यवान लक्खी अनुपयोगी हो जाती है, जिससे बहुत ज्यादा आर्थिक नुकसान होता है । कुछ उदाहरण निम्न हैं

पोलीपोरस फेमिस, क्लेवेरिया, लेन्टाइनस, पोरीआ इत्यादि कवकों की विभिन्न जातियाँ ।

इस प्रकार लाभदायक क्रियाओं के साथ-साथ हानिकारक गतिविधियाँ भी कवकों द्वारा उत्पन्न की जाती हैं ।

बोध प्रश्न 2 :

6. भोजन के रूप में प्रयुक्त होने वाले दो कवकों के नाम लिखिए ।

....

....

7. कवकों द्वारा जनित दो मानव एवं पादप रोगों एवं रोग कारकों के नाम लिखिये ।

....

....

8. यीस्ट से क्या लाभ होते हैं?

....

....

9. कवकों से प्राप्त दो औषधियों के नाम लिखो ।

....

....

10. जैविक नियन्त्रण में काम आने वाली दो कवक बताइये ।

....

....

11. प्रतिजैविक क्या है? कवकों से प्राप्त कुछ मुख्य प्रतिजैविक पदार्थ बताइये ।

....

....

12. मानव हित में कवकों की लाभकारी गतिविधियाँ उनके हानिकारक पक्ष से अधिक प्रबल हैं, समीक्षा कीजिए ।

....

....

7.4 अनुभागीया / इकाई सारांश व अभ्यास कार्य

समय-समय पर कवकविदों ने कवकों को वर्गीकृत करने के प्रयत्न किये हैं, किन्तु सबसे उत्तम प्राकृतिक वर्गीकरण (विकास पर आधारित) अभी भी अपूर्ण है । वर्गीकरण संबंधी असंख्य मत भिन्नताओं के कारण कवक विज्ञान का अध्ययन करना कठिन कार्य है । आज सर्वथा संतोष जनक प्रतीत होने वाले वर्गीकरण जो उपयोग में लाये जा रहे हैं, वे कल अनुपयुक्त हो सकते हैं और उनके स्थान पर नये वर्गीकरण की आवश्यकता हो सकती है । ऐलेक्सोपोलस (1962) ने अपनी पुस्तक "इंट्रोडक्टरी माइकोलॉजी" में कवको के कायिक एव जनन लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया । यह पद्धति सर्वाधिक मान्य है तथा सरल व सुग्राहय है । एन्सवर्थ (1966, 1973) ने अपनी पुस्तकों डिक्शनरी ऑफ फन्जाई (1971) तथा दि फंजाई : एन एडवांस ट्रिटाइज (1973) में कवकों के प्राकृतिक बंधुत्व पर आधारित एक आदर्श वर्गीकरण की पद्धति का वर्णन किया है । इस इकाई में वर्णित वर्गीकरणों में कवकों को अलग जगत में रखा है लेकिन अधिकांश वनस्पति शास्त्री इस मत के पक्ष में हैं कि पादपों की पारम्परिक पहचान बनाये रखी जाये । अतएव समस्त पादपों को एक ही जगत में रखना उपयुक्त है ।

मानव जीवन का कवकों से घनिष्ट सम्बन्ध है । कवकों की अनेक प्रजातियाँ मनुष्य के लिए बहु त आर्थिक महत्व की है । कवकों द्वारा फैलाए जाने वाले पादप पशुओं एवं मनुष्य के कवक रोग तथा कई खाद्य पदार्थों का विनाश हम विस्तृत रूप में अध्ययन कर चुके हैं । कवकों की मानव हित में लाभकारी गतिविधियाँ उनके हानिकारक पक्ष से कहीं अधिक प्रबल है । जैविक आमापन में जीव विज्ञान सम्बन्धी खोज में तथा औषधी के रूप में कवक वरदान साबित हुई है । कवकों के लाभदायक व हानिकारक पहलुओं के अध्ययन के पश्चात् इनके आर्थिक महत्व को उजागर करना उचित होगा ।

7.5 शब्दावली

वर्गीकरण : पौधों को व्यवहारिक योजना तथा नामावली पद्धति में असमानता के आधार पर कुछ वर्गों में विभाजित करने को वर्गीकरण कहते हैं ।

जातिवृत्त प्राकृतिक वर्गीकरण : जब वर्गीकरण में विकास को आधार मानकर पौधों को उनके सबसे आदिरूपों से प्रारम्भ कर विकसित जातियों तक एक आरोही क्रम (Ascending series) में क्रमबद्ध करते हैं ।

आर्थिक महत्व : जब किसी के लाभदायक एवं हानिकारक क्रियाओं का वर्णन किया जाये ।

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बी. आर. वशिष्ट (2003) - फन्जाई । एस चाँद एण्ड कं. नई दिल्ली
2. आर. एस. सिंह (1979) पादप रोग । ऑक्सफोर्ड एण्ड आई बी एच नई दिल्ली
3. आर. एस. मेहरोत्रा एवं के. आर. अनेजा (1992) पादप रोग विज्ञान, टाटा मेगा हिल, नई दिल्ली
4. सिंह पाण्डे एवं जैन (2004) सूक्ष्म जीवों तथा क्रिप्टोगेम्स में विविधता रस्तोगी पब्लिकेशन्स - मेरठ

5. जी.पी शर्मा, एम.डी. शर्मा (2003) सूक्ष्म जीवों तथा क्रिप्टोगैम्स में विविधता पार्ट 1 साक्षी पब्लिकेशन्स हाउस जयपुर
6. त्रिवेदी, शर्मा धनखड एवं गुप्ता (2005) सूक्ष्म जैवीय विविधताये रमेश बुक डिपो - जयपुर ।

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. (c)
2. (d)
3. (i) ऊमाइसिटीज
   (ii) जाइगोमाइसिटीज (इसके अलावा और भी संवर्ग हो सकते हैं)
4. कृत्रिम संवर्ग में लैंगिक जनन का अभाव होता है । संवर्ग में वर्गीकरण अलैंगिक व लैंगिक जनन पर आधारित है।
5. लैंगिक जनन के द्वारा एस्कस तथा एस्कोबीजाणु बनते हैं । कवक सूत्र प्रयुक्त कोशिकाओं का पूर्ण अभाव ।

बोध प्रश्न - 2

6. एगेरिकस बाइस्पोरस एगेरिकस केम्पेस्ट्रिस इत्यादि
7. मानव रोग 1. ऐस्परर्जिलोसिस (रोग) Aspergillus flavus (कारक)
   2. डर्मेटोफाइटोसिस (रोग) (Trichophyton rubrum, (कारक)
   पादप रोग : 1. श्वेत किट्ट रोग Albugo candida (कारक)
   2. जी का आवृत कंड रोग Ustilage horde (कारक)
8. (i) प्रोटीन की प्राप्ति
   (ii) ई-एफेड्रीन (दमा में उपयोग)
9. 1. पेनीसिलीन
   2. ग्राइसीयोफुलविन
10. 1. ट्राइकोडरमा लिगलोरम
    2. एन्टोमोफ्थोरा सेपल क्रेलिस
11. एक सजीव के वह उपापचयी उत्पाद जो सूक्ष्म मात्रा से दूसरे सजीवों को हानि पहुँचाते या नष्ट कर देते हैं । प्रति जैविक कहलाते हैं ।

	प्रति जैविक	कवक स्रोत
1.	पैनीसिलीन	पैनीसीलियम नोटेटम एवं पे. क्राइसोजीनम
2.	फूमेजिलिन	ऐस्परजिलस,फ़्यूमिगेट्स

12. लाभकारी गतिविधियों को अधिक विस्तार से बताएँ ।

7.8 अभ्यास प्रश्न:

1. बहु विकल्प प्रश्न :

(A) कवकों के वर्गीकरण पर प्रथम लिखित पुस्तक है

(a) पीनेक्स थिएट्री बोटानिसी

(b) एलिमेन्ट्स डी वोटानिक

(c) सिस्टेमा माइकोलोजिकम

(d) साइक्लोज फर्गोरम()

(B) उप-प्रभाग यूमाइकोटीन में कितने संवर्ग होते हैं?

(a) 2

(b) 4

(c) 6

(d) 8()

(C) एन्सवर्थ के किस प्रभाग में नग्न जीवद्रव्यक या कूट नग्न जीवद्रव्य कवक उपस्थित होती है ।

(a) जाइगोमाइकोटिना

(b) ऐस्कोमाइकोटिना

(c) मिक्सोमाइकोटा

(d) यूमाइकोटिना()

2. लधुत्तरात्मक प्रश्न :

(a) ऐलेक्सोपोलस (1962) की प्रकाशित पुस्तक का नाम

(b) मिक्सोमाइकोटीना एवं यूमाइकोटीना में विभेद बताइये ।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के निबन्धात्मक उत्तर लिखिये :

(a) ऐलेक्सोपोलस (Alexopolus, 1962) द्वारा प्रतिपादित कवकों के वर्गीकरण की रूपरेखा बताइये ।

(b) कवकों को वर्गीकरण के आधारों का वर्णन कीजिये ।

(c) कवकों के आर्थिक महत्व पर निबन्ध लिखिये ।

उत्तर (अभ्यास प्रश्न)

1. A (a) B. (d) C. (c)

2. (a) इंट्रोडक्टरी माइकोलोजी

(b) मिक्सोमाइकोटीना यूमाइकोटीना

(i) नग्न जीवद्रव्यक एवं कूट नग्न जीवद्रव्यक उपस्थित(i) अनुपस्थित

(ii) कोशिका भित्ति का अभाव(ii) पादपकाय भित्तियुक्त

इकाई 8 : पादप रोग, वर्गीकरण, कवक, जीवाणु, वाइरस व माइकोप्लाज्मा द्वारा जनित रोग के सामान्य लक्षण तथा पादप रोग नियंत्रण (Plant disease, Classification, General characters of disease caused By Fungi, Bacteria, Virus and mycoplasma, Plant disease control)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 पादप रोगों का वर्गीकरण
 8.2.1 संक्रमण की उग्रता व भौगोलिक वितरण के आधार पर
 8.2.2 रोगकारक जीव की प्रकृति के आधार पर
 8.2.3 प्राथमिक सक्रंमण की विधि व शाखतीकरण के आधार पर
 8.2.4 परपोषी पर सक्रंमण की सीमा के आधार पर
 8.2.5 परपोषी पौधे की प्रकृति के आधार पर
8.3 पादप रोगों के सामान्य लक्षण
 8.3.1 दृश्य रोग जनक की प्रकृति, संरचना तथा प्रगटन से उत्पत्र
 8.3.2 परपोषी में उत्पन्न शारीरिक व आकृतिक लक्षण
8.4 पादप रोग नियंत्रण
 8.4.1 रोग निरोधी उपाय
 8.4.2 रोग हर उपाय
 8.4.3 जैविक उपाय
8.5 अनुभागीय सारांश
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 संदर्भ ग्रन्थ
8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको पादप रोग का परिचय व वर्गीकरण की जानकारी देंगे एवं विभिन्न पादप रोगों से उत्पन्न सामान्य लक्षण व सामान्य पादप रोग नियंत्रण की जानकारी देंगे ।

8.1 प्रस्तावना

पादप शरीर में हानिकारक जैव क्रियात्मक परिवर्तनों से जो अपसामान्यता उत्पन्न होती है, रोग कहलाती है। यह जैव क्रियात्मक परिवर्तन पौधे के किसी भी भाग में संरचनात्मक अपसामान्यतया या कुछ ऐसे लक्षण उत्पन्न करते हैं जिनके कारण उनके उत्पादों या उनका आर्थिक महत्व कम या घट जाता है तथा पादप की मृत्यु भी हो जाती है। प्रत्येक रोग का एक कारक होता है जिसे रोगजनक कहते हैं। रोग उत्पन्न करने वाला रोगजनक सजीव व निर्जीव किसी भी दशा में उत्पन्न हो सकता है। रोगजनक द्वारा रोग उत्पन्न करने की क्षमता वातावरणीय दशाओं तथा परपोषी की सुग्राहिता पर निर्भर करती है।

8.2 पादप रोगों का वर्गीकरण (Classification of Plant diseases)

इकाई के इस भाग में पादप रोगों के वर्गीकरण द्वारा यह बताया गया है कि परपोषी में रोग उत्पन्न करने के लिए क्या कारण हो सकते हैं, साथ ही यह भी बताया गया है कि संक्रमण के होने के लिए कितने कारक अपना योगदान निभाते हैं।

इस वर्गीकरण द्वारा बताया गया है कि पादप रोग कितने प्रकार से उत्पन्न होते हैं तथा कौनसे रोग जीवी कैसे रोग उत्पत्र करते हैं।

पादप रोगों का वर्गीकरण निम्न तीन आधारों पर किया गया है-

1. संक्रमण की उग्रता एवं भूगौलिक वितरण (Severity of infection and geographical distribution)
2. रोगकारक जीव की प्रकृति (Nature of causal organism)
3. प्राथमिक संक्रमण की विधि एवं शाखतीकरण (Mode of primary infection and perpetuation)
4. परपोषी पर संक्रमण सीमा (Extent of infection on host)
5. परपोषी की प्रकृति (Nature of host)

8.2.1 संक्रमण की उग्रता एवं भौगौलिक वितरण के आधार पर रोगों का वर्गीकरण (Classification of diseases on the basis of severity of infection and geographical distribution)

इस आधार पर रोगों को निम्नलिखित चार वर्गों में बांटा गया है-

1. **विशेषक्षेत्री रोग (Endemic diseases)** : वे रोग जो प्राकृतिक रूप में किसी एक विशेष क्षेत्र (जैसे जिला, मण्डल, प्रदेश अथवा देश) में लगभग निरंतर पाये जाते हैं विशेषक्षेत्री रोग कहलाते हैं। इनके **रोगजनक** (Pathogen) मिट्टी अथवा अन्य माध्यमों में बहुत समय तक जीवित रहते है तथा उस विशेष क्षेत्र की वातावरणीय दशाओं का इनकी जैविकता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है। विशेषक्षेत्री रोग **साधारण** अथवा **उग्र** रूप में हो सकते है- **आलू का मस्सा रोग** (Wart disease of potato) दार्जिलिंग में विशेषक्षेत्री रोग के रूप में पाया जाता है ।

2. **जानपदिक रोग (Epidemic diseases)** : ये रोग नियत **समयवधि** पर किसी फसल में लग भग सभी क्षेत्रों में अत्यन्त उग्र रूप में पाये जाते हैं । इन्हें **पादप महामारी** (epiphytotic disease) भी कहते हैं । यद्यपि इनके रोगजनक भी विशेषक्षेत्री रोगों के रोगजनकों के समान मिट्टी अथवा अन्य माध्यमों में उपस्थित होते हैं परन्तु उनकी वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरणीय दशाएं केवल नियम समयावधि पर ही उपलब्ध होती है । उदाहरण - **धान्य फसलों के किट्ट रोग** (rust disease of cereal crops)
3. **कदाचनिक रोग (Sporadic disease)** : वे रोग जो अनिश्चित स्थानों पर प्राय : अनियमित अंतराल (irregular interval) में पाये जाते हैं, **कदाचनिक रोग** कहलाते हैं । उदाहरण - खीरे का धब्बा रोग (blotch disease of cucumber) ।
4. **सर्वव्यापी रोग (Pandemic diseases)** : ये रोग विश्व के सभी भागों में पाये जाते हैं तथा इनके कारण व्यापक हानि होती है । उदाहरण - **आलू की विलंबित अंगमारी** (late blight of potato)

8.2.2 रोगकारक जीव की प्रकृति के आधार पर रोगों का वर्गीकरण (Classification of diseases on the basis of nature of causal organism)

रोगकारक जीव की प्रकृति के आ धार पर रोगों को निम्नलिखित दो वर्गों में बांटा गया है -

1. **संक्रामक अथवा परजीवी रोग (Infectious or parasitic diseases)** - इनके रोग कारक जीवित होते हैं तथा वे परपोषी पर **परजीवी** (parasite) होते हैं । इन रोगों का प्रसार रोगी पौधे के **सम्पर्क** से होता है । विभिन्न प्रकार के परजीवियों के आधार पर ये रोग **कवकद्रव्यी रोग** (mycoplasmal diseases), **विषाणु रोग** (viral diseases), **जीवाणु रोग** (bacteria diseases), **कवक रोग** (fungal diseases), **सूत्रकृमि रोग** (nematodal diseases), **कटि रोग** (insect diseases) आदि में विभक्त किए गए हैं । उदाहरण - **पपीते का पर्ण वेल्लन रोग** (leaf curl of papaya,विषाणु रोग), **बैंगन का लघु पर्ण रोग** (little leaf of brinjal), **धान का जीवाणुज अंगमारी** (bacterial blight of paddy, जीवाणु रोग), **गेहूं का किट्ट रोग** (rust disease of wheat, कवक रोग) आदि ।
2. **असंक्रामक अथवा अपरजीवी रोग (Non-infectious or non-parasitic diseases)** - ये रोग **अजीवित कारक** (non-living agents) द्वारा होते हैं । अत : इनका प्रसार सम्पर्क दारा नहीं होता है अर्थात ये रोग **असंक्रामक** (non-infectious) होते हैं । प्रतिकूल वातावरणीय दशाएं, मिट्टी की नमी, बाढ़, पोषक तत्वों की न्यूनता, **आविषालु गैस** (toxic gases) इन रोगों के प्रमुख कारक है । उदाहरण - **धान का दग्धाग्र** (tip burn of rice, यह रोग मिट्टी में अधिक नमी के कारण होता है ।) टमाटर का पुष्पाग्र-विगल, (blossom end rot of tomato), यह रोग पत्तियों व पुष्पों में जल - संतुलन की अव्यवस्था से होता है) आदि ।

8.2.3 प्राथमिक संक्रमण की विधि तथा शाखतीकरण के आधार पर रोगों का वर्गीकरण (Classification of disease on the basis of mode of primary infection and perpetuation)

प्राथमिक संक्रमण की विधि तथा शाखतीकरण के आधार पर रोगों को निम्नलिखित तीन वर्गो मे बांटा गया है -

1. **मृदोढ रोग (Soil-borne diseases)** : जब रोगजनक मिट्टी अथवा ग्रसित पौधे के मलवे में हो तो अनुकूल परिस्थितियों में प्रारम्भिक संक्रमण मिट्टी द्वारा होता है । इन्हें मृदोढ़ रोग कहते हैं । उदाहरण - कुकुरबिट्स का फल विगलन (fruit rot of cucurbits, रोगजनक - पिथियम बटलेरी), पपीते का स्तम्भ विगलन (stem rot of papaya, रोगजनक - पिथियम एफेनीडर्मेटम) ।
2. **बीजोद रोग (seed-borne diseases) :** इन रोगों में रोजजनक चिरकालिकता बीज अथवा अन्य समान संरचनाओं द्वारा होती है । अत : रोग का संक्रमण इन्हीं संरचनाओं द्वारा होता है । उदाहरण - धान्य फसलों के स्मट रोग (smut diseases of cereal crops) ।
3. **वातोढ़ू रोग (Air-borne diseases)** : जिन रोगजनकों का प्रकीर्णन (dissemination) वायु द्वारा होता है, उनका प्राथमिक तथा द्वितीयक संक्रमण भी वायु द्वारा होता है । अत : उनसे उत्पन्न रोग वातोढ़ कहलाते हैं ।

8.2.4 परपोषी पर संक्रमण की सीमा के आधार पर रोगों का वर्गीकरण (Classification of diseases on the basis of extent of infection on host)

परपोषी पर संक्रमण की सीमा के आधार पर पादप रोगों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है ।

1. **स्थानगत रोग (Localised diseases)** : वह रोग जिसमें पौधे का कोई नियत अंग ही प्रभावित हो, स्थानगत रोग कहलाते हैं ।
2. **क्रमबद्ध रोग (Systematic diseases)** : इन रोगों में संक्रमण पौधे के सभी अंगों को समान अथवा अलग - अलग सीमा तक प्रभावित करता है । इस प्रकार के रोगों में पौधे के जीवनचक्र की लगभग सभी प्रवस्थाएं संक्रमित होती है ।

8.2.5 परपोषी पौधे की प्रकृति के आधार पर रोगों का वर्गीकरण (Classification of diseases on the basis of nature of the host plant)

पादप रोगों को परपोषी की प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत करने के लिए उन्हें उन पौधों की प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है । उदाहरण - धान्य फसलों के रोग, चारे की फसल के रोग, रोपण फसलों के रोग, शाक वनस्पतियों के रोग आदि ।

8.3 पादप रोगों के सामान्य लक्षण (General symptoms of plant disease caused by virus fungi, bacteria,mycoplasma)

परजीवी के परपोषी में सफलतापूर्वक अंतर्वेधन के फलस्वरूप परपोषी में अनेक जैवक्रियात्मक परिवर्तन होते हैं जो परपोषी के शारीरिक व आकृतिक लक्षणो को प्रभावित करते हैं, यही शारीरिक व आकृतिक परविर्तन पादप रोग कहलाते हैं । कुछ लक्षण परपोषी के आन्तरिक व बाहय संरचनाओं को परिवर्तित करने में अपना योगदान देते हैं तथा सभी परजीवियों के लिए समान रूप से उत्पत्र होते हैं । अर्थात कुल लक्षण वाइरस दारा भी दर्शाए जाते हैं, षज्ञश्र बेक्टिरिया द्वारा भी व कवक द्वारा दर्शाये जाते हैं । कुछ रोगों के लक्षण दृश्य रोगजनक के कारण होते है तथा निम्न प्रकार उत्पत्र होते हैं-

8.3.1 दृश्य रोगजनक की प्रकृति, संरचना तथा प्रगटन से उत्पत्र लक्षण

अधिकांश परजीवी रोगों में परजीवी की कायिक वृद्धि परपोषी ऊतक के अंदर होती है और परजीवी अद्श्य होते हैं । परन्तु कुछ परजीवियों के जनन अंग अथवा सुसुप्त संरचनाएं परपोषी की सतह पर पूर्णत: अथवा आशिक रूप से अनावरित होती है, ऐसी दशा में रोग के लक्षण रोगजनक या परजीवी की संरचना पर निर्भर होते हैं तथा कुछ निम्न प्रकार के होते हैं-

(i) **आसिता (Mildew)** : वह पादप रोग जिनमें परजीवी पौधे या परपोषी की बाहय सतह पर वृद्धि करते हैं, ये परपोषी की पत्तियों, कोमल स्तम्भों अथवा फलों पर श्वेत, स्लेटी भूरे अथवा बैंगनी धब्बों के रूप में प्रकट होत हैं । यह लक्षण आसिता रोग कहलाते हैं । जब रोग लक्षण रुई या मृदुरोमिल वृद्धि के रूप में प्रकट होते हैं तो वे मृदुरोमिल आसिता कहलाते हैं तथा जब रोगजनक के बीजाणु परपोषी की सतह पर चूर्णिल परत के रूप में होते हैं तो ये लक्षण चूर्णिल आसिता (powdery mildew) कहलाते हैं । जैसे- मटर का चूर्णिल आसिता ।

(ii) **किट्ट (Rusts)** : यह रोग पौधे के स्तंभ तथा पत्ती की बाहय त्वचा पर छोटी-छोटी पिटिकाओं के रूप में प्रकट होता है । विभित्र जातियों में इनका रंग लाल, भूरा, पीला अथवा काला होता है । जैसे- गेहूं का क्ट्टि रोग, क्रूसीफर का श्वेत किट्ट रोग।

(iii) **स्मट (Smuts)** : इस रोग में पौधे के प्रभावित भागों में काले अथवा बैंगनी काले रंग के बीजाणुओं का कजली चूर्णिल समूह के दिखाई देता है । परपोषी के पुष्पीय अंग इस रोग में लक्षण प्रकट करते हैं । जैसे - गेहूं का निरावृत्त स्मट रोग ।

(iv) **स्केब (Scab)** : संक्रमित अंगों में उत्पत्र रुक्ष अथवा पर्पटीमय क्षेत्र इस लक्षण को प्रकट करते हैं । इस प्रकार इस रोग में परजीवी संक्रमित अंगों में किसी भी अवस्था में दृश्य अथवा अदृश्य होते हैं । जैसे- सेब का स्केब ।

(v) **फलन पिण्ड (Fruiting bodies)** : काष्ठ में पाये जाने वाले अनेक कवकों के फलन पिण्ड वृहत, मांसल अथवा काष्ठीय होते हैं। अर्थात परपोषी की सतह पर फलन पिण्ड समान रचना का निर्माण करती है । जैसे- रेड मेपल का वुड डीके।

8.3.2 परपोषी में उत्पत्र शारीरिक एवं आकृतिक लक्षण

यह लक्षण निम्न प्रकार के होते हैं:-

(i) **उत्तकक्षय (Necrosis)** : परजीवी के कारण किसी जीव की कोशिकाओं ऊतक अथवा अंग की मृत्यु होना उत्तकक्षय कहलाती है । ऊतकक्षयी लक्षणों के आधार पर कुछ अन्य लक्षण निम्न है ।

(अ) **चित्ती अथवा धब्बा (Spot)** : जब परजीवी द्वारा परपोषी के केवल कुछ सीमित क्षेत्रों की कोशिकाओं का विनाश हो तो ऊतकक्षयी क्षेत्र चित्ती अथवा धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। इनका आधार गोल, अनियमित होता है। रोग की प्रथम दशा में ऊतकक्षयी क्षेत्र का मृत ऊतक अपने चारों और स्थित स्वस्थ ऊतक से सिकुडकर अलग हो जाता है, यह दशा विस्फोट छिद्र कहलाती है। जैसे आम का पर्ण चित्ति रोग।

(ब) **रेखा अथवा धारियाँ (Streaks)** : कुछ रोगों के लक्षण लम्बी रेखाओं अथवा धारियों के रूप में प्रकट होते हैं। ये धारियाँ प्राय: भूरे रंग की होती है। जैसे-जौ का धारी होना

(स) **कैंकर (Canker)** : कृष्ठीय वृक्षों के स्तंभों की छाल अथवा कांटेक्स में उपस्थित मृत क्षेत्र कैंकर कहलाते हैं। इन मृत क्षेत्रों की परिधी प्राय: सुनिश्चित होती है। सामान्यत: ये क्षेत्र ऊतक में धंसे हुए होते हैं तथा इनकी सतह रुक्ष होती है। कैंकरकारी कवकों के फलनपिण्ड कैंकर की सतह को तोड़कर बाहर आते हैं। जैसे- सिट्रस कैंकर रोगजनक- जैनेथोमोनास सिटाई ।

(द) **अंगमारी (Blight)** : जब रोग के लक्षण जले हुए अंग के रूप में प्रकट हो तो उसे अंगमारी कहते हैं। ये लक्षण पौधे के विभित्र अंगों जैसे पत्ती, पुष्प अथवा शाखा के आकस्मिक विनास से विकसित होते हैं। प्रभावित अंग भूरे अथवा काले पड़ने लगते हैं।
जैसे- आलू की विलंबित अंगमारी (फाइटोफ्थोरा इन्फेस्ट्रेन्स)
गेहूं की विलंबित अंगमारी (आल्टनेरिया टेनुइस)

(य) **आर्द्रता पतन (Damping off)** : इस दशा में रोगनजक का आक्रमण स्तंभ के अग्रधारिय भाग में अर्थात मिट्टी की सतह के समीप होता है। प्रभावित अंग संकुचित तथा कमजोर हो जाता है। जिसके कारण वह पौधे का भार सहन नहीं कर पाता है तथा गिर जाता है। जैसे- फ्यूजेरियम, फाइटोफ्थोरा आदि रोगजनक कवक आद्रपतन रोग करती है।

(ii) **अतिवृद्धि एवं अतिवर्धन (Hypertrophy and hyperplasia)** - कुछ रोगों में सम्पूर्ण पौधे अथवा उसके किसी अंग की असामान्य वृद्धि होती है। यह वृद्धि प्रभावित अंग की कोशिकाओं के आमाप में वृद्धि या अतिवृद्धि से या कोशिकाओं के अनियमित विभाजन से उनकी संख्या में वृद्धि के कारण (जिसे अतिवर्धन कहते हैं) हो सकती है। जैसे- कुसीफर पादपों का श्वेत किट्ट रोग ।

(अ) **पिटिका (Galls)** : ये पौधे के प्रभावित अंगों में विकसित गोल, दीर्घित अथवा अनियमित आकार की कुरचनाएँ अथवा उद्धर्ध है । छोटें आकार की पिटिकाए ट्यूबरकल अथवा मस्सा कहलाती है। जबकि बड़े आमाप की पिटीकाओं को गांठ अथवा अपवृद्धि कहते हैं । जैसे-आलू का मस्सा रोग (Synchytrium endobioticum)

(ब) **वेल्लन (Curl)** - कुछ रोगों में पत्ती के स्थानगत क्षेत्रों की कोशिकाओं में अतिवृद्धि होती है। जिसके कारण पत्तियां कुंचित,वक्रित अथवा विकृत हो जाती है। ये लक्षण वेल्लन रोग कहलाते, हैं । जैसे- टमाटर का वेल्लन रोग (रोगजनक- विषाणु), पपीते का वेल्लन रोग (रोगजनक-विषाणु) ।

(स) **कुर्चीसम रोग (withches broom)** : कुछ विषाणु, जीवाणु तथा कवक पौधो में शाखन उत्प्रेरित करती है, ये शाखाए केवल कुछ सीमित अंगों में विकसित होती है । उदाहरण- लेग्यूम का कुर्चीसम रोग (रोगजनक- माइकोप्लाजा)

(द) **पुष्पीय अपसामन्यताएं**- कुछ कवकों के संक्रमण से पौधे की पुष्पीय भाग विवर्धित होकर मांसल व पर्ण सदृश्य हो जाती है ।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन की गई बीमारियों के लक्षणों में कुछ लक्षण सभी सूक्ष्मजीवों के द्वारा उत्पत्र किए जाते हैं।

8.4 पादप रोग नियंत्रण (Plant disease control)

पादप रोग नियंत्रण का तात्पर्य रोगों में फसल की गुणात्मक आर्थिक हानि को रोकना है । पादप रोग नियंत्रण के लिए अनेक प्रकार के उपाय किए जाते हैं जिनमें तीन उपाय प्रमुख हैं-

1. रोग निरोधी उपाय
2. रोगहर उपाय
3. जैविक उपाय

8.4.1 रोग निरोधी उपाय

इन उपायों के अन्तर्गत रोगजनक को परपोषी के सम्पर्क में आने से रोका जाता है । इसके लिए निम्न प्रचालन अपनाए जाते हैं-

(i) **क्वारेन्टाइन** : इसके अन्तर्गत बीज, कंद, मूल आदि के आयात व निर्यात पर जो रोग के प्रसार के कारण हैं, कानूनी प्रतिबंध लगाया जाता है, इस कानूनी प्रतिबंध को क्वारेन्टाइन कहते हैं । इस कानून के अन्तर्गत किसी भी देश से बीज, कंद आदि प्रवर्धी पदार्थों की अनुमति तभी है जबकि निर्यात करने वाले देश में कृषि मंत्रालय द्वारा नियुक्त अधिकार से यह प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया गया हो कि उक्त प्रवर्धी पदार्थ रोगाणु मुक्त है ।

(ii) **वैकल्पिक परपोषी का उत्रमूलन** : कुछ परजीवी की जीवन अवधि दो परपोषियों में पूरी होती है । इस स्थिति में किसी भी एक परपोषी को नष्ट कर दिया जाता है । इस परपोषी को वैकल्पिक परपोषी कहते हैं । अत: यह रोग नियंत्रण में सफल उपाय है ।

(iii) **सस्य आवर्तन** : किसी भी एक फसल को एक ही खेत में कई वर्षों तक लगातार बोने से मिट्टी में रोगाणुओं की वृद्धि होती रहती है । जिसके फलस्वरूप संक्रमण बढ़ जाता है । अत: खेतों में भिन्न जाति की फसले उगाने से रोगाणु को संक्रमण के लिए वह फसल नहीं मिल पाती है तथा रोगाणु की जीवन क्षमता उसके अभाव में खत्म हो जाती है । इस प्रकार फसल बदलकर लगाने को सस्य आवर्तन कहते हैं ।

(iv) **स्वच्छता** : रोग नियंत्रण के लिए खेत की स्वच्छता को बरकरार रखना चाहिए । ताकि संक्रामक रोग फैलाने वाले परजीवी को संक्रमण से रोका जा सके ।

(v) **रासायनिक रोग निरोध** : पौधों को रोग से बचाने के लिए समय-समय पर रोगनाशक रसायन प्रयोग किए जाते हैं। इनको परजीवी के आधार पर कवकनाशी, जीवाणुनाशी, कीटनाशी, सूत्रकृमिनाशी, शाकनाशी रसायन कहते हैं ।

कवकनाशी रसायन दो वर्गों में बांटे जाते हैं ।

(A) **सम्पर्क कवकनाशी** : इस प्रकार के कवकनाशी रोग जनक कवक के सीधे सम्पर्क में आते हैं ।

(B) **अवशिष्ट कवकनाशी**- ये कवकनाशी पौधे पर रोगजनक कवक के संक्रमण से पूर्व प्रयोग किए जाते हैं।

कुछ प्रमुख कवकनाशी रसायनों के नाम निम्न है।

(i) **अकार्बनिक :**

(a) बोर्दो मिश्रण (कॉपर सल्फेट +चूना +पानी) : यह मृदुरोमिल आसिता, अंगमारी, श्वेत किट्ट रोग के नियंत्रण में उपयोगी है।

(b) बर्गण्डी मिश्रण : इसमें चूने के स्थान पर सोडियम कार्बोनेट का प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग कोमल पत्तियों वाले पौधों में किया जाता है।

(c) चेसहन्ट योगिक (कॉपर सल्फेट + अमोनियम कार्बोनेट) : इसका उपयोग आर्द्रपतन रोग के नियंत्रण में किया जाता है।

(d) मर्क्यूरिक एवं मर्क्यूरस क्लोराइड

(e) चूनागंधक (Calcium Thiosulphate + कैल्सियम पालिसल्फाइड) : यह चूर्णिल आसिता के नियंत्रण में उपयोगी है।

(ii) **कार्बनिक-**

(a) थीराम : यह पिथियम, फ्यूजेरियम आदि रोगजनक कवकों के नियंत्रण में उपयोग किया जाता है।

(b) फेरबाम : आलू की अंगैती व विलम्बित अंगमारी के नियंत्रण में प्रभावी है।

(c) मेनब : यह सब्जियों व पत्तियों, फलों के रोग में नियंत्रण में सहायक है।

(d) जिराम : यह बागों में पर्णिल रोगों के नियंत्रण में उपयोगी है।

(iii) एन्टिबायोटिक्स-

(a) स्ट्रेप्टोमाइसीन : यह जीवाणुओं (जैन्थेमोनास सिटाई, स्यूडोमोनास फेसियोलोक्यूलस) व कवकों (फाइटोफ्थोरा) के नियंत्रण में प्रयोग किया जाता है ।

(b) साइक्लोहैक्सामाइ : यह एरीसाइफी, आस्टिलागो, राइजोपस व बीटाइटिस की जातियों के द्वारा उत्पत्र रोगों में प्रभावशाली है।

(c) ग्राइसोफुलविन : यह आल्टरनेरिया सोलेनइ, बोटाइटिस रोगजनक कवकों के रूप में उपयोगी है।

(d) टेट्रासाइक्लीन : यह कवक द्रव्य से अर्थात माइकोप्लाज्मा से उत्पत्र रोगों में उपयोगी है ।

8.4.2 रोगहर पादप

इस प्रकार के उपायों में रोग के प्रकट होने के पश्चात उपाय किए जाते हैं । इसके लिए संक्रमित बीज व कंद को गर्म पानी में कुछ समय रखने से इनमें उपस्थित कवकजाल नष्ट हो जाता है ।

8.4.3 जैविक उपाय- यह उपाय निम्नलिखित है

(a) प्रतिरोधी किस्मों का प्रजनन

(b) परात्परजीविता

(c) पाश सस्य एवं विरोधी पौधों द्वारा नियंत्रण

(a) प्रतिरोधी किस्मों का प्रजनन

(i) गेहूं का किट्ट प्रतिरोधी किस्में - Lerma Rajo-64 A, Kalyan Sona, HD-2009, UP-262

(ii) गेहूं की स्मट प्रतिरोधी किस्में NP4, NP710, NP770

(b) परात्परजीविता : यह रोग जनक सूक्ष्मजीवों का अन्य सूक्ष्मजीवों द्वारा नियंत्रण की प्रक्रिया है। इसमें किसी पर भी कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है।

(c) पाश सस्य व विरोधी पौधों द्वारा नियंत्रण : कुछ पौधों में जिनमें कुछ कवकों व सूत्रकृमियों का ग्रसन हो सकता है परन्तु इसके पश्चात परपोषी द्वारा ऐसे पदार्थ स्रावित किए जाते हैं। जो इन रोगजनकों की वृद्धि का प्रतिरोध करते हैं। इस प्रकार के प्रतिरोधी पाश सस्य कहलाते हैं।

8.6 अनुभागीय इकाई सारांश

इकाई के इस भाग में पादप रोगों व उनसे सम्बन्धित वर्गीकरण को दर्शाया गया है तथा यह जानकारी दी गई है कि किस प्रकार तथा किस-किस माध्यम से पादप में रोग उत्पन्न होते हैं। कौन-कौन से पादप अंग कितना संक्रमित होते है। पादप रोगों में उत्पन्न लक्षणों में यह देखा गया है कि कुछ तो केवल पादप की बाह्य आकारिकी अथवा संरचना को प्रभावित करते हैं और कुछ उसकी आंतरिक संरचना को भी प्रभावित करते हैं। इन्हीं बाह्य व आन्तिरीक परिवर्तनों को इस इकाई में रोगों के रूप में वर्णन किया गया है तथा अंत में इन रोगों से होने वाली हानियों को रोकने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय भी प्रस्तुत किए गए हैं । इनमें से कुछ उपाय तो सीधे ही रोग होने की स्थिति में उपयोग किए जाते हैं तथा कुछ उपाय रोग उत्पन्न होने के बाद उपयोग में लिए जाते हैं।

बोध प्रश्न

1. निम्न में से आलू की विलंबित अंगमारी एक रोग है-

(a) विशेषक्षेत्री रोग

(b) जानपदिक रोग

(c) कदायनिक रोग

(d) सर्वव्यापी रोग ( )

2. सिट्रस केंकर का रोगजनक है?

....

....

3. अतिवृद्धि व अतिवर्धन में अंतर बताइए ।

....

....

4. लेग्यूम का कुर्चीसम रोग किसके द्वारा होता है ।

....

5. क्वारेन्टाइन किसे कहते हैं ।

....

6. किन्हीं दो एन्टिबायोटिक्स के नाम लिखिए ।

....

....

7. जिराम का एक उपयोग लिखिए ।

....

....

8.8 शब्दावली

एन्टिबायोटिक : सूक्ष्मजीवों द्वारारा बनने वाला रासायनिक पदार्थ जो जीवाणुओं, आदि की वृद्धि को रोकता है ।

उत्तकक्षय : परजीवी के कारण किसी विशिष्ट ऊतक का नाश होना उतकक्षय कहलाता है ।

अपरजीवी रोग : वह रोग जो बिना किसी परजीवी के उत्पत्र होते हैं । अपरजीवी रोग कहलाते हैं ।

विशेषक्षेत्री रोग : वह रोग जो किसी विशेष क्षेत्र में ही उत्पत्र होते हैं । उसके अलावा कहीं भी नहीं प्रकट होते हैं ।

वाताढेरोग : ऐसे रोग जो वायु के प्रकीर्णन के कारण उत्पत्र होते हैं वाताढे रोग कहलाते हैं ।

मृदोढ़ रोग : ऐसे रोग जो मिट्टी के प्रकीर्णन के कारण होते हैं मृदोढ़ रोग कहलाते हैं ।

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वनस्पति विज्ञान (कवक, सूक्ष्मजीवविज्ञान व पादप रोग विज्ञान) सिंह, पाण्डे, जैन, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ
2. पादप रोग विज्ञान - आर.एस.सिंह : ऑक्सफोर्ड एण्ड आईबीएच पब्लिशिंग, नई दिल्ली
3. त्रिवेदी, निरंजन व धनखड़- सूक्ष्मजीवों में विविधताएं, रमेश बुक डिपो, जयपुर ।

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (d)
2. जेन्थोमोनास सिट्राई
3. रोग जनक द्वारा पोषी या पौधे के प्रभावित अंगों के कोशिकाओं के आमाप में वृद्धि, अतिवृद्धि कहलाती है जबकि कोशिकाओं के अनियमित विभाजन से उनकी संख्या में वृद्धि अतिवर्धन कहलाता है ।
4. माइकोप्लाज्मा
5. अन्तर्राष्टीय रोगमुक्त संस्था द्वारा रोगी पौधे के सभी भागों को आयात व निर्यात से रोक लगाने के लिए बनाई गई पद्धति क्वारेन्टाइन कहलाती है ।

6. स्ट्रोप्टोमाइसीन, ग्राइसोफुलविन
7. पर्णिल रोगों के नियंत्रण में उपयोगी

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. पादप रोगों के वर्गीकरण को विभित्र उदाहरण देते हुए समझाइये ।
2. पादप रोग नियंत्रण में किए जा रहे उपायों का वर्णन कीजिए ।